उपन्यास

और

लोकजीवन

रैल्फ फॉक्स

उपन्यास
और
लोक-जीवन

लेखक :

रैल्फ फॉक्स

भूमिका लेखक :

डॉ० रामविलास शर्मा

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड

एम. एम. रोड, नई दिल्ली.

भूमिका

रैल्फ फॉक्स यदि जीवित होते तो आज सत्तावन वर्ष के होते। बायरन की तरह ब्रिटेन के बाहर स्वाधीनता के लिए लड़ते हुए छत्तीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने प्राण दिये। वह लेखक होने के साथ सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता भी थे। यूरोप में नवजागरण काल के सिडनी, बेन जॉनसन और मिल्टन की तरह उनका जीवन बहुमुखी था। हिंसक फासिस्तवाद के विरुद्ध कलम के साथ तलवार उठाने में उन्हें जरा भी हिचक न थी। फॉक्स को अपने देश की सांस्कृतिक परम्परा पर गर्व था। उनके बलिदान में १६-१७ वीं सदी के नवजागरण और बीसवीं सदी के श्रमिक अभ्युत्थान की परम्पराएं मिल गयी थीं।

पूंजीवाद के हिंसक और युद्धलोलुप अभियान के विरुद्ध फॉक्स ने स्पेन में संघर्ष किया। वह विश्वशान्ति के लिए लड़नेवाले योद्धा थे। इस कारण भारत की शान्ति-प्रेमी जनता के हृदय में उनके लिए आदर और सम्मान होना स्वाभाविक है। आदर के साथ उनके प्रति स्नेह और कृतज्ञता का भाव भी होना चाहिए। वह अन्य उपनिवेशों के साथ भारत की स्वाधीनता के भी प्रबल समर्थक थे। अपने चार्टिस्ट पूर्वजों की तरह वह भी भारत की स्वाधीनता के बिना ब्रिटेन के मजदूर वर्ग का उद्धार असंभव समझते थे। "ब्रिटिश साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक नीति" नाम की कृति में उन्होंने लिखा था : "भारत तथा अन्य उपनिवेशों में जन-क्रान्ति के बिना समाजवादी ब्रिटेन की कल्पना नहीं की जा सकती।" ब्रिटेन के क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग की इस आवाज को वहां का पूंजीवाद कभी भी पूरी तरह नहीं दबा पाया।

फॉक्स के लिए मानव-जीवन और साहित्य का सम्बंध अटूट था। वह जिस उत्साह से मानव-जीवन को बदलने के लिए काम करते थे, उसी

उत्साह से साहित्य के बारे में भी लिखते थे। वह भावना शून्य वर्ग विश्लेषक और आंकड़ेबाज आलोचक न थे। साहित्य के बारे में उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसमें उनका हृदय बोलता है। पाठक को विश्वास हो जाता है कि उन्होंने साहित्य को अपनी मार्मिक संवेदना और हृदय की पूर्ण निष्ठा से अपनाया है। इस संवेदना के कारण ही वह "सौन्दर्य-वादी" कवि कीट्स के युगान्तरकारी महत्व को परख सके। अधिकांश आलोचकों ने कीट्स को जीवन से तटस्थ रहनेवाले काल्पनिक सौन्दर्य-स्वप्नों के उपासक के रूप में देखा है। इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में फॉक्स ने लिखा है कि प्रतिक्रियावादी आलोचकों ने जिस प्रचंड घृणा से कीट्स को कोसा, वैसी घृणा से उन्होंने बायरन और शेली को भी न कोसा था। केवल फॉक्स ही लिख सकते थे कि कीट्स ने "हाइपीरियन" की अपूर्ण कविता में क्रान्तिकारी संघर्ष का सारतत्व दे दिया है। एक मार्क्सवादी आलोचक के स्वतंत्र चिंतन और उसकी रचनात्मक प्रतिभा का यह प्रमाण है।

मार्क्सवाद और साहित्य के सम्बंध पर अपने विचार प्रकट करने के अलावा फॉक्स ने यूरोप के अनेक उपन्यासकारों की रचनाओं का विश्लेषण किया है। वह एक अंग्रेज देशभक्त होने के साथ सच्चे अन्तरराष्ट्रीयतावादी थे। बालजाक, तोल्स्तोय और गोर्की उनके लिए सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार थे। ये तीनों लेखक ब्रिटेन के बाहर के थे। सोवियत समाज के प्रशंसक और समर्थक होते हुए भी फॉक्स ने सोवियत उपन्यास-कारों के बारे में लिखा था कि ये लेखक हमारी मानव सम्बंधी जानकारी नहीं बढ़ाते, वे वास्तव में हमारी चेतना और संवेदना का प्रसार नहीं करते। जो लोग समझते हैं कि मार्क्सवादी आलोचक सोवियत संघ की किसी भी चीज कि आलोचना नहीं करते, वे फॉक्स के शब्दों पर ध्यान दे सकते हैं। फॉक्स की स्पष्टवादिता अन्तरराष्ट्रीय भाईचारे का खंडन नहीं करती, वरन् उसे और दृढ़ करती है। फॉक्स ने सोवियत उपन्यास-कारों की खामियों को कुछ बढ़ा-चढ़ाकर देखा है, यह दूसरी बात है।

साथ ही फॉक्स को अपनी भाषा के साहित्य पर जातीय गर्व था। अंग्रेजी संस्कृति, अंग्रेजी सभ्यता, अंग्रेजी साहित्य पर गर्व। हमारे देश

मे इन वस्तुओं का सम्बंध अंग्रेज शासक वर्ग और उसके चाकरों से अधिक रहा है। अंग्रेज वैसे ही देशभक्त हो सकता है जैसे कोई भी भारतवासी। वह अपनी संस्कृति पर वैसे ही उचित गर्व कर सकता है जैसे हम भारतीय संस्कृति पर करते हैं। फॉक्स ऐसे ही अंग्रेज देशभक्तों मे थे। उन्होंने अपने देश के प्रगतिशील लेखकों को साहित्यिक परम्परा पर गर्व करना सिखाया। चरित्रचित्रण के लिए जब सोवियत लेखक शेक्सपियर को आदर्श रूप में सामने लाते हैं तो फॉक्स को स्वाभाविक उल्लास होता है। १८ वीं सदी के उपन्यासकार फील्डिंग की प्रशंसा करते वह नहीं थकते।

यह देश भक्ति, फॉक्स की अन्तरराष्ट्रीयता, साहित्य के प्रति उनका सच्चा अनुराग, उनका उत्साह और उल्लास और स्पष्टवादिता सभी लेखकों के लिए अनुकरणीय हैं।

फॉक्स ने साहित्य की समस्याओं पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार किया है। इस सिलसिले में उन्होंने मार्क्स और एंगेल्स की स्थापनाओं को स्पष्ट रूप से पाठकों के सामने रखकर कुछ भ्रान्तियों को दूर किया है। कुछ लोग समझते हैं कि मार्क्सवाद के अनुसार कलाकृतियां आर्थिक प्रक्रियाओं और आवश्यकताओं का प्रतिबिंब मात्र हैं। इस सम्बंध में फॉक्स ने जोर देकर कहा है कि यह मार्क्सवाद का दृष्टिकोण नहीं है. यद्यपि उन्नीसवीं सदी के कुछ भौतिकवादी ऐसा सोचते थे। वह सामाजिक विकास से उदाहरण देकर कहते हैं कि सामन्ती उत्पादन-पद्धति की तुलना में पूंजीवादी उत्पादन पद्धति प्रगतिशील है, इससे मार्क्स ने यह परिणाम न निकाला था कि सामन्ती कला की तुलना में पूंजीवादी कला अधिक ऊंचे स्तर की होगी ही। कला आर्थिक आधार से काफी दूरी पर स्थित होती है; आर्थिक आधार में जो परिवर्तन होते हैं. उनसे कला सीधे-सीधे और तुरंत प्रभावित नहीं होती।

इस दूरी का कारण क्या है? आर्थिक और राजनीतिक विचारधारा की तरह कला में भी शीघ्र परिवर्तन क्यों नहीं होते? इसका कारण विचारधारा और कला का परस्पर सम्बंध है। सभी ललित कलाओं में विचारधारा का महत्व समान रूप से नहीं होता। भाषा के बिना विचारों

की व्यंजना नहीं होती। जिन ललित कलाओं में भाषा का प्रयोग नहीं होता, उनमें विचारों का अभाव होना भी अनिवार्य है। साहित्य में भाषा का प्रयोग होता है, इसलिये अन्य ललित कलाओं की अपेक्षा उसमें विचारधारा की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। किन्तु साहित्य विचारों का संकलनमात्र नहीं है। अन्य ललित कलाओं के साथ उसकी विशेषता है, भावों और इन्द्रियबोध को व्यक्त करने की क्षमता। वह एक ओर हमें भावविह्वल करता है तो दूसरी ओर हमारे इन्द्रियबोध को तुष्ट करता है, हमारे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि के संस्कारों को परिष्कृत करता है। मनुष्य के विचारजगत में भी ऐसा परिवर्तन नहीं होता कि परम्परा से एकबारगी सम्बंध टूट जाय। भावों और इन्द्रियबोध के क्षेत्र में तो यह परिवर्तन और भी धीरे-धीरे होता है और उत्पादन-पद्धति के परिवर्तनों से अपेक्षाकृत स्वतंत्र रहता है। कला की सापेक्ष स्वतंत्रता का यही रहस्य है। वह समाज-निरपेक्ष नहीं होती; उसका विकास सामाजिक विकासक्रम के अन्तर्गत ही होता है। किन्तु वह सामाजिक विकासक्रम से पूर्णतः नियमित नहीं होती, वह पूर्णतः आर्थिक आधार का प्रतिबिंब नहीं होती। इसीलिये प्राचीन कला-कृतियां अपने सूक्ष्म इन्द्रियबोध और भावप्रवणता के कारण हमें आज भी मोहक लगती हैं।

साहित्य के विभिन्न अंगों की अभिव्यंजना-शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। गीत या मुक्तक में सामाजिक जीवन का उतना और उसी तरह चित्रण नहीं हो सकता जितना और जिस तरह उपन्यास में। इस सम्बंध में फॉक्स की उक्ति ध्यान देने योग्य है। उनका कहना है कि मनुष्य के जीवन को सर्वांगीण रूप में जितना उपन्यास चित्रित कर सकता है, उतना साहित्य का दूसरा अंग नहीं कर सकता।

वास्तव में कथा कहने और सुनने का रस ही अलग होता है। 'राम कथा जे सुनत अघाहीं, रस विशेष जाना तिन नाहीं।' कथा का अपना विशेष रस होता है यद्यपि मनुष्य को आत्मविभोर करने की काव्य-शक्ति की तुलना में वह निम्न ही ठहरता है। साथ ही मानव-जीवन की विविधता को जितनी विशदता से उपन्यास चित्रित कर सकता है, उतनी

विशदता से काव्य नहीं कर सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा था, "वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियां उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।" पाठक देखेंगे कि उपन्यास की विशेषता के सम्बंध में फॉक्स की स्थापना शुक्ल जी की उक्ति से पुष्ट होती है।

साहित्य की विषयवस्तु की तरह उसके रूप भी सामाजिक विकास से सम्बद्ध है। यूरोप में उपन्यास की रचना पूंजीवादी युग में हुई। फॉक्स ने उपन्यास को पूंजीवादी साहित्य का अपना विशिष्ट रूप कहा है। उनके अनुसार आरम्भ में महान पूंजीवादी साहित्य रचा गया। वह यह भी कहते हैं कि उस समय साधारणतः पूंजीवादी वर्ग हितों और राष्ट्रीय हितों में साम्य था। फॉक्स के लिए अठारहवीं सदी अंग्रेजी उपन्यास साहित्य का स्वर्ण युग था, कारण यह कि पूंजीवादी क्रान्ति ने अंग्रेजी दर्शन की सृष्टि की और अंग्रेजी उपन्यास साहित्य इस दर्शन से प्रभावित था। क्या वास्तव में अंग्रेजी उपन्यास साहित्य पूंजीवादी संस्कृति का अंग है? मार्क्स ने पूंजी के लिए लिखा था कि उसका अंग-प्रत्यंग रक्त में डूबा हुआ है। उस रक्तरंजित पूंजी से महान साहित्य की रचना कैसे सम्भव हुई? फॉक्स ने एक जगह शेक्सपियर, मार्लो और मिल्टन के लिए भी लिखा है कि अभ्युदयशील पूंजीवादी वर्ग की संस्कृति उनकी रचनाओं में झलकी है।

इस सम्बंध में पहले तो इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि इंगलैंड में १८ वीं सदी के अन्त तक सत्ता पूंजीपति वर्ग के हाथ में न थी। सत्ता भूस्वामी वर्ग के हाथ में थी जिनके राजनीतिक प्रतिनिधियों को हम उन्नीसवीं सदी में पार्लियामेंट सम्बंधी सुधारों का विरोध करते पाते हैं। जो पूंजीपति सत्ता में साझेदार थे, वे भी मुख्यतः व्यापारी व सौदागर थे, न कि सर्वहारा वर्ग के शोषक उद्योगपति। उस समय पैसा कमाने का सबसे कारगर तरीका भारत जैसे देशों से व्यापार करना था, न कि

इंगलैण्ड का तैयार माल वहां बेचना। १८ वीं सदी में औद्योगिक क्रान्ति के बाद लगभग एक शताब्दी के संघर्ष के बाद ही उद्योगपति सत्ता हथिया सके। इस उलझी हुई परिस्थिति में यह समझना कि १६ वीं सदी से ही अभ्युदयशील पूंजीवाद शेक्सपियर और मिल्टन जैसे कलाकारों को अपना वर्ग-प्रतिनिधि बना सका, सही नहीं मालूम होता। पूंजीवाद आरम्भ से ही अन्तर्विरोधों से पीड़ित था और १६ वीं सदी से ही अंग्रेजी के महान लेखकों ने उसकी बराबर तीव्र आलोचना की थी। यह भी ध्यान देने की बात है कि अंग्रेजी पूंजीवाद ने कभी सामन्तवाद का सुसंगत विरोध नहीं किया। उसने किसानों को तबाह किया लेकिन सामन्तों से गठबन्धन किया। सांस्कृतिक क्षेत्र में उसके राजनीतिक प्रतिनिधि ड्यूकों और लॉर्डों को सदा अपना आदर्श मानते रहे। इंगलैण्ड के इतिहास में कोई भी ऐसा दौर नहीं है, जब किन्हीं ईमानदार साहसी पुरुषों ने पूंजीवाद की खरी आलोचना न की हो। फिर भी फॉक्स की संवेदनाएं अपनी जगह सही हैं। संवेदनाओं के आधार पर की हुई व्याख्या ध्यान देने योग्य है।

फील्डिंग पर अपने एक लघु निबन्ध में फॉक्स ने लिखा है कि यद्यपि उसका जन्म अभिजात वर्ग में हुआ था किन्तु उसने गरीबी में दिन बिताये और उसे बराबर संघर्षों का सामना करना पड़ा। उसने अपने समय की न्याय-व्यवस्था का विरोध किया। उसने अपने समय की समाज व्यवस्था की तीव्र आलोचना की। 'जोनाथन वाइल्ड' नामक उपन्यास के एक अध्याय के लिए फॉक्स ने लिखा है: "वह अब तक पूंजीवादी राजनीति का सबसे तीखा खंडन है।" प्रस्तुत पुस्तक के पांचवें अध्याय में फाक्स ने फील्डिंग के भयानक क्षोभ और क्रोध की चर्चा की है। यह क्रोध मानव जीवन के पतन से उत्पन्न हुआ था और उस पतन में पूंजीवाद का भी हाथ था। इस तरह पूंजीवाद के अभ्युदय-काल का श्रेष्ठ उपन्यासकार फील्डिंग पूंजीवादी समाज व्यवस्था का तीव्र आलोचक सिद्ध होता है।

फॉक्स के अनुसार १६ वीं सदी के पूर्वार्द्ध पर आलजाक छाया हुआ है। उसका कारण यह कि उसने अपने युग का क्रान्तिकारी चित्र दिया

है दूसरे फ्रासीसी उपन्यासकार फ्लाबेयर में फाक्स के अनुसार पूंजीपति वर्ग के प्रति घृणा भरी हुई थी। थैकरे के लिए उन्होंने लिखा है कि वह नये पूंजीपति-वर्ग से घृणा करता था और तीखे व्यंग्य द्वारा उसने अपनी घृणा स्पष्ट ही प्रकट कर दी थी। फॉक्स के लिए १९ वीं सदी के तीन सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं, 'वुदरिंग हाइट्स,' 'जूड दि ऑब्सक्योर' और 'दि वे ऑफ ऑल फ्लेश'। ये महान इसलिए हैं कि इनमें यह सत्य उद्घाटित किया गया है कि पूंजीवादी समाज में भरापूरा मानव जीवन असंभव है। १९ वीं सदी के तीन सर्वश्रेष्ठ उपन्यास पूंजीवादी समाज-व्यवस्था से घोर असंतोष प्रकट करते हैं। इस तरह फॉक्स ने अंग्रेजी उपन्यास साहित्य की क्रान्तिकारी भूमिका स्पष्ट की है। इंगलैण्ड और यूरोप के उपन्यासकारों ने जनता के दुखदर्द को देखा और अपने साहित्य में उसका कलात्मक चित्रण किया। उनकी विचारधारा में भले उलझनें रही हों, वे पूंजीवादी समाज व्यवस्था के खरे आलोचक थे, इसमें संदेह नहीं।

डिकेन्स और स्काट १९ वीं सदी के दो सबसे लोकप्रिय उपन्यासकार थे। चरित्र निर्माण में इनके कौशल को फॉक्स ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। इस कौशल का रहस्य क्या था? इसका रहस्य जनसाधारण के चरित्र की पहचान, उनके मानस में पैठने की अपूर्व क्षमता और शब्दों में उसे चित्रित करने की सामर्थ्य थी। उनके 'हीरो' और 'हीरोइन' भले ही काल्पनिक हों, उनके साधारण पात्र सदा सजीव होते हैं। इसीलिए उनमें इतनी विविधता है। उपन्यासकार के जीवन-दर्शन का महत्व होता है, किन्तु गलत दृष्टिकोण होने पर भी अपनी सहानुभूति, संवेदनाओं और सामाजिक जीवन की जानकारी के बल पर उपन्यासकार श्रेष्ठ कृतियां दे सकता है। बालजाक १९ वीं सदी के पूर्वार्द्ध पर छाया हुआ था और तोलस्तोय उस सदी के उत्तरार्ध पर हावी थे—इन दोनों का ही दार्शनिक दृष्टिकोण प्रतिक्रियावादी था। 'कलाकार के लिए मूल वस्तु है संवेदना, सामाजिक जीवन से व्यापक परिचय, अपने पात्रों से उचित अनुपात में सहानुभूति या घृणा। इनके साथ सही जीवन दर्शन भी हो तो कहना ही क्या! किन्तु उन मौलिक गुणों के बिना सही जीवन दर्शन के आधार पर कोई महान कलाकार नहीं बन सकता।

हम हिन्दी के उपन्यास साहित्य में देखते हैं कि प्रेमचंद गांधीवाद से प्रभावित थे — कम-से-कम अपने प्रारंभिक उपन्यासों में प्रभावित थे। फिर भी प्रेमाश्रम में उन्होंने गांवों के वर्ग-संघर्ष का जो तीखा रूप दिखाया है, उससे गांधीवादी राजनीतिज्ञ अक्सर आंखें चुराते रहे हैं। निराला जी अद्वैतवादी रहे हैं किन्तु 'देवी,' 'चतुरीचमार,' 'बिल्लेसुर बकरिहा,' 'कुल्लीभाट' आदि रेखाचित्रों में वह किसी भी भौतिकवादी कलाकार से आगे बढ़े हुए दिखाई देते हैं। प्रसाद जी रहस्यवादी थे किन्तु 'तितली' में उन्होंने भूमि-समस्या को लेकर मार्मिक कथा लिखी है। फॉक्स ने सोवियत उपन्यासकारों और अन्य मार्क्सवादी कलाकारों की आलोचना करते हुए लिखा है कि वे कम्युनिस्टों का सजीव चित्रण नहीं कर पाये, उनकी रचनाएं ओजस्वी पत्रकार कला के नमूने बनकर रह गई हैं। यह आलोचना ध्यान देने योग्य है। हमारे देश में कुछ लोगों ने एकाध मार्क्सवादी लेखक के लिए कहना शुरू किया है कि वे प्रेमचंद से महान् हैं क्योंकि उनमें मार्क्सवादी चेतना है। लेकिन प्रेमचंद की कहानियों तक में जैसे सजीव पात्र मिलते हैं, वैसे उनके उपन्यासों में भी नहीं मिलते। कुछ लेखकों ने भारतीय समाज पर अंग्रेजी में उपन्यास लिखे हैं, लेकिन 'गढ़ कुंडार' या 'विराटा की पद्मिनी' के पात्र जैसे इस देश की धरती से बने लगते हैं, वैसे उनके कुली और अछूत नहीं। हिन्दी के कुछ कथाकार मार्क्सवाद पर पुस्तकें भी लिख चुके हैं लेकिन उनके पात्र वैसे सजीव नहीं हैं जैसे गांधीवादी लेखक अमृतलाल नागर के सेठ बांकेमल या 'बूंद और समुद्र' की ताई। इसका कारण क्या है. इसका कारण यह है कि मार्क्सवाद या गांधीवाद ही किसी लेखक को कलाकार नहीं बना देता। कलाकार बनने के लिए जीवन दर्शन से अधिक मार्मिक सहानुभूति आवश्यक है, दृष्टिकोण से अधिक वह दृष्टि आवश्यक है जो जीवन के हर पहलू को देख सके। सामाजिक जीवन की जानकारी ही न होगी तो दृष्टिकोण बेचारा क्या करेगा? इसीलिए फॉक्स ने सोवियत उपन्यासकारों की जिस खामी की ओर संकेत किया है कि उनके उपन्यास ओजस्वी पत्रकार कला के नमूने बन जाते हैं, वह बात हमारे यहां के मार्क्सवादी लेखकों के लिए विशेष ध्यान देने योग्य है।

फाक्स ने बहुत सही लिखा है कि साहित्य में जीवन के बारे म लेखक की राय दरकार नहीं है, वहां जीवन की तस्वीर चाहिए। कुछ हिन्दी लेखकों की रचनाओं में जहां उनका मतविशेष उभरकर आता है, वहा जीवन की तस्वीर उतना उभर कर नहीं आती। फॉक्स की उक्ति उपन्यास साहित्य पर ही लागू नहीं होती, वह साहित्यमात्र के लिए मान्य है। एक कवि ने टीटो की निंदा करते हुए कविता लिखी। जब निंदा का दौर खत्म हो गया तो उन्होंने प्रशंसा में कविता लिखी कि "वीर! जब सारी दुनिया गुमराह हो गई, तब तुम्हीं अडिग रहे।" फिर वह दौर आया जिसमें न केवल निंदा थी, न केवल प्रशंसा। अब इन विभिन्न दौरों में किस दौर की कविता को उचित रूप में प्रगतिशील मानकर छपवाये ? जीवन की तस्वीर के बदले राय देने से ऐसी ही कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं।

फॉक्स ने बाह्य जीवन की परिस्थितियों के साथ मनुष्य के आंतरिक जीवन, उसके भाव जगत् का चित्रण करने पर ज़ोर दिया है। फॉक्स की यह स्थापना महत्वपूर्ण है कि भाव जगत् और बाहरी जगत में कोई अन्तर्विरोध नहीं है। दोनों के समन्वय से ही भरे-पूरे यथार्थवाद का विकास हो सकता है। हिन्दी में प्रेमचंद को बाह्य जीवन का चितेरा माना जाता है, शरत् बाबू आन्तरिक जीवन के चितेरे माने जाते हैं। वास्तव में दोनों के संसार अलग-अलग हैं। प्रेमचंद ने मनुष्य के भाव जगत् का भी चित्रण किया है। केवल होरी, सूरदास आदि का भावजगत् देवदास, श्रीकान्त आदि के भाव जगत से मूलतः भिन्न है।

प्रेमचंद के बाद जैनेन्द्र और अज्ञेय अन्तस्तल में बहुत गहरे डूबे। नतीजा यह हुआ कि इनका कथा साहित्य उसी तरह संकटग्रस्त हुआ जैसे इंगलैण्ड का व्यक्तिवादी साहित्य। फॉक्स ने इंगलैण्ड के उपन्यास साहित्य के संकट की ओर उचित ध्यान दिलाया है। समस्या का समाधान यह है कि अपनी जातीय परम्परा को फिर जगाओ और उसे आगे बढ़ाओ। लेकिन इंगलैण्ड में अब डिकेन्स, स्कॉट, फील्डिंग आदि के चरण-चिन्हों पर चलनेवाले कलाकार नहीं दिखाई देते। प्राचीन परम्परा को जगाकर उसे कैसे आगे बढ़ाया जाता है, यह हम सोवियत उपन्यास-

कारों स सीख सकते हैं शोलोखोव, अलेक्सी तालस्ताय, फादेय आदि लेखकों ने तालस्ताय की कला से बहुत कुछ सीखा और अपन युग की परिस्थितियों का चित्रण करने में उस कला का उपयोग किया उनकी लोकप्रियता ने सिद्ध कर दिया कि उन्होंने अपनी परम्परा से सही नाता जोड़ा था।

यह हर्ष की बात है कि हिन्दी में व्यक्तिवाद की ओर से उपन्यासकार मुंह मोड़ रहे हैं। श्री इलाचंद्र जोशी अन्तस्तल के विशेषज्ञ थे। उन्होंने "जहाज के पंछी" में बाह्य परिस्थितियों को नियामक माना है जिनसे तरह-तरह के पाप और दुराचार संभव होते हैं। नागार्जुन, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव आदि की कृतियां उस स्वस्थ मार्ग पर हिन्दी कथासाहित्य को बढ़ा रही हैं जिसका निर्माण प्रेमचंद ने किया था। ये सभी लेखक समाज में फैली हुई वीभत्सता को उघाड़कर पाठक को तिलमिला देते हैं, साथ ही अपने-अपने ढंग से वे मानव जीवन मे आस्था भी उत्पन्न करते हैं। फॉक्स ने कथा साहित्य को मानव जीवन के विकास का साधन माना था। हिन्दी में वह साधन और साध्य दोनों है।

यह प्रसन्नता की बात है कि फॉक्स जैसे विचारक का यह ग्रंथ श्री नरोत्तम नागर जैसे प्रसिद्ध लेखक और सिद्ध अनुवादक द्वारा हिन्दी पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें उल्लिखित अनेक समस्याएं हिन्दी के लेखकों और पाठकों को आन्दोलित कर चुकी हैं। निःसन्देह उन्हें यहां सीखने समझने और सोचने के लिए बहुत सी महत्वपूर्ण सामग्री मिलेगी।

आगरा
२१-८-५७

रामविलास शर्मा

सूची

साहित्यिक लेख

एक

विषय प्रवेश

यह दावा करना गलत होगा कि प्रस्तुत निबंध कला और जीवन के पारस्परिक सम्बंधों के समूचे व्यापक क्षेत्र पर प्रकाश डालता है। नहीं, यह इससे अधिक सीमित लक्ष्य को लेकर चलता है: अंग्रजी उपन्यास कला की वर्तमान स्थिति की जांच करना; विचारों के उस संकट को समझने का प्रयत्न करना, जिसने उस नींव को ही नष्ट कर दिया है जिस पर कि एक समय उपन्यास इतनी दृढ़ता से स्थापित था; और उसके भविष्य पर एक दृष्टि डालना।

यहां यह बता देना कदाचित् उपयुक्त होगा कि मैं उपन्यास कला के भविष्य में विश्वास करता हूं, हालांकि इसका वर्तमान बहुत ही अस्थिर प्रतीत होता है। यह हमारी सभ्यता की महान लोक कला है, हमारे पूर्वजों के महाकाव्य और *शांशों दा जेस्ट*[1] की उत्तराधिकारिणी है, और यह बराबर जीवित रहेगी। लेकिन जीवन का अर्थ है परिवर्तन; सम्भव है कि ये परिवर्तन, कम-से-कम कला के क्षेत्र में, सदा उन्नति की दिशा में न हों, किन्तु परिवर्तन तो वे हैं ही। ये परिवर्तन ही, जिनके बिना उपन्यास अपनी जीवन्त शक्ति को कायम नहीं रख सकते, प्रस्तुत पुस्तक का विषय हैं।

मानव इतिहास में अनेकानेक नयी कलाओं ने जन्म लिया है, उदाहरण के लिए जैसे सिनेमा। किन्तु अब तक कोई भी कला पूर्णतया मरी नहीं। मानव अपनी चेतना के हर विस्तार से, हर उस वस्तु से जो

वास्तविक जगत के प्रति — जिसमें कि वह रहता है — उसकी संवेदन-शीलता को प्रखर बनाती है, चिपका रहता है। उपन्यास एक नयी कला भी है। यह सच है कि इसकी जड़ें अतीत में बहुत दूर तक — *त्रिमाल-चियो के भोज*[1], *डाफनिस और क्लो*[2] और कदाचित इससे भी दूर हेरोडोटस तक गयी हैं, किन्तु अपने-आप में एक विशिष्ट कला के रूप में अपने अस्तित्व के औचित्य से युक्त, अपने ही नियम-कायदों से सम्पन्न, तथा सार्वभौम मान्यता और सराहना-प्राप्त कला के रूप में यह हमारी अपनी सभ्यता की, और सबसे बढ़कर छापेखाने की, देन है।

माना कि यह साहित्य का केवल एक अंग ही है; किन्तु यों तो एक तरह से नाटक भी साहित्य का एक अंग है, फिर भी अपने-आप में एक विशिष्ट कला के रूप में नाटक को उसका गौरव प्रदान करने से कोई भी इन्कार नहीं करेगा। उपन्यास केवलमात्र कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव के जीवन का गद्य है — ऐसी पहली कला है, जो सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है। श्री ई. एम. फार्स्टर[3] ने बताया है कि उपन्यास को अन्य कलाओं से अलग करनेवाली महान विशेषता यह है कि उसमें गुप्त जीवन को प्रत्यक्ष करने की शक्ति है। इस प्रकार यह कला कविता, या नाटक, या सिनेमा, या चित्रकला, या संगीत से यथार्थ का एक भिन्न दृश्य प्रस्तुत करती है।

ये सब कलाएं यथार्थ के उन पहलुओं को व्यक्त कर सकती हैं जो कि उपन्यास की पहुंच से बाहर हैं। किन्तु इनमें से कोई भी व्यक्तिगत पुरुष, स्त्री अथवा बच्चे के सम्पूर्ण जीवन को उतने संतोषप्रद रूप में व्यक्त नहीं कर सकती। इसके कार्यकारणों पर, इसी निबंध में, मैं अन्यत्र प्रकाश डालूंगा। यहां केवल इस तथ्य का उल्लेख तथा पाठकों से फिलहाल इसे मान लेने का अनुरोध करना ही काफी होगा।

उपन्यास कला क्या सचमुच इतनी संकट-ग्रस्त है कि लोग उसके बारे में पुस्तकें लिखने पर बाध्य हों, तथा ध्यान आकर्षित करने के लिए गला फाड़ कर ऐसे चिल्लाना शुरू कर दें जैसे कि हम किसी आदमी को खतरे की दिशा में बढ़ते हुए देखकर चिल्लाते हैं? यह सही है कि इस धंधे से सम्बंधित अधिकांश लेखक इस बारे में अब एकमत हैं कि अंग्रेजी

उपन्यास बुरी स्थिति में फंसा है, और यह कि वह वस्तुतः दिशा-भ्रष्ट और उद्देश्य-विहीन हो गया है। उपन्यास, जिसका सर्वोपरि आधार यह है कि वह खूब पढ़ा जाय, अब तेजी से अपठनीय होता जा रहा है।

निश्चय ही इसका अर्थ यह नहीं है कि चवन्निया पुस्तकालयों का कारबार ठप्प होने जा रहा है। उपन्यास तो आज भी खूब पढ़े जाते हैं पहले से अधिक पढ़े जाते हैं, किन्तु पढ़े वही जाते हैं जो अपठनीय हैं। चूंकि कूटोक्ति से भूखे आदमी का पेट नहीं भरता, इसलिए स्थिति को —जैसा कि मैं उसे समझता हूं—खोल कर रखने का प्रयत्न करूंगा।

सबसे पहली बात तो यह कि संकट गुणों के ह्रास का संकट है। निस्संदेह, अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास पैदा करने वाले लेखकों की संख्या आज जितनी अधिक है उतनी पहले कभी नहीं थी। वे ऐसे उपन्यास लिख रहे हैं जो हमारी तात्कालिक कामना को गुदगुदाते हैं, जिन्हें हम रेडियो के चालू न होने पर (या उसके चालू होने पर भी) खुशी से पढ़ते हैं, रेल-यात्रा करते समय, या समुद्र के किनारे, एक बार पढ़ कर जिन्हें हम सदा के लिए भूल जाते हैं, या फिर एकदम याद न रहने के कारण धोखे में हम उन्हें फिर उठा लेते हैं और आधा पढ़ जाने के बाद एकाएक याद आता है कि अरे, यह तो हमारा पढा हुआ है! ऐसे उपन्यासों से—यों संयोगवश उनकी चर्चा हो जाना दूसरी बात है—यहां हमारा कोई सरोकार नहीं है। कारण कि वे यथार्थ का चित्रण नहीं करते।

कहने को तो इन उपन्यासों के लेखक भी एक वास्तविक जगत का चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं। किन्तु उनके द्वारा प्रस्तुत वास्तविकता का परिमाण—उस आकस्मिक संयोग को छोड़िये जिसका सम्बंध लेखक से न होकर किसी व्यक्तिगत परिस्थिति से होता है, किसी ऐसी वस्तु से होता है जो पुस्तक में नहीं, बल्कि पाठक में है—इतना काफी नहीं होता कि वह हमें बरबस झंझोड़ डाले, हमारी तमाम भावनाओं को चौकन्ना तथा मस्तिष्क को चौकस बना दे और हमें उन लोगों के देश में ले जाय जो देखते हैं, और उनकी आंखों से देखने के बाद उस अनुभव को हम फिर कभी न भूल सकें।

आज उपन्यास-आलोचक को, सप्ताह प्रति सप्ताह, मीलों तक फैली मुद्रित पन्नों की निर्जन तथा उबा देने वाली दलदल में छटपटाना, और निरे नकली भावों तथा अनगढ़ यौन-सम्बंधों के ऊहापोह से भन्नाकर घृणा के साथ मुंह फेर लेना पड़ता है। मि. सिरिल कोनोली का, जो स्पष्टवादिता में अन्य कतिपय आलोचकों से कहीं आगे हैं, कहना है कि जिन पुस्तकों की वे आलोचना करते हैं, उन्हें पढ़ जाना उनके लिए बहुधा पूर्णतया असम्भव होता है। परिणाम इसका यह कि उनके रोचक लेख, आम तौर से और हमारे सौभाग्य से, स्वयं मि. कोनोली से जितना अधिक सम्बन्ध रखते हैं उतना उस उबा देने वाली कच्ची सामग्री से नहीं जो कि मि. कोनोली के लिए जैसे-तैसे दो जून पेट भरने का साधन बनती है।

यह देख कर आश्चर्य होता है कि बुरी पुस्तकों की यह बाढ़ पढ़ने वाली जनता में वृद्धि का फल नहीं है। बल्कि यह उन तौर-तरीकों का फल है जिनसे कि हमारे प्रकाशक पाठकों की आए दिन बढ़ती हुई संख्या की रुचि को तुष्ट करते हैं। पाठक को अब वह नहीं मिलता जो कि वह चाहता है, बल्कि उसे उसी को चाहना पड़ता है जो प्रकाशन का दैत्य उसे प्रदान करता है।

इन भीमाकार तथा अत्यधिक यन्त्रीकृत प्रकाशन गृहों को, जो बहुधा अपने निजी छापेखानों तथा जिल्दसाजी के विभागों से, और आधुनिक व्यापार के लिए अत्यन्त आवश्यक—बैंक से मोटी-ताजी रकमें (ओवर ड्राफ्ट) लेने की क्षमता से भी युक्त होते हैं, अपने आपको चालू रखने के लिए बाध्य होकर पुस्तकों की ताक में रहना पड़ता है। उन्हें अधिकाधिक पुस्तकें चाहिएं। जहां तक हो सके उपन्यास चाहिएं। कारण कि उपन्यास लेखक को उतना पैसा नहीं देना पड़ता जितना कि गैर-उपन्यास साहित्य के लेखक को, फिर लागत भी उस पर अधिक नहीं आती—सस्ते में ही किताब तैयार हो जाती है, और पुस्तकालयों के रूप में उन्हें तैयार बाजार भी मिल जाता है, बशर्ते कि इस बात की गारन्टी की जा सके कि पुस्तक मौलिकता से पूर्णतया शून्य है।

प्रकाशकों की प्रकाशन सूची में शीर्षकों की अधिकाधिक वृद्धि होती रहनी चाहिए। इसके बिना वे एक-दूसरे से होड़-युद्ध में टिक नहीं सकते। उनके लिए अधिकाधिक किताबें छापना जरूरी है ताकि उनके छापेखाने व्यस्त रहें, या जिनके पास निजी छापेखाने नहीं हैं वे उन मुद्रकों को तुष्ट रख सकें जो कि उनका काम करते हैं। क्या छपता है, इसकी उन्हें विशेष चिन्ता नहीं। कूड़ा हो या धूल में छिपा रत्न, एक ही तरह के टाइप में तथा एक ही कागज पर वह छपेगा, जिल्द भी एक ही प्रकार के कपड़े की बनेगी, एक-सा ही आवरण उसकी रक्षा करेगा और उन्हीं पुराने पुस्तकालयों को वह बेचा जाएगा। दोनों ही सूरतों में प्रकाशक अपना ढोल पीट कर उसे उत्कृष्ट कलाकृति घोषित करेगा, और अधिकांश आलोचक—जो दूध-पानी अलग करने के निराशापूर्ण काम को एक मुद्दत से छोड़ चुके हैं—उस क्षण के अपने मूड अथवा प्रकाशक के साथ अपने निजी सम्बंधों के अनुसार कुछ घटा या बढ़ा कर प्रकाशक के मूल्यांकन को ही अलस भाव से स्वीकार कर लेंगे।

पुस्तक प्रकाशन से लाभ बटोरने के इस भारी खेल में स्वयं लेखक एक निरा शून्य बनकर रह गया है। जब उसकी पुस्तकें बिकती हैं तो उसे एक महत्वपूर्ण विभूति घोषित किया जाता है, जिससे उसकी स्वतंत्रता में कुछ वृद्धि तो होती है, फिर भी वह खेल का केवल एक अंग ही बना रहता है—होता केवल यह है कि अब उसे व्यवसाय के प्रचार पक्ष के हवाले कर दिया जाता है। व्यापारिक पक्ष अब उसकी कुछ आवभगत करता है, किन्तु आवभगत से भी—यदि वह सावधानी से की जाय—अच्छा मुनाफा बनाया जा सकता है।

इस व्यवसाय के प्रचार पहलू के बारे में—माह की श्रेष्ठ पुस्तक वाले विभिन्न क्लबों तथा ढोंडीपने के बारे में, पत्र-जगत को मुट्ठी में रखने की कला और रेडियो द्वारा साहित्य की "सेवा" करने के बारे में—भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। किन्तु इनका यहां उल्लेख करना निरर्थक होगा। कारण कि प्रस्तुत निबंध के उद्देश्य से उनका दूर का ही सम्बंध है।

लेखक और पाठक के रूप में जिस तथ्य में हमारी दिलचस्पी है, वह यह है कि प्रकाशन व्यवसाय अब बड़ी पूंजी वाले व्यवसायों का एक

अभिन्न अंग बन गया है। इसके लिए प्रकाशकों को दोष देना मूर्खता होगी। बड़े-बूढ़ों के शब्दों में उन्हें "जीवन के तथ्यों" से बाध्य होकर ही यह स्थिति ग्रहण करनी पड़ी है। यहां केवल इतना ही नोट करने की आवश्यकता है कि साहित्य पर, और विशेष रूप से उपन्यासों पर, इसका निन्दनीय प्रभाव पड़ा है। पुस्तक व्यवसाय में से यह लक्ष्य गायब हो गया है कि उच्च कोटि की पुस्तकें प्रकाशित की जाएं, और उसके आसन पर परिमाण ने दखल कर लिया है।

किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण संकट एक और है—दृष्टिकोण का संकट, जिसने स्वयं उपन्यासकारों को ग्रस रखा है। बुरे उपन्यासों तथा घटिया कृतियों की भीषण बाढ़ के बावजूद आज अच्छे उपन्यासकार, ईमानदार कलाकर्मी, भी रचना कर रहे हैं। डी. एच. लौरेन्स को मरे अभी कुछ ही दिन हुए हैं। जेम्स जॉयस[1] और ई. एम. फार्स्टर अभी जीवित हैं। रैबेका वैस्ट,[2] अल्डस हक्सले[3] तथा आधे दरजन के करीब अन्य लेखक आज भी गम्भीरता और सत्यता के साथ उपन्यास लिखने में जुटे हैं। यह इस समय हमारी बहस का विषय नहीं कि इस कार्य में उन्हें कितनी सफलता मिली है।

गम्भीर लेखक को आज गहरी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अन्य सब कलाकारों की तुलना में लेखक ही अपने देश को अधिक व्यक्त करता है। उसके उपन्यास अनूदित होते हैं और समूची दुनिया में पढ़े जाते हैं। वेल्स, किपलिंग, गाल्सवर्दी और कानराद की कृतियों के आधार पर ही कल के इंग्लैण्ड को विदेशों में परखा जाता था। आज के इंग्लैण्ड को परखा जाता है मुख्यतः हक्सले के आधार पर, और उनके बाद उन गिने-चुने युवक लेखकों के आधार पर, जिनकी कृतियों को अनुवाद का सौभाग्य अभी-अभी प्राप्त हो रहा है।

फलतः उपन्यासकार का अपने देश के वर्तमान तथा अतीत—दोनों के प्रति एक विशेष दायित्व होता है। अतीत से मिली विरासत उसके लिए महत्वपूर्ण है। उससे पता चल जाता है कि देश की सांस्कृतिक विरासत के वे कौनसे अंश हैं जो आज भी सार्थक हैं। वर्तमान के बारे में वह जो कुछ कहता है, उसका भी महत्व है, कारण कि उससे आशा

की जाती है कि वह अपने युग के अत्यंत जीवंत तत्वों को व्यक्त करेगा। यहां पर आपत्ति की जा सकती है कि उपन्यासकार का इस बात से कोई सरोकार नहीं कि अन्य लोग उसकी कृतियों के बारे में क्या कहते हैं; विरासत में वह क्या प्राप्त करता है और वह क्या व्यक्त करता है, यह उसका एकदम निजी मामला है।

यदि यह अकेले उसका निजी मामला हो, तब भी अपनी कृति के प्रति बाहरी दुनिया की प्रतिक्रियाओं से वह अपने आप को अलग नहीं रख सकता। एक ऐसी दुनिया में जहां अत्यंत अहंवादी तथा विनाशकारी रूपों में राष्ट्रीयता अंधी दौड़ लगा रही है, राष्ट्रीयता के प्रति हर गम्भीर तथा महत्वपूर्ण लेखक का रवैया महत्व रखता है। और आज के प्रत्येक गम्भीर अंग्रेज लेखक के लिए यह एक अत्यंत गौरव की बात है कि वह इसे समझता है, और यह कि उनमें से अधिकांश तत्सम्बंधी समस्याओं के बारे में पूरी गम्भीरता से सोचते हैं।

क्या लेखक धर्म की खातिर देश को तिलाञ्जलि दे दे? मि. एवलिन वौघ ने ऐसा ही किया, और देखा कि ऐसा करने पर वह केवल एक दूसरे देश की राष्ट्रीयता की तैयार गोद में पहुंच गये हैं। स्पष्ट है कि आज रोमन कैथोलिक धर्म का अर्थ है फासिस्ट इटली का—आधुनिक राज्यों में जर्मनी के बाद सबसे अधिक आक्रमणात्मक, सबसे ज्यादा अहंवादी तथा क्रूर राज्य का—समर्थन करना। लेखक फिर क्या करे—क्या वह डी. एच. लौरेन्स के रक्त और नस्ल वाले सिद्धान्त के अनिवार्य परिणामों को शिरोधार्य करे? ऐसा करने पर हो सकता है कि वह अन्त में नाजी संस्कृति का और उसके मध्यकालीन यंत्रणागृहों तथा युद्ध द्वारा "आध्यात्मिक" उत्थान के गौरव गान का समर्थन करने लगे।

मि. वौघ ने जेस्यूट शहीद एडमण्ड कैम्पियोन[1] की जीवनी लिखी है और उन्हें हौथार्नडन पुरस्कार से—उन दो पुरस्कारों में से एक से जो कि किसी अंग्रेज लेखक को मिल सकते हैं—सम्मानित किया गया है। किन्तु क्या शेक्सपीयर अथवा मारलो भी कैम्पियोन को शहीद समझते? अथवा क्या वे इस विचार की ओर न झुकते कि उस समय, जब कि इंग्लैण्ड अपने राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए लड़ रहा था, जब कि इंग्लैण्ड

ातियों के लिए लड़ रहा था जिनकी बदोलत हमारी राष्ट्रीय सृजन हुआ, वह ऐसे कामों में लगा रहा जिनका श्रेष्ठतम थपीयर की निम्न पंक्तियों से दिया जा सकता है :

"...समय के मूर्ख,
। मृत्यु में भलाई है, जिये जो अपराध के लिए।"

है कि आज के लेखक में यह परखने की बहुत ही पैनी चाहिए कि सच्ची राष्ट्रीयता क्या है और कोरी राष्ट्रीयता -विरोधिता क्या है। अतीत हो चाहे वर्तमान, दोनों को ही है। हमें अपने अभियान में अतीत को साथ लेकर चलना है, देखना आवश्यक है कि उसका बोझ इतना अधिक न हो कि रह जाएं। अतीत से हम वही चुनें जो इतना वास्तविक हो सके और बाकी को फिलहाल छोड दें—उसे अपने साथ न बाधा देने वाला हो।

। के संकट का दर्शन से सम्बध है, और इसलिए रूप से भी । अधिकांश अंग्रेज लेखकों के दार्शनिक विचारों पर यूरोपीय की अन्तिम कड़ी—सिगमण्ड फ्राएड[1]—का गहरा प्रभाव एड द्वारा विकसित मनोविश्लेषण बौद्धिक अराजकता की और व्यक्तिवाद का मोहनी मंत्र है। निश्चय ही इसने पिछले अंग्रेजी उपन्यास को जितना अधिक प्रभावित किया है, न्हीं विचारों ने नहीं। साथ ही इसने अंग्रेजी उपन्यास को द्धिक दिवालियेपन की स्थिति में ला पटका है, हालांकि अनेक लिक कृतियां ऐसी भी है जो बहुत कुछ फ्राएडवादी विश्ले- के उद्घाटन के कारण ही प्रभावशाली बन पाई हैं।

तिम प्रश्न जो आज उपन्यासकार को मथता है, वह व रखता है। क्या कोई उपन्यासकार इस दुनिया की जिसमें कि वह रहता है बेखबर रह सकता है? क्या वह ओं के शोर-शराबे की ओर से अपने कान बंद कर सकता अपने देश की स्थिति की ओर से अपनी आंखें मूंद सकता

है ? क्या वह उस समय अपना मुंह बंद रख सकता है जब कि चारों ओर विभीषिका मंडरा रही हो और व्यक्तिगत लालसा को अक्षुण्ण रखने के लिए वचनबद्ध राज्य के नाम पर जीवन को दो जून रोटियों से भी वंचित किया जा रहा हो ?

अधिकाधिक उपन्यासकार अब यह अनुभव करने लगे हैं कि आंखे, कान और वाणी वस्तुतः चेतना के संवेदनशील अंग हैं जो मानवीय जगत से अनुप्राणित होते हैं, और यह कि वे किसी आध्यात्मिक जगत के—परम्परा से चले आए तथाकथित 'कला'-जगत के—निष्क्रिय चाकर मात्र नहीं हैं। वे समझने लगे हैं कि वे एक ऐसे समय में रह रहे हैं जिसमें कि छोटी-मोटी बातों को छोड़िए, खुद मानवता के भाग्य का निर्णय किया जा रहा है, और यह सुन कर गहरे विक्षोभ से तिल-मिला उठते हैं कि वे, जिनका परम्परागत गौरव सदा उनका मानवता-वाद रहा है, मानव के भाग्य के बारे में परेशान न हों !

यह भी उनसे छिपा नहीं है कि सभ्यता के भविष्य के बारे में दो महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रचलित हैं। एक दृष्टिकोण का विश्वास है कि सभ्यता व्यक्तिगत सम्पत्ति के आधार पर, तानाशाही राष्ट्रवादी राज्य के रूप में व्यक्त युद्ध और पागल अहंवाद के वातावरण में, विकसित होती रहेगी। दूसरे दृष्टिकोण का विश्वास है कि मानवता सामाजिक सम्पत्ति पर आधारित उन नये मूल्यों के लिए संघर्ष कर रही है, जो युद्ध को बहिष्कृत तथा राष्ट्रवाद का अंत कर देंगे और उनकी जगह पर एक विश्व-सभ्यता के अन्तर्गत एक-दूसरे से सहयोग करते हुए स्वस्थ राष्ट्रों के उन्मुक्त विकास का रास्ता खोल देंगे।

अधिकांश लेखक, न्यूनाधिक मात्रा में, दूसरे दृष्टिकोण की ओर झुके हैं। उनमें से अनेक—वे जिनकी दृष्टि औरों की तुलना में अधिक साफ है, अनुभव करते हैं कि इस तरह की नयी सभ्यता का उदय मुख्यतः इस संघर्ष के फलस्वरूप होगा जिसे आज मजदूर वर्ग चला रहा है, और यह कि इस नयी सभ्यता के प्रारंभिक चिन्ह अभी भी सोवियत संघ में देखे जा सकते हैं। इस अनुभूति ने उनमें मार्क्सवाद, जो मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी हिस्से का तथा सत्रह करोड़ की आबादी से युक्त महान

सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ का जीवन-दृष्टिकोण है, के प्रति रुचि पैदा कर दी है।

अब तक यह धारणा प्रचलित थी कि मजदूर-आन्दोलन तथा रूसी क्रान्ति अपने आप में अच्छे हो सकते हैं, लेकिन मार्क्सवाद चूंकि एक 'भौतिकवादी' दर्शन है, इसलिए कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ उसकी पटरी नहीं बैठ सकती। यह धारणा आमतौर से इस रूप में सामने आती है कि मार्क्सवाद "कलाकार को कठमुल्लापन की जंजीरों में जकड़ देता है।"

किन्तु अब इस बात को कदाचित् पहले जैसे विश्वास के साथ नहीं कहा जाता। आज मार्क्सवाद के बारे में लोगों की जानकारी पहले से अधिक है। फिर भी यह एक आम धारणा बन गई है और उन लोगों में भी, जो मार्क्सवादियों से सहानुभूति रखते हैं, काफी लोग ऐसे हैं जिनका अब भी यह विश्वास है कि "समाजवादी यथार्थवाद" या "क्रान्तिकारी उपन्यास" जैसे नुस्खों को राजनीतिक नारों से अधिक गम्भीर रूप में नहीं लेना चाहिए।

प्रस्तुत निबंध का लक्ष्य यह दिखाना है कि अंग्रेजी उपन्यास का भविष्य और इसलिए अंग्रेजी उपन्यासकारों को परेशान करने वाली समस्याओं का हल ठीक मार्क्सवाद में, और कला के बारे में 'समाजवादी यथार्थवाद' के उसके नुस्खे में, निहित है। यह नुस्खा ही साहित्य के क्षेत्र में वामपक्षी ताकतों को एकजूट करेगा तथा उनमें नये प्राण का संचार करने में समर्थ होगा।

दो

मार्क्सवाद और साहित्य

मार्क्सवाद एक भौतिकवादी दर्शन है। यह पदार्थ की प्राथमिकता में विश्वास करता है। इसका विश्वास है कि दुनिया का हमसे बाहर और हमसे स्वतंत्र अस्तित्व है। किन्तु मार्क्सवाद सकल पदार्थ को बदलता हुआ, तथा इतिहास-युक्त रूप में देखता है, और किसी भी वस्तु को स्थायी तथा अपरिवर्तनीय नहीं मानता। सत्रहवीं शताब्दी के अंग्रेज लेखकों में बिरले ही ऐसे होंगे जिनकी जीवन के भौतिकवादी दृष्टिकोण से पटरी न बैठती हो, हालांकि भौतिकवाद के बारे में उनका दृष्टिकोण वही न था जो कि मार्क्स और एंगल्स का था। शैक्सपीयर को, जो अपने दार्शनिक विचारों की प्रेरणा रैबेले और मौन्टेन से लेते थे, जीवन के मार्क्सवादी दृष्टिकोण में कोई अनर्थ को बात न दिखाई देती। अठारहवीं शताब्दी के अधिकांश भाग में ब्रिटेन के अनेक महानतम लेखक जीवन के भौतिकवादी दृष्टिकोण को अपनाने में कुछ भी आनाकानी न करते।

लेकिन आज ऐसा नहीं है। एक शताब्दी से भी अधिक काल से ऐसा नहीं है। आज का साहित्यिक पत्रकार यह विरोध-भाव प्रकट करता है कि भौतिकवाद और कल्पना हमबिस्तर नहीं हो सकते। अगर ऐसा हुआ तो, उनकी समझ में, इसका परिणाम सृजन नहीं, बल्कि एक गंदा उत्पात होगा। यह एक बहुत ही विचित्र और विकृत दृष्टिकोण है। अन्यथा किसी कल्पनाशील लेखक के लिए, विशेषकर उपन्यास-लेखक के लिए, इससे स्वाभाविक और क्या हो सकता है कि वह भौतिकवादी दृष्टिकोण को अपनाये ?

सत्ता चेतना की नियंता है,"—यही पदार्थ और आत्मा के बीच मूल सम्बंध की मार्क्सवादी व्याख्या है। कलाकार इस दृष्टिकोण को वस्तुत: माने या न माने, किन्तु उसके सृजनात्मक काम का आधार यही होता है, कारण कि सारी काल्पनिक सृष्टि उसी वस्तुजगत का प्रतिबिम्ब है जिसमें कि सृष्टिकर्ता रहता है। यह काल्पनिक सृष्टि वस्तुजगत के साथ उसके सम्पर्क, तथा जगत की वस्तुओं के प्रति उसके प्रेम या घृणा का फल है।

रंगों और रोशनियों की बहार, भांति-भांति के रूप और आकार, जीवन की महक समीरों का श्वास, पशु जीवन का—और इसी प्रकार मानव-जीवन का भी—भौतिक सौन्दर्य या भौतिक भोंडापन, सचमुच के पुरुषों और स्त्रियों के—खुद सृष्टिकर्ता भी जिनमें शामिल है—कृत्य, विचार और सपने, यही सब कला की बीज-वस्तुएं हैं।

मिल्टन कविता से तीन चीजों की मांग करते थे: यह कि वह "सीधी-सादी, संवेदनशील और गहरी चाह में पगी हो।" संवेदनशीलता से विहीन कला—वह कला जिसका वस्तुजगत के बोध से, इन्द्रियगोचर वस्तुओं से, कोई लगाव नहीं होता—कोई कला नहीं है, यहां तक कि वह कला की छाया भी नहीं है। सृजनात्मक प्रक्रिया का तत्व सृजनकर्ता और बाह्य यथार्थ के बीच संघर्ष में, इस यथार्थ को काबू में करने तथा उसकी पुन: रचना करने की आवश्यकता में, निहित है। किन्तु इस पर आपत्ति की जा सकती है: "क्या मार्क्सवाद यह दावा नहीं करता कि कला-कृतियां आर्थिक आवश्यकताओं तथा आर्थिक प्रक्रियाओं का प्रतिबिम्ब मात्र हैं?"

नहीं, यह मार्क्सवादी दृष्टिकोण नहीं है। असल में यह उन्नीसवीं शताब्दी के पाज़िटिविस्ट मत के कुछ भौतिकवादियों का दृष्टिकोण था जिसका मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से कोई वास्ता नहीं है। जीवन की अधिभूत प्रक्रियाओं—कलात्मक सृजन भी उनमें से एक है—और जीवन के भौतिक आधार के बीच के सम्बंध के बारे में अपने विचारों को मार्क्स *क्रिटीक आफ पॉलीटिकल इकोनोमी* की अपनी सुप्रसिद्ध भूमिका में पूरी सफाई के साथ बयान कर चुके हैं। उनका कहना है:

जीवन के भौतिक साधनों के उत्पादन के तरीके सामाजिक राजनीतिक और बौद्धिक जीवन की समूची प्रक्रिया को निर्धारित करते हैं। लोगों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि इसके प्रतिकूल उनका सामाजिक अस्तित्व ही उनकी चेतना को निर्धारित करता है। अपने विकास की एक अवस्था विशेष में समाज में उत्पादन की भौतिक शक्तियां उत्पादन के वर्तमान सम्बंधों से टकराने लगती हैं, अथवा — इसी बात को अगर कानून की भाषा में व्यक्त करें तो — उन साम्पत्तिक सम्बंधों से टकराने लगती हैं जिनके अन्तर्गत वे पहले कार्यरत थीं। उत्पादन की शक्तियों के विकास के रूपों से बदलकर ये सम्बंध उनकी बेड़ियां बन जाते हैं। तब सामाजिक क्रान्ति के एक युग का उद्घाटन होता है। आर्थिक नींव में परिवर्तन के साथ उसका समूचा भीमाकार ऊपरी ढांचा भी, न्यूनाधिक तीव्रता से बदलने लगता है। ऐसी क्रान्तियों पर विचार करते समय हमें उत्पादन की आर्थिक परिस्थितियों के — पदार्थ विज्ञान की भांति जिन्हें एकदम सही-सही जांचा जा सकता है — और कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, कलात्मक या दार्शनिक — संक्षेप में सैद्धान्तिक रूपों के बीच, जिनमें लोग इस द्वन्द्व की चेतना पाते और उसे संघर्ष के द्वारा निबटाते हैं, सदा भेद करना होगा।"[१]

मार्क्स का, तो फिर, निस्संदेह यह विश्वास था कि जीवन का भौतिक विधान अन्ततोगत्वा बौद्धिक विधान को निर्धारित करता है। किन्तु यह एक क्षण के लिए भी कभी उन्होंने नहीं सोचा कि इन दोनों के बीच का सम्बंध सीधा है, सहज ही दिखने और यंत्रवत विकसित होने वाला है। यदि कोई उनके सामने यह विचार रखता कि चूंकि पूंजीवाद सामन्तवाद की जगह लेता है, इसलिए एक "पूंजीवादी" कला तुरत सामन्तवादी कला की जगह आ जाती है, और यह कि तमाम महान कलाकार परिणामतः नये पूंजीवादी वर्ग की आवश्यकताओं को सीधे प्रतिबिम्बित करने लगते हैं, तो वे इसे हंसकर उड़ा देते। न ही, जैसा कि आगे चल कर प्रकट होगा, वह यह मानते थे कि चूंकि उत्पादन का पूंजीवादी तरीका सामन्ती तरीके से अधिक प्रगतिशील है, इसलिए पूंजीवादी कला सामन्ती कला से सदा ऊंचे स्तर की होनी चाहिए, और यीस

और राम क दास राज्यो की अथवा प्राचीन पूर्वीय शहनशाहतों की कला के मुकाबिले में सामन्ती कला का सिंहासन ऊंचा होना चाहिए। इस तरह के मोटे तथा भोंडे विचारों का मार्क्सवाद की समूची आत्मा से दूर का भी वास्ता नही है।

मार्क्स का यह कहना ठीक ही था कि समाज के भौतिक आधार में हुए परिवर्तनों को आर्थिक इतिहासज्ञ पदार्थ विज्ञान की भांति सही सही जाच सकता है (स्पष्ट ही इसका मतलब यह नहीं है कि इन परिवर्तनों का वैज्ञानिक रूप से निर्धारण होता है), किन्तु जीवन के ऊपरी सामाजिक तथा आध्यात्मिक ढांचे में हो रहे परिवर्तनों की ऐसी कोई वैज्ञानिक नापतोल नहीं की जा सकती। परिवर्तन होते हैं; लोगों को उनका बोध होता है, नये और पुराने के बीच द्वन्द्व का वे अपने दिमागों में "निबटारा" करते हैं। किन्तु यह निबटारा वे इतने असम, अतीत से विरासत में मिले हर किस्म के बोझ से दबे, बहुधा अस्पष्ट रूप में तथा सदा ऐसे तरीके से करते हैं कि लोगों के दिमागों में हो रहे परिवर्तनो का आसानी से पता नही लगता।

उदाहरणार्थ, यह सच है कि फ्रांस की क्रांति द्वारा सम्पन्न सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की अभिव्यक्ति *कोड नैपोलियन* के रूप में हुई। किन्तु इस तथ्य की जानकारी, अपने-आप में, *कोड नैपोलियन* को स्पष्ट नहीं करती। इसके लिए फ्रांस के इतिहास तथा क्रांति से पहले उस देश में वर्गों के सम्बंधों को समझना भी आवश्यक है, इसके लिए स्वयं क्रांति के विकासक्रम और वर्ग-सम्बंधों में उसने जो परिवर्तन किये, उन्हे समझना आवश्यक है, और सबसे अन्त में नैपोलियन की फौजी तानाशाही को समझना आवश्यक है। केवल तभी यह बात समझ में आ सकती है कि *कोड नैपोलियन* किस प्रकार नये बुर्जुआ समाज तथा फ्रांस की उस औद्योगिक क्रान्ति की कानूनी अभिव्यक्ति थी जिसका नैपोलियन-काल में सूत्रपात हुआ। और कानून भावगत ऊपरी ढांचे का सम्भवतः सबसे अधिक प्रभावशील अंग है, उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन के अनुसार यह अत्यंत आसानी के साथ बदल जाता है। किन्तु कला का आधार

से बहुत दूर का नाता होता है, और परिवर्तन का उस पर कहीं कम आसानी के साथ प्रभाव पड़ता है।

ऐंगल्स ने १८६० में जे. ब्लॉक को लिखे अपने एक पत्र में इस सिलसिले में बहुत ही जोरदार शब्दों में अपना मत प्रकट किया था :

"इतिहास की भौतिकवादी धारणा के अनुसार वास्तविक जीवन में उत्पादन और पुनरोत्पादन ही अन्ततः इतिहास के निर्णयात्मक तत्व हैं। इससे बड़ा दावा न तो मार्क्स ने किया है और न मैंने। इसलिए यदि कोई इसे तोड़-मरोड़कर यह कथन गढ़ता है कि आर्थिक तत्व ही एकमात्र निर्णयात्मक तत्व है, तो वह उसे एक निरर्थक, निराधार और बेहूदा फिकरा बना देता है। आधार आर्थिक स्थिति है, किन्तु ऊपरी ढांचे के विभिन्न तत्व — वर्ग-संघर्ष तथा तज्जन्य परिणामों के राजनीतिक रूप, सफल लड़ाई के बाद विजयी वर्ग द्वारा कायम विधान, आदि—कानून के रूप — और यहां तक कि युद्धरत पक्षों के दिमागों मे इन समस्त वास्तविक संघर्षों की प्रतिक्रियाएं: राजनीतिक, कानून सम्बंधी और दार्शनिक सिद्धान्त, धार्मिक विचार और आगे विकसित होकर रूढ़िग्रस्त पथों के रूप में उनकी परिणति, — ऐतिहासिक संघर्षों के विकास क्रम पर ये सब भी अपना असर छोड़ते है और अनेक दृष्टान्तों में उनका रूप निर्धारित करने में ये सबसे बड़ी भूमिका अदा करते हैं। इन तमाम तत्वों में क्रिया-प्रक्रिया चलती है जिसमें, आकस्मिक घटनाओं के अन्तहीन ताते के बीच (अर्थात् ऐसी घटनाओं के बीच जिनका अन्तर्सम्बंध इतने दूर का अथवा उसे सिद्ध करना इतना असम्भव होता है कि हम उसे अनुपस्थित समझ कर नजरंदाज कर सकते हैं) आर्थिक प्रक्रिया अन्ततः आवश्यक तत्व के रूप मे उभर आती है। अगर ऐसा न होता तो इतिहास के किसी भी मनचाहे काल पर उक्त सिद्धान्त का प्रयोग गणित के साधारण से साधारण योग से भी अधिक सहज हो जाता।"[१]

इसलिए, जहां मार्क्सवाद आर्थिक कारणों को ही किसी परिवर्तन का अंतिम और निर्णयात्मक प्रकरण मानता है, वहां वह इस बात से इन्कार नहीं करता कि 'भावगत' प्रकरण भी इतिहास के क्रम को प्रभावित कर सकते हैं, यहां तक कि परिवर्तनों का रूप (लेकिन केवल रूप ही) निर्धा-

रित करने में उनकी भूमिका प्रमुख भी हो सकती है यह कहना केवल मार्क्सवाद का उपहास करना है कि वह कलात्मक रचना जैसे मानव चेतना के आध्यात्मिक तत्व के महत्व को कम करके आंकता है। इसी प्रकार यह दावा करना कि मार्क्स कला-कृतियों को भौतिक तथा आर्थिक प्रकरणों का प्रतिबिम्ब समझते थे, मार्क्स का मजाक उड़ाना है। उन्होंने ऐसा कभी नहीं समझा। वह खूब अच्छी तरह समझते थे कि धर्म, या दर्शन, या परम्परा, एक कला की रचना में भारी योग दे सकती है। यहां तक कि इनमें से किसी एक या अन्य "भावगत" तत्व की उस कृति-विशेष के रूप-निर्धारण में प्रमुख भूमिका हो सकती है। किन्तु उन सब तत्वों मे जिनसे एक कलाकृति की रचना होती है, केवल आर्थिक प्रक्रिया ही ऐसी है जो *अंततः* अनिवार्य प्रकरण के रूप में अपने आपको प्रकट करती है। जिस बात को मार्क्स और ऐंगेल्स ऐतिहासिक परिवर्तनों के लिए सच मानते थे, कलात्मक रचनाओं के लिए भी वे उसे सच मानते थे।

मार्क्सवाद के विरुद्ध बहुधा यह आपत्ति की जाती है कि वह व्यक्ति की भूमिका को नहीं मानता, उसे केवल ऐसी निराकार आर्थिक शक्तियों का शिकार समझता है जो उसे भाग्य-चक्र की अनिवार्यता के साथ एक निश्चित अन्त की ओर धकेल रही हैं। इस प्रश्न पर हम यहां कुछ नहीं कहेंगे कि इस धारणा के आधीन कि बाह्य भाग्य मानव को एक अनिवार्य अन्त की ओर ले जा रहा है, कलाकृति की रचना असम्भव है अथवा नहीं। कदाचित् कालविनिज्म कभी महान कला पैदा नहीं कर सका है, किन्तु भाग्य और कयामत की धारणा को इसका श्रेय प्राप्त है— ग्रीक दुःखान्त नाटक और हार्डी की कृतियां, केवल इन दो उदाहरणों का ही हम यहां उल्लेख करेंगे। फिर भी यह सम्भव है कि उपर्युक्त आपत्ति यदि वास्तव में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को पेश करती, तो सही होती। कम से कम इतना तो है ही कि उपर्युक्त आपत्ति पश्चिमी जगत की महान कला की मानववादी परम्परा से अनुप्राणित है, और इसलिए श्रद्धा के योग्य है। हालांकि वह एक भारी गलतफहमी पर आधारित है।

कारण कि मार्क्सवाद व्यक्ति से इन्कार नहीं करता। वह जनसमुदाय को आर्थिक ताकतों के दुर्निवार चंगुल में फंसे रूप में ही नहीं देखता। यह

सच है कि कुछ मार्क्सवादी साहित्यिक कृतियों ने---विशेषकर कुछ "सर्वहारा" उपन्यासों ने---भोले आलोचकों को यह विश्वास करने का अवसर दिया कि ऐसा ही होता है, किन्तु इसमें कमजोरी शायद उन उपन्यासकारों की है जो अपने विषय की महानता के अनुरूप ऊंचे नहीं उठ सके, वे इतने योग्य सिद्ध नहीं हुए कि प्रकृति को बदलने तथा नयी आर्थिक शक्तियों की रचना करने की प्रक्रिया के दौरान में स्वयं अपनी कायापलट करने वाले मानव का चित्रण कर सकें। मार्क्सवाद मानव को अपने दर्शन का केन्द्र मानता है, कारण कि जहां वह यह दावा करता कि भौतिक शक्तियां आदमी को बदल सकती हैं, वहां पर यह भी अत्यन्त स्पष्टता से घोषित करता है कि यह मानव ही है जो भौतिक शक्तियों को बदलता और ऐसा करने के दौरान में अपनी भी कायापलट करता है।

मानव और उसका विकास मार्क्सवादी दर्शन का केन्द्रबिन्दु है। मानव किस प्रकार बदलता है? बाह्य जगत से उसके क्या सम्बन्ध हैं? यही वे प्रश्न हैं जिनके उत्तर मार्क्सवाद के संस्थापकों ने खोजे और ढूंढ निकाले। मार्क्सवादी दर्शन की रूप-रेखा देना यहां मेरा अभीष्ट नहीं है। किन्तु आइए, इतिहास के एक सक्रिय साधन के रूप में मानव के प्रश्न की, काम करते और जीवन से संघर्ष करते मानव के प्रश्न की, हम कुछ देर के लिए जरा परीक्षा करें, कारण कि यह एक ऐसा मानव है जो एकबारगी कला का सृजनकर्ता भी है और कला का पात्र भी। इतिहास में व्यक्ति की भूमिका के बारे में ऐंगेल्स की व्याख्या इस प्रकार है:

"इतिहास इस तरह से अपना निर्माण करता है कि अन्तिम परिणाम हमेशा अनेक व्यक्तिगत इच्छा-शक्तियों के द्वन्द्व से पैदा होता है और इन इच्छा-शक्तियों में से भी प्रत्येक, जीवन की अनगिनत विशेष परिस्थितियों के द्वारा, निर्मित होती है। इस प्रकार परस्पर काट करती अनगिनत ताकतें, शक्तियों की समानान्तर चतुर्भुजों की अनन्त शृंखलाएं, एक परिणाम को, ऐतिहासिक घटना को, जन्म देती हैं। इसे भी एक ऐसी शक्ति की उपज के रूप में देखना चाहिए जो अपने समग्र रूप में, निश्चेतन तथा संकल्पहीन काम करती है। कारण कि प्रत्येक व्यक्ति जो संकल्प या इच्छा करता है उसमें अन्य सब बाधक होते हैं, और परिणाम

स्वरूप जो कुछ प्रकट होता है वह एसा होता है जिसकी किसी न भी इच्छा नहीं की थी। इस तरह अतीत का इतिहास एक प्राकृतिक प्रक्रिया की भांति चलता है और तत्वत: गति के समान नियमो से शासित होता है। किन्तु इस तथ्य से कि व्यक्तिगत इच्छा शक्तियां — जिनमें से प्रत्येक वही चाहती है जिसके लिए कि उसका अपना भौतिक गठन तथा वाह्य परिस्थितियां, और अन्तिम रूप से आर्थिक परिस्थितियां (उसकी अपनी निजी परिस्थितियां अथवा आमतौर से समाज की परिस्थितियां) बाध्य करती हैं — अपनी इच्छित वस्तु को नहीं प्राप्त कर पाती, बल्कि एक सामूहिक मध्यमान में, एक सामूहिक परिणाम में, विलय हो जाती हैं, कभी यह नतीजा नहीं निकालना चाहिए कि उनका मूल्य शून्य के बराबर है। इसके प्रतिकूल उनमें से प्रत्येक परिणाम में योगदान देती है, और उसी मात्रा में वह उसमें निहित है।"[1]

यह सूत्र केवल इतिहासज्ञ के काम का ही नहीं है, बल्कि उपन्यासकार के काम का भी है। कारण कि उपन्यासकार इस बात से— जीवन के युद्धक्षेत्र में अन्य इच्छा-शक्तियो के साथ व्यक्तिगत इच्छा-शक्ति के द्वन्द्व के मसले से—अलग नहीं रह सकता, या उसे अलग नहीं रहना चाहिए। यह मानव का भाग्य है कि उसकी इच्छाएं कभी पूरी नहीं होतीं; किन्तु यही उसका गौरव भी है, कारण कि उनकी पूर्ति के लिए किए गए अपने प्रयासों के दौरान में वह स्वयं जीवन को बदलता है, चाहे वह ऐसा कितनी ही सीमित मात्रा में क्यो न करे। मानव के भाग्य के बारे मे मार्क्सवादी सूत्र 'क = ०' नहीं है बल्कि "इसके प्रतिकूल प्रत्येक परिणाम में योगदान देता है और उसी मात्रा में वह उसमें निहित है।"

लेकिन इच्छाओं, आशा-आकांक्षाओं तथा आवेशों-आवेगो का यह द्वन्द्व हवाई मानवों का द्वन्द्व नहीं है। कारण कि ऐंगेल्स इस बात पर बल देना नहीं भूलें हैं कि मानव की आकांक्षाओं और क्रियाकलापों को उसकी भौतिक गठन, और अन्ततः आर्थिक परिस्थितियां—उसकी निजी परिस्थितियां अथवा आमतौर से समाज की परिस्थितियां—निर्धारित करती हैं। उसके सामाजिक इतिहास में, यहां फिर अन्तिम तौर से, वह वर्ग जिसका कि वह एक अंग है, तथा अन्तरविरोधों और द्वंद्वों सहित

उस वर्ग की मनोवैज्ञानिक स्थिति ही, निर्णयात्मक भूमिका अदा करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक मानव का एक दोहरा इतिहास होता है, कारण कि वह एकबारगी एक ऐसा प्रतिनिधि भी है, जिसका एक सामाजिक इतिहास है, तथा एक व्यक्ति भी जिसका व्यक्तिगत इतिहास भी है। ये दोनों भी, चाहे उनमें कितना ही प्रत्यक्ष द्वन्द्व क्यों न दिखाई दे, एक इकाई हैं, क्योंकि सामाजिक इतिहास अन्ततः व्यक्तिगत इतिहास को प्रभावित करता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि कला के क्षेत्र में भी सामाजिक स्वरूप को व्यक्तिगत चरित्र पर हावी होना होगा। फालस्टाफ, डौन क्विक्जोट, टौम जोन्स, जूलियन सौरेल, मौशिये द चार्लस[1] — ये सब प्रतिनिधि चरित्र हैं। किन्तु ये ऐसे चरित्र है जिनकी सामाजिक विशिष्टताएं व्यक्ति को उभार कर रखती हैं, तथा जिनकी व्यक्तिगत आशा-आकांक्षाएं, भूख और प्यास, प्रेम, ईर्ष्या और लालसाएं सामाजिक पृष्ठभूमि को आलोकित करती हैं।

उपन्यासकार व्यक्ति के भाग्य की कहानी उस समय तक नहीं लिख सकता जब तक कि वह सम्पूर्ण वास्तविकता के इस सुस्पष्ट-सुस्थिर दर्शन से भी लैस न हो। उसमें यह समझ होनी चाहिए कि उसके पात्रों के व्यक्तिगत द्वन्द्वों से किस प्रकार उसका अन्तिम निष्कर्ष प्रकट होता है, साथ ही उसे यह भी समझना चाहिए कि जीवन की वे विविध परिस्थितियां कौनसी है जिनकी बदौलत उन व्यक्तियों मे से प्रत्येक वैसा बना है जैसा कि वह है। "परिणामस्वरूप जो कुछ प्रकट होना है वह ऐसा है जिसकी किसी ने भी इच्छा नहीं की थी।"—इस वाक्य में कितने सही रूप में हर महान कलाकृति का सारतत्व निहित है, और खुद जीवन की तरतीब को भी, यह कितनी अच्छी तरह से व्यक्त करता है: कारण कि उस घटना के पीछे जिसकी किसी ने इच्छा नहीं की थी, एक तरतीब होती है। रचनात्मक कलाकार के लिए मार्क्सवाद वास्तविकता को समझने की एक कुंजी है। यह उसे जीवन की तरतीब को देखने में मदद देती है और यह बताती है कि उस में प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति क्या है। यह सचेत रूप में मानव को पूर्ण महत्व प्रदान करती है, और इस अर्थ में यह अन्य सभी विश्व-दर्शनों में अधिक मानवतावादी दर्शन है।

तीन

सत्य और वास्तविकता

"मैं एक ऐसा आदमी हूं जिसके लिए प्रत्यक्ष जगत का अस्तित्व है,"—कलाकार के रूप में अपना सारतत्व बताते समय थियोफिल गौतिये[1] ने गौन्कोर्ट बन्धुओं से कहा था। इसके बजाय अगर वह यह कहते कि "मैं एक ऐसा आदमी हूं जिसके लिए जगत का अस्तित्व है," तो लेखक के रूप में अपने निजी गुणों तथा सीमाओं को कदापि वे इतनी अच्छी तरह प्रकट न कर पाते, किन्तु इससे लेखक और वास्तविकता के बीच के सम्बंध को जांचने का, सत्य के प्रति उसके रवैये को जांचने का, एक बहुत ही अच्छा अवसर हमें अवश्य मिल जाता।

ऐसा लगता है मानो आधुनिक समाज में श्रम के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए विभाजन तथा उसके किसी क्षेत्र-विशेष में अधिकाधिक विशेषज्ञता प्राप्त करने की प्रवृत्ति ने लेखक की आवाज का गला घोंट दिया है, उसे इतना अंधा बना दिया है कि वह वास्तविक जगत को समग्र रूप में नहीं देख पाता। "लिखना मेरा धंधा है," यह इसकी संकीर्णतम अभिव्यक्ति है, मानो इस धंधे में अन्य धंधों की कोई जानकारी रखने की आवश्यकता नहीं। मि. बाल्डविन[2] हमें भरोसा दिलाते हैं कि कविता एक निर्दोष धंधा है, किन्तु उसी समय तक, जब तक कि कवि जीवन के उस समूचे भाग से आंखें मूंद लेता है जो कि उसकी कृति के "निर्दोष" स्वरूप पर असर डाल सकता है। कलाकार के दायित्व का यह संकीर्ण दृष्टिकोण बहुत ही आधुनिक है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल से पहले तक विश्व के अधिकांश लेखक इसे तनिक भी मान्यता नहीं

देते। मार्लो से लेकर फील्डिंग तक अंग्रेजी साहित्य के वीरतापूर्ण काल में यह सर्वथा अज्ञात था।

आज साहित्य का क्रान्तिकारी कार्य यह है वह अपनी महान परम्परा[1] को पुनर्स्थापित करे, मनोवाद और संकीर्ण विशेषज्ञता हासिल करने की प्रवृत्ति की बेड़ियों को तोड़ फेंके, रचनात्मक कलाकार को उसके एकमात्र महत्वपूर्ण कार्य से—सत्य का, वास्तविकता का, ज्ञान अर्जित करने के कार्य से—साक्षात्कार कराए। कला एक साधन है जिसके द्वारा मानव वास्तविकता से जूझता और उसे आत्मसात करता है। अपनी भीतरी चेतना की निहाई पर लेखक वास्तविकता-रूपी लाल-भभूका धातु को रखता, हथौड़ियों की चोट से ठोक-पीटकर अपने उद्देश्य के अनुकूल उसे नयी शक्ल में ढालता और एकदम बेसुध होकर—नाओमी मिचीसन[1] के शब्दों में—विचारों के हिंस्र हथौड़े उस पर बरसाता है। सृजन की समूची प्रक्रिया, कलाकार की सम्पूर्ण वेदना, वास्तविकता के साथ इसी हिंस्र द्वन्द्व में, और दुनिया का एक सत्यपूर्ण चित्र गढ़ने के इस प्रयास में, निहित है।

"ज्ञान अपार पहुंचा देता देवताओं के समकक्ष मुझे
बड़े-बड़े नाम, करतब, पुरानी कथाएं, भयंकर घटनाएं और विद्रोह
राजामहाराजा, कोकिल कण्ठ और आह-कराहें
सृजन और विनाश, सब एक साथ—
भर जाते मेरे दिमाग के व्यापक शून्य कोटरों में
जागता फिर देवत्व, मानो किसी छलछलाती मदिरा का
अथवा कर पान उजली अनुपम संजीवनी सुरा का
बन जाता अमर मैं।"[2]

कीट्स ने, जिन्हें उनके काल के प्रतिक्रियावादी आलोचकों ने अपनी घृणा का शिकार बनाया और चैन से न बैठने दिया—बाइरन और शैली पर भी, जो प्रत्यक्षतः अधिक क्रान्तिकारी मालूम होते थे, उनकी घृणा का कुत्सित सैलाब इतनी भयंकरता से नहीं टूटा था—अपनी सबसे महान कविता में जो पूरी न हो सकी, हर महान रचना-

त्मक कलाकार के क्रान्तिकारी संघर्ष के मूल तत्व को पेश करने की चेष्टा की है। कारण कि जो सचमुच महान लेखक हैं,—उसके राजनीतिक विचार चाहे कुछ भी क्यों न हों—वह वास्तविकता के साथ भयानक तथा क्रान्तिकारी युद्ध में जूझे बिना कभी रह नहीं सकता। हां, क्रान्तिकारी युद्ध में, क्योंकि वह वास्तविकता को बदलना चाहता है। उसके लिए जीवन एक युद्ध क्षेत्र के समान है, जहां हमेशा स्वर्ग और नरक के बीच, सिंहासनच्युत और सिंहासनारूढ़ देवताओं के बीच, मानव की आत्मा के लिए संघर्ष चलता रहता है।

क्या मार्क्सवाद इस युद्ध के लिए लेखक को सज्जित कर सकता है? हाल ही में *टाइम्स* समाचार पत्र के साहित्यिक सप्लीमेण्ट में प्रकाशित एक अग्रलेख में इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया गया था। अमरीका के क्रान्तिकारी साहित्य का उल्लेख करते हुए *टाइम्स* के आलोचक ने सवाल उठाया था कि क्या यह नया साहित्य "मानव अनुभव के समूचे विस्तार को आत्मसात करने और उसे संभालने की क्षमता रखता है? निश्चय ही उस समय तक कभी नहीं जब तक कि कठमुल्लाओं की तूती बोलती रहती है। मूल कला का लक्ष्य, और किसी-न-किसी मात्रा में एक सिरे से सभी कलाओं का लक्ष्य, एक ऐसी समझ पैदा करना है जो सभी रूपों और मतों को हृदयंगम कर सके। फलतः उसकी प्रकृति ही ऐसी है कि उदार-से-उदार समाज-दर्शन की सीमाओं में भी वह बंध कर नहीं रह सकती, मार्क्सवाद तो और भी दूर की चीज है, जो व्यवहार में आमतौर से काफी कट्टरता का परिचय देता है। कला और कठमुल्लापन में जमीन-आसमान का अन्तर है ... यों कोई कारण नही कि एक कलाकार मार्क्सवादी होने के साथ-साथ एक ईमानदार कलाकार भी न बन सके, किन्तु यह तभी हो सकता है जब कि उसके मार्क्सवाद का रूप उसके गहनतम ज्ञान से न टकराये! हर आदमी को अपने अज्ञान के कारण बरबस ठोकरें खानी पड़ती हैं, आंखें रहते भी उसे अंधा बनना पड़ता है। अधिक से अधिक वह यही कर सकता है कि नयी दृष्टि पाने के लिए निरंतर संघर्ष करता रहे। इसके लिए किसी एक रूप का—चाहे वह केवल मानसिक ढांचे की शक्ल में ही क्यों न

हो—होना अनिवार्य है, और तटस्थ दृष्टि से देखने पर कोई कारण नहीं कि इस गौण भूमिका में—जब तक कि उसे गौण रखा जाता है—मार्क्सवाद भी क्यों न उतना ही सन्तोषप्रद काम करे जितना कि उसकी अन्य जोड़ीदार विचारधाराएं करती हैं।"

मार्क्सवाद के प्रति *टाइम्स* के इस आलोचक का रवैया सहानुभूति-पूर्ण तो है, किन्तु वह उसके वास्तविक महत्व को नहीं पकड़ सका। प्रश्न यह नहीं है कि मार्क्सवाद—अगर लेखक का कोई एक 'धर्म' होना ही चाहिए तो—ब्रह्मवाद, या फ्रायडवाद, अथवा अन्य किसी वाद जितना उपयुक्त हो सकता है या नहीं। उसके अनुसार रूप एक मानसिक मशीनरी है और मार्क्सवाद इस गौण भूमिका को अच्छी तरह निबाह सकता है। उसके इस तर्क से मुझे अपने स्कूल के हेडमास्टर की याद आ जाती है जो प्रत्येक वार्षिक-दिवस पर, क्लासिक्स की पढ़ाई को यह कह कर उचित ठहराता था (हमारे व्यापारिक समुदाय में इसका भी औचित्य सिद्ध करना आवश्यक है) कि 'मानसिक व्यायाम' के रूप में वह बेजोड़ है। और जिस प्रकार हमें क्लासिक्स का अध्ययन कराया जाता था, उस रूप में निश्चय ही वह मानसिक व्यायाम ही था—यह बात दूसरी है कि वह बेजोड़ भी था या नहीं। किन्तु यह एक संदेहजनक बात है कि एरासमस[1] क्लासिक्स की शिक्षा की उपयोगिता की इस धारणा को पसन्द करते।

जो भी हो, तत्व की बात यह है कि एरासमस एक ऐसे ज़माने में रहते थे जब कि क्लासिक्स का ज्ञान जीवन के सत्य के लिए रचनात्मक कलाकार के संघर्ष का एक आवश्यक अस्त्र था। मध्य-कालीन रूढ़ांधता और दकियानूसीपन पर विजय पाने के लिए ग्रीस और रोम के काव्य तथा चिन्तन की आवश्यकता थी। मानसिक व्यायाम का नहीं, बल्कि मानव की आत्मा पर काबू पाने का मसला दरपेश था। यह बात हमारे समय में मार्क्सवाद के लिए भी सच है। यह हमारे ज़माने में मानव प्रगति का दर्शन तथा ऐसा एकमात्र विश्व दृष्टिकोण है जो घिसी-पिटी रूढ़ियों तथा दकियानूसीपन के विरुद्ध, जो हमारे आधुनिक युग में भी मानव की आत्मा को जकड़े हुए हैं, हमें सफलता से संघर्ष करने

की क्षमता प्रदान करता है। मार्क्सवाद के बिना उस मूल सचाई तक नहीं पहुंचा जा सकता जिसकी खोज प्रत्येक लेखक का मुख्य काम है।

यहां मामला यह नहीं है कि कलाकार के लिए मानसिक यन्त्र की गौण भूमिका को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के आकर्षक दर्शनों में से किसी एक को चुन लिया जाय। हमारी दुनिया को एक ऐतिहासिक संघर्ष ने विदीर्ण कर दिया है, ठीक वैसे ही जैसे कि एरासमस की दुनिया को एक ऐतिहासिक संघर्ष ने खण्डित कर दिया था, और हमारे आज के इस संघर्ष में मार्क्सवाद—उस वर्ग का दृष्टिकोण जिसे पुरातन के खंडहरों पर एक नयी दुनिया का निर्माण करने के लिए इतिहास ने युद्ध-क्षेत्र में ला खड़ा किया है—वही भूमिका अदा करता है जो कि सामन्तवाद का स्थान लेने वाली दुनिया के निर्माण में मानवतावाद ने अदा किया था।

टाइम्स के आलोचक का कथन है कि रूप, मानसिक यन्त्र की भूमिका में, अनिवार्यतया आवश्यक है। किन्तु मार्क्सवाद इस बात पर ज़ोर देता है कि रूप और तत्व एक-दूसरे से अलग और निष्क्रिय इकाईयां नहीं हैं। तत्व-वस्तु रूप को जन्म देती है, वह उससे सम्बद्ध और अविच्छिन्न है, और यद्यपि तत्व-वस्तु को प्राथमिकता प्राप्त है, तथापि रूप विषय-वस्तु पर अपना प्रभाव डालता है और कभी निष्क्रिय नहीं रहता। मार्क्सवाद आधुनिक लेखक के लिए कोई नुमाइशी पोशाक मात्र नहीं रह सकता। वह उसका जीवन-दर्शन है, वास्तविकता को परखने की उसकी कसौटी है, उसकी मदद से वह ठीक उसी "गहनतम ज्ञान" को काबू में करता तथा आकार प्रदान करता है जिसे अभिव्यक्ति चाहिए। निस्सन्देह, मार्क्सवाद ही लेखक का वस्तुजगत को देखने और समझने का तरीका होना चाहिए।

यह, कहने की आवश्यकता नहीं, सच है कि "मूल कला का लक्ष्य... एक ऐसी समझ हासिल करना है जो सभी रूपों और मतों को हृदयगंम कर सके," किन्तु समझ प्राप्त करने का तरीका आंखें बंद कर वर्तमान रूपों और मतों में से कुछेक या सबको गले लगाना नहीं है, और न किसी भी प्रकार के साहित्यिक या दार्शनिक संकलन से ही इसे हासिल किया जा सकता है।

वास्तविकता को समझने के लिए, जानने के लिए, ज्ञान के एक ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता है जो सत्य के अनुरूप हो। किन्तु सत्य कोई हवाई या गतिहीन वस्तु नहीं है, जिसे चिन्तन की किसी हवाई तथा ऊपरी तौर से तर्कसंगत प्रक्रिया द्वारा—अथवा इलहाम या सहज चेतना द्वारा, जैसा कि एक पंथ विशेष का दावा है—प्राप्त किया जा सके।

सत्य तक केवल क्रियाशीलता द्वारा पहुंचा जा सकता है, कारण कि सत्य मानव की उस गहरी खोजबीन की अभिव्यक्ति है जो कि वह किसी वस्तु के बारे में करता है। और यह खोजबीन, मुख्यतः, एक मानवीय क्रिया है, विशेष रूप से एक सामाजिक और उत्पादक क्रिया है।

निश्चय ही कलाकार का वास्ता केवल सत्य से होना चाहिये। लेनिन ने लिखा था कि "सत्य किसी वास्तविक घटना के *सभी* पहलुओं की *समग्रता* से तथा उनके (पारस्परिक) *सम्बंध* से बनता है।"[1] और आगे, जो बात निस्सन्देह सभी कलाकारों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है:

"ज्ञान विचार द्वारा वस्तु को जानने की एक चिरन्तन तथा अन्तहीन क्रिया है। मानव के चिन्तन में प्रकृति की *अभिव्यक्ति* को किसी 'मुर्दा', 'हवाई' ढंग से—*बिना गति* के, बिना अन्तर-विरोधों के—नहीं समझना चाहिए, बल्कि उसे गति की एक चिरन्तन प्रक्रिया के रूप में, अन्तरविरोधों के उठ खड़े होने और उनके हल होने की प्रक्रिया के रूप मे, देखना चाहिए।"[2]

जो कला ऐसे दर्शन को अपनाती है, वह सच्चे अर्थ में सभी रूपों और मतों को हृदयगंम करनेवाली समझ को पाने की स्थिति में है। यह एक वास्तव में मानवीय कला है, और यही कारण है कि मार्क्सवादी लेखक इस बात का दावा करते हैं कि केवल समाजवादी कला, एक नया यथार्थवाद ही, आज वस्तुगत सत्य को पूरी तरह देखने की क्षमता रख है। इस क्षमता के बिना रचनात्मक कलाकर्मी वास्तविकता के साथ अ जुझारू संघर्ष में विजय नहीं पा सकता।

चार

उपन्यास और वास्तविकता

उपन्यास और महाकाव्य के बीच अक्सर तुलना की जाती है। उपन्यास हमारे आधुनिक, बुर्जुआ, समाज का महाकाव्य है। कला के इस रूप ने अपना पूर्णतम विकास इस समाज की यौवनावस्था में प्राप्त किया, और ऐसा लगता है कि हमारे समय में बुर्जुआ समाज के ह्रास ने उसे भी ग्रस लिया है। फील्डिंग ने अपने "वीरतापूर्ण ऐतिहासिक, गद्यमय काव्य" *टौम जोन्स* के प्राक्कथन में आधुनिक उपन्यास के महाकाव्यगत उद्भव और भूमिका की घोषणा की थी, किन्तु कोई भी आलोचक इतनी कुरुचि का परिचय नहीं देगा कि समसामयिक उपन्यासों की भारी बहुसंख्या को वह महाकाव्यगत गुणों से युक्त कहे, हालांकि उपन्यासों की इस बाढ़ में भी '*युलिसेस*' और '*स्वान्स वे*' में शायद हम अपने '*हेनरियाद*' अथवा अपने '*इडिल्स आफ़ दी किंग*' की झलक पा सकते हैं।[1]

हम यहां तक कह सकते हैं कि उपन्यास बुर्जुआ साहित्य की न केवल सबसे प्रतिनिधि उपज है, बल्कि उसकी श्रेष्ठतम रचना भी है। यह कला का एक नया रूप है। आधुनिक सभ्यता — जिसका प्रारम्भ रेनैसां काल से होता है — से पहले इसका अस्तित्व नहीं था, अगर था भी तो अत्यंत प्राथमिक रूप में था। और हर नये कला-रूप की भांति मानवीय चेतना का विस्तार करने तथा उसे गहरा बनाने का अपना उद्देश्य यह भी पूरा कर चुका है। तो क्या हमारी सभ्यता के अन्त के साथ यह भी खत्म हो जाएगा, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राचीन समाज के साथ महाकाव्य

का अन्त हो गया था ? किन्तु महाकाव्य ने *शांशों दा जेस्ट* में फिर जन्म लिया, और जब वह उस समाज के साथ *विलीन* हो गया जिसने कि उसे जन्म दिया था तो उपन्यास ने पदार्पण किया। अनुप्राणित तो इसे भी महाकाव्य ने ही किया था, किन्तु इसका लक्ष्य था नये मानव की आवश्यकताओं को पूरा करना, उसकी आशा-आकांक्षाओं को व्यक्त करना तथा उसकी तूफानी दुनिया को चित्रित करना। लगता है मानो हमारी कलात्मक अभिरूचि की पूर्ति महाकाव्य के रूप में ही हो सकती है। किन्तु क्या नया सिनेमा, जो ध्वनि और रंग से लैस है तथा संगीत का उपयोग करने की क्षमता से युक्त है (यह अपने एक निजी संगीत का निर्माण भी कर चुका है, जो आधुनिक टैकनीक की देन है तथा ठेठ संगीत से गुणनात्मक रूप से भिन्न है), क्या यह नई, प्राणवान कला युग के महाकाव्य की रचना नही कर सकती ?

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि एक काफी बड़ी हद तक सिनेमा ऐसा करने में सफल हो सकता है, किन्तु मेरी समझ में वह पूर्णतया ऐसा नहीं कर सकता। कारण कि उपन्यास का पलड़ा इस मानी में सदा भारी रहेगा कि वह मानव का कहीं अधिक पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकता है, तथा उस महत्वपूर्ण आन्तरिक जीवन की झांकी दिखा सकता है जो कि मानव के लिये नाटकीय क्रियाशील रूप से भिन्न होती है और जो सिनेमा की क्षमता से बाहर की चीज है। यह अवश्य हो सकता है कि सिनेमा की चुनौती उपन्यास को फिर अपना सिर ऊंचा उठाने तथा अपने सोए हुए महत्वपूर्ण गुणों को फिर पाने के लिए बाध्य करे,—सबसे बढ़कर यह अनुभव करने के लिए बाध्य करे कि क्रियाशीलता की कितनी आवश्यकता है। जासूसी उपन्यासों की लोकप्रियता का रहस्य केवल इसी बात में नही है कि लोग अपराध या हिंसा से प्रेम करते हैं। असल में जासूसी उपन्यास साहित्य में क्रियाशीलता की, नाटकीय तत्व की, उस वास्तविक मांग को पूरा करते हैं जिसे सिनेमा का पोषण मिला है, और आधुनिक उपन्यास जिससे कतराता है।

महाकाव्य द्वारा समाज की जैसी पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है, वैसी उपन्यास द्वारा न तो कभी हुई और न हो ही सकती है। महाकाव्य

के पात्रों तथा उस समाज के बीच जिसमें कि वे रहते थे, एक संतुलन था, जो अब विलुप्त हो चुका है। इसमें सन्देह नहीं कि *इलियड* अपने किसी एक पात्र का उतना नहीं, जितना कि संपूर्ण समाज का चित्र प्रस्तुत करता है, एक ऐसे समाज का चित्र, जिसमें व्यक्ति न समुदाय के प्रति और न प्रकृति के प्रति ही विरोध का अनुभव करता है। वह समाज का एक अंग है, और कभी-कभी प्रकृति का भी वह एक अंग सा लगता है अथवा उससे अभिभूत प्रतीत होता है, किन्तु प्रकृति के साथ उसके द्वन्द्व का या प्रकृति पर उसके प्रभुत्व का कहीं पता नहीं चलता। *शांशों द रोला*[1] में भी दो समाजों की—"ईसाइयों" और "काफ़िरों" के द्वन्द्व की कहानी है, और इसके पात्र शार्लमान, रोलां, ओलिवर, गद्दार योद्धा गानेलों,[2] व्यक्तिगत चरित्र उतने नहीं जितने कि प्रतिनिधि चरित्र हैं—बुद्धिमत्ता, साहस, फ़रमाबरदारी और विश्वासघात के प्रतीक।

व्यक्तिगत पुरुषों और स्त्रियों के दुःख और सुख का, *निजी* जीवन का, चित्रण करने वाली कथा या कहानी का उदय केवल ग्रीक-रोमन सभ्यता के प्राचीन सामाजिक जीवन के, कैल्टिक बिरादरियों के जीवन के, विघटन के बाद ही होता है। आत्म-निर्भर समाज नहीं रहे और कथा एक सार्वदेशिक वस्तु बन चली, जैसे *डाफ़निस और क्लो* से या *त्रिस्तां और इसेउल्त*[3] की कहानी से प्रकट है।

उपन्यास का विषय है व्यक्ति। यह समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध, व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है। और यह केवल उसी समाज में विकसित हो सकता था जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच सन्तुलन नष्ट हो चुका हो और जिसमें मानव का अपने सहजीवी साथियों अथवा प्रकृति से युद्ध ठना हो। पूंजीवादी समाज ऐसा ही समाज है। विश्व की दो महानतम कहानियां *ओडिसी* और *रौबिन्सन क्रूसो* हैं। किन्तु एक-दूसरे से कितनी भिन्न हैं दोनों! ओडिसियस एक ऐसे समाज का जीव है जिसका कोई इतिहास नहीं है, जिसमें पुराण और वास्तविकता घुलमिल कर एकाकार हो गए हैं और काल अपना आतंक खो चुका है। समुद्र में खदेड़ा हुआ ओडिसियस जानता है कि उसका भाग्य प्रकृति पर नियन्त्रण रखनेवाले देवताओं के हाथों में है। तूफ़ान को वह पोसीडोन

का क्रोध और जहाज के टकराने-डूबने को अपने घर इथाका की लम्बी यात्रा के मार्ग में आने वाली केवल एक और परीक्षा-मात्र समझता है।

किन्तु रौबिन्सन क्रूसो के साथ ऐसा नहीं है। मार्क्स के शब्दों में, "अठारहवीं शताब्दी का यह व्यक्ति, जो समाज के सामन्ती रूप के विलय तथा सोलहवीं शताब्दी से विकसित हो रही उत्पादन की नयी शक्तियों की सम्मिलित देन है, एक ऐसे आदर्श के रूप में प्रकट होता है जिसका अस्तित्व अतीत में है, किन्तु जो इतिहास के परिणाम के रूप में नहीं, बल्कि उसके प्रारम्भ-बिन्दु के रूप में प्रकट हुआ।"[1] ओडिसियस का कोई इतिहास न था। वह विश्व के शैशवकाल का प्राणी था और देवता उसके साथी थे। रौबिन्सन ने अतीत को तिलांजलि दे दी और स्वयं अपना इतिहास बनाने में जुट गया। वह ऐसा मानव था जो प्रकृति को, अपने शत्रु को, काबू में करने को सन्नद्ध था। रौबिन्सन की दुनिया एक वास्तविक दुनिया है, और भौतिक चीजों के मूल्य के प्रति एक विवेकपूर्ण और सजीव भावना के साथ उसका वर्णन हुआ है। तूफान एक विभीषिका है जो जहाज और उस पर लदे माल को खतरे में डाल देती है, पुरुष समुद्री लुटेरे और बागी हैं—अपने साथियों के प्रति क्रूर और निर्मम। किन्तु क्रूसो का आत्म-विश्वास, उसका अनगढ़ आशावाद, उसकी मदद करते हैं और वह एक तरफ जहां जान-माल को खतरे में डालने वाली अपनी मूर्खता, प्रकृति की क्रूरता तथा अपने साथी-पुरुषों की पाशविक शत्रुता पर विजय पाने में सफल होता है, वहां समुद्रों के पार वह अपनी आदर्श बस्ती भी बसा लेता है।

कुलीन वर्ग के एक रूसी जलावतन को उसने अपनी कहानी सुनाई कि : "किस प्रकार मैंने उस द्वीप में जीवन बिताया, और किस प्रकार मैंने अपनी और अपने आधीन लोगों की व्यवस्था की, बिल्कुल वैसे ही जैसे कि मेरी डायरी में दर्ज है। उन्हें मेरी कहानी बहुत पसन्द आई, विशेषकर राजकुमार को जिसने एक आह भरते हुए मुझे बताया कि जीवन की सच्ची महानता खुद अपना मालिक बनने में है।" इस प्रकार क्रूसो की लम्बी यात्रा का—जो स्वयं अपना मालिक बना—अन्त होता है। इथाका लौटने और विश्वासघाती प्रेमियों के साथ युद्ध में,

और धयमयी पेनिलोप[1] और बुद्धिमान तेलेमाकस[2] द्वारा स्वागत में इसका अन्त नहीं होता। इसका अन्त होता है साइबेरिया के लिए उसकी अन्तिम यात्रा और फिर एल्ब-तट पर उसकी वापसी में।

"यहां मेरे साझीदार को और मुझे अपने माल के लिए बहुत अच्छा बाजार मिला। चीन का माल भी खूब बिका। और साइबेरिया की रोएंदार खालें आदि भी; और माल का बंटवारा करने पर मेरे हिस्से में तीन हजार चार सौ पिछत्तर पौण्ड सात शिलिंग और तीन पेन्स आए। इसमें करीब छै सौ पौण्ड मूल्य के वे हीरे भी शामिल हैं जिन्हें मैंने बंगाल में खरीदा था।" रौबिन्सन का जीवन, ओडिसियस के जीवन की भांति, एक विचित्र यात्रा का वृतान्त है, और ओडिसियस की भांति ही "अवकाशप्राप्ति तथा शान्ति के साथ शेष दिन बिताने के वरदान" के रूप में इसका अन्त होता है। किन्तु ओडिसियस का सम्पूर्ण लक्ष्य ट्राय में युद्ध से अपने द्वीप की ओर—अपने घर की ओर—लौटना है, जब कि रौबिन्सन की यात्रा का सम्पूर्ण महत्व उसकी वापसी में नहीं, बल्कि उसके घर से प्रस्थान में निहित है। वह साम्राज्य-निर्माता है, एक ऐसा आदमी है जो प्रकृति को ललकारता और उस पर विजय प्राप्त करता है। अपने पुरस्कार का, एक-एक पाई का वह हिसाब रखता है, और यह कमाई भी जायज कमाई है।

अठारहवीं शताब्दी के समूचे दौरान में रौबिन्सन क्रूसो ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन में एक आधार का काम दिया। इतना ही नही। उसकी ध्वनि अब भी जौन स्टुअर्ट मिल की रचनाओं में सुनी जा सकती है। नये पूंजीपति वर्ग को उसका गायक मिल गया, एक ऐसा गायक जो काहिल नहीं था, और न उसकी गाथा ही कोई थोथी गाथा थी। मानव के जीवन में वह एक नये युग के प्रवेशद्वार पर खड़ा था, जब कि दो शताब्दियों के दौरान में दुनिया को अपनी सबसे मुकम्मिल कायापलट में से होकर गुजरना था और इन्सान खुद प्राचीन कवियों के सपनों को—हवा में उड़ने, सात-मील लम्बे डगों से धरती को नापने, समुद्र की सतह और उसकी गहराइयों पर काबू पाने के सपनों को, पूरा करने वाला था। इन सपनों को पूरा करने के दौरान में मानव ने स्वयं अपनी

भी कायापलट की और महान संस्कृतियों को नष्ट किया, मानव और मानव के सम्बंधों को भ्रष्ट किया. बौद्धिक जीवन को कोयले या बूट-पालिश के व्यापार से भी नीचा दर्जा दिया, और मानवीय जीवन के असली चरित्र को ढोंग के इतने मोटे नकाब से ढंक दिया कि जिसकी मिसाल मानवीय सम्बंधों के इतिहास में पहले कभी ढूंढे नहीं मिलेगी।

पूंजीवादी समाज के विकास ने कलाकार की स्थिति को उस स्थिति से सर्वथा भिन्न बना दिया जो कि उसे पहले की सभी समाज-व्यवस्थाओं में प्राप्त थी। अपने प्रारम्भिक काल में, रेनैसां से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल तक, यह बात इतनी प्रत्यक्ष नहीं थी। लेखक को तब तक मानव को उसके असली रूप में देखने की स्वतंत्रता थी, वह उसका सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकता था और वर्तमान तथा मध्यकालीन अतीत की आलोचना करने की भी उसे छूट थी। संक्षेप में यह कि जिस पूंजीवाद ने एक पद्धति के रूप में यथार्थवाद को जन्म दिया और उपन्यास की शक्ल में उसे एक पूर्णरूप दिया, मानव को कला का जिसने केन्द्र बनाया, उसी पूंजीवाद ने अन्त में उन परिस्थितियों को नष्ट भी कर दिया जिनमें कि यथार्थवाद पनप सकता था और मानव के लिए अब कला के क्षेत्र में, खासतौर से उपन्यास के क्षेत्र में, केवल पंगु या विकृत रूप में ही प्रवेश करने की गुंजाइश छोड़ी। १८५७ में फ्लौबर्ट पर अश्लीलता के मुकदमे का उल्लेख करते हुए थियोफिल गौतिये ने इस परिस्थिति का सारतत्व इन शब्दों में रख दिया था: "सचमुच, अपने इस धंधे पर मुझे लज्जा आती है! उन बहुत ही मामूली रकमों के बदले में जो कि मैं कमाता हूं—अगर ऐसा न करूं तो भूखों मरना पड़ जाय—मैं जो कुछ सोचता हूं उसका केवल आधा या चौथा भाग ही कह पाता हूं... इस पर भी हर वाक्य पर यह सांसत जान को लगी रहती है कि कहीं अदालत के सामने न घिसटना पड़े।" *जोनाथन स्विफ्ट* से लेकर फ्लौबर्ट के मुकदमे और गौतिये की कटु टिप्पणी तक ले-देकर केवल एक शताब्दी से कुछ साल अधिक बीते होंगे, किन्तु इस अवधि में ही क्या-से-क्या हो गया!

पूंजीवाद के विकास, खास तौर से श्रम के पूंजीवादी विभाजन और मशीन-उद्योग की स्थापना के बाद मानव के बुझे हुए
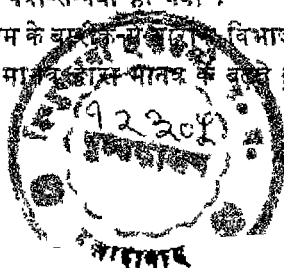
शोषण तथा स्वतंत्र उत्पादकों के चाहे वे खेतिहर हों या दस्तकार धंधों के खात्मे के साथ एक ओर तो कला को एक आम ह्रास ने ग्रस लिया, ऐसी कोई भी चीज उस कला ने पैदा नहीं की जो रेनैसां काल की कृतियों की—उस काल की महान कृतियों की जो कि सामन्तवाद से पूंजीवाद की ओर सन्तरण का काल था और जिसमें व्यक्ति ने अपने जीने का अधिकार जीता—अथवा ग्रीस या रोम के दास-समाजों, या चीन के पूर्वीय सामन्तवाद की उतनी ही महान कृतियों की बराबरी कर सकती। दूसरी ओर यह हुआ कि इसने व्यक्ति और समाज के बीच देखने में हल न होने वाले द्वन्द्व से दबे और कुचले हुए कलाकार को भी पतन के गढ़े में डाल दिया।

पहले के सामाजिक सम्बंधों को नष्ट करने में बुर्जुआ वर्ग की क्रान्तिकारी भूमिका का वर्णन करते हुए सांस्कृतिक जीवन में इस ह्रास के असली कारणों को मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणापत्र में बताया है। उन्होंने लिखा है:

"बुर्जुआ वर्ग ने, जहां कहीं भी उसकी चल निकली, तमाम सामन्ती, पितृसत्तात्मक और नैसर्गिक सम्बंधों का खात्मा कर दिया है। बिना किसी लिहाज के उसने उन चित्र-विचित्र सामन्ती नातों को तोड़ फेंका है जो मानव को उसके 'सहज बड़ों' से बांधे थे, और नंगे स्वार्थ तथा हृदयहीन 'नगद भुगतान' के सिवा मानव और मानव के बीच अन्य कोई बन्धन बाकी नहीं छोड़ा है। धार्मिक तन्मयता के परम स्वर्गिक आनन्द को, शूरवीरों के उत्साह और मूढ़ों के भावुकतापूर्ण आल्हाद को, इसने अहम्वादी मोल-भाव के बर्फीले पानी में डुबो दिया है। व्यक्ति की कदर को इसने विनिमय मूल्य में बदल दिया है और अनगिनत अत्याज्य अधिकृत आजादियों के स्थान पर उन्मुक्त व्यापार की एक अकेली बेलाग आजादी को स्थापित कर दिया है। एक शब्द में, धार्मिक तथा राजनीतिक भ्रमों से ढके शोषण की जगह इसने नंगे, निर्लज्ज, सीधे और बर्बर शोषण को स्थापित कर दिया है।

"बुर्जुआ वर्ग ने, हर उस धंधे को जिसे अब तक सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था, श्रीविहीन करके रख दिया है। डाक्टर को,

वकील को, पुजारी को, कवि और वैज्ञानिक को, अपने पगार-भोगी मजदूर के रूप में इसने परिवर्तित कर लिया है।"[1]

इस प्रकार, लाखों छोटे उत्पादकों को सम्पत्ति-विहीन बनाकर, सब को समरूप बनाने की भीमाकार क्रिया पूंजीवाद ने सम्पन्न की है। और समरूपीकरण की यही प्रक्रिया सांस्कृतिक सम्बंधों के क्षेत्र में भी लाई गई है। जिस व्यक्ति की श्रम-शक्ति बिकाऊ माल का रूप धारण कर लेती है, उसका नैतिक या कलात्मक मूल्य खो जाता है और चूंकि माल का विनिमय सभी चीजों को समरूप बना देता है इसलिए कला भी एक बिकाऊ माल बन जाती है, और उसे ठीक उसकी विपरीत और विरोधी वस्तु के बराबर बना दिया जाता है। प्राचीन या सामन्ती समाजों में—जहां दास या बन्धक प्रथा शोषण के रूप थे और इन्हीं पर वे आधारित थीं—व्यक्तिगत सम्बंध अधिक प्रत्यक्ष थे, आदमियों की एक दूसरे पर निर्भरता सीधी थी और निजी थी, श्रम का विभाजन सीधा-सादा था और व्यक्ति अपनी दस्तकारी के काम में अपने-आपको सीधे तौर पर व्यक्त कर सकता था। इन समाजों की कला में एक ऐसी ताजगी और ऐसी ताकत थी जो कि अब अधिकांशतः लुप्त हो चुकी है।

रस्किन[2] और विलयम मौरिस[3] इस बात को समझते थे, किन्तु उनका यह सोचना निहायत गलत था कि पूंजीवादी समाज के आधार—व्यक्तिगत सम्पत्ति—के क्रान्तिकारी विनाश का रास्ता अपनाने के बजाय मध्यकालीन संसार में लौटने से उस ताजगी को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में, मार्क्स के प्रभाव में आकर मौरिस ने इस गलती से अपना पीछा छुड़ाना शुरू किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के सृजनात्मक कलाकारों को पूंजी के केन्द्रीकरण से उत्पन्न मानव-सम्बंधों का नया, अपनत्वहीन रूप बुरी तरह अखरता था। इतनी ही बुरी तरह वह यह अनुभव करते थे कि पूंजीवादी बाजार ने उनकी कृतियों को भी एक ही तराजू से तोली जाने वाली वस्तु बना दी है। धन सभी चीजों को बराबर कर देता है—माइकेल एंजेलो की एक कृति को यदि कोई ऐसा करोड़पति खरीदे जिसने तेल या साबुन जैसी उपयोगी और घरेलू वस्तुओं के व्यापार से अपनी दौलत जुटाई है,

तो वह उसे तेल या साबुन की एक मिकदार के बराबर और शेक्सपीयर के नाटक को खाद की एक विशेष मात्रा के बराबर बना देता है — यदि वह नाटक इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज के किसी भागीदार के दान से वेस्ट एण्ड में दिखाया जा रहा हो। उन्नीसवीं शताब्दी का उपन्यासकार नये बुर्जुआ वर्ग के प्रति वनैली घृणा के साथ इस सीधे समरूपीकरण का विरोध करता था। किन्तु इस घृणा ने उसकी दृष्टि को सीमित कर दिया और वह नये समाज के कुछ सकारात्मक पहलुओं को न देख सका।

आधुनिक लखपति और उस वर्ग में उसकी छवि जिसका कि वह सिरमौर है, केवल विज्ञान के विकास की बदौलत ही सम्भव हो सके हैं। विज्ञान उसके लिए लाभदायक है, फलतः अपनी ओर से वह उसके विकास में मदद देता है। विज्ञान के इस विकास में, तथा नयी दुनिया के अन्वेषकों के सेवार्पित जीवन में — फैराडे, पास्चर और क्यूरी में — हमारे युग की वास्तविक कविता निहित है तथा हमारे समय के सच्चे वीर मिलते हैं। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी का उपन्यासकार — बुर्जुआ दुनिया से, जिसमें कि वह रहता था, झंझोड़ा हुआ, १८४८ में फ्रान्स की क्रान्ति के महान सपनों के अन्तिम रूप से चूर-चूर हो जाने के फलस्वरूप निराश और मजदूर-वर्ग के उदय से भयभीत — यह नहीं देख पाता। लेखकों के इस रवैये के एक प्रतिनिधि उदाहरण के रूप में गौन्कोर्ट बंधुओं का उल्लेख किया जा सकता है। १८५७ की अपनी डायरी में उन्होंने लिखा था :

"धोखाधड़ी में विज्ञान के क्षेत्र तक में इस शताब्दी को कोई मात नहीं कर सकता। वर्षों से रसायन और भौतिक विज्ञान के बिलबौके[1] हर सुबह, नये चमत्कार, तत्व या नयी धातु का वादा करते हैं, गम्भीरता के साथ पानी में ताम्बे की प्लेटों से हमें गरमाने, हमारी भूख का प्रबंध करने या किसी चीज से हमारी जान लेने और हम सब को शतायु बनाने आदि का बीड़ा उठाते हैं। यह सब एक जबरदस्त धोखा है जिसका उद्देश्य है इन्स्टीट्यूट[2] में गद्दी-नशीन होना, पुरस्कार, पदक और पेन्शनें पाना तथा सम्मान एवं ख्याति हासिल करना। और एक तरफ जहां यह सब कुछ हो रहा है, वहां महंगाई दुगनी, तिगुनी, दस गुनी

बढ़ती जा रही है—पोषण की सामग्रियां या तो मिलती नहीं और यदि मिलती भी हैं तो रद्दी किस्म की, यहां तक कि युद्ध में मृत्यु भी प्रगति करती नजर नहीं आती (सेवास्तोपोल में यह बात स्पष्ट हो गयी थी), और जिसे हम अच्छा सौदा समझते हैं वह हमेशा हद दर्जे का बुरा सौदा सिद्ध होता है।"

अस्तु, तब से अब तक वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मौत की दिशा में वे भारी प्रगति कर सकते हैं, और आजकल वैज्ञानिकों के काम का यह नकारात्मक पहलू ही उपन्यासकार को प्रभावित करता है। किन्तु विज्ञान को जीवन की कायापलट करने वाली एक शक्ति के रूप में, वैज्ञानिक के जीवन और काम के बीच भारी अन्तरविरोध को, तथा पूंजीवादी समाज द्वारा उनके उपयोग को आज का उपन्यासकार नहीं देखता। अपनी कला की सामग्री के रूप में वह इनकी लगभग उतनी ही अवहेलना करता है जितनी कि गौन्कोर्ट बन्धु करते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के समूचे दौरान में हम यह देखते है कि कलाकार उस दुनिया को अस्वीकार करने की व्यर्थ चेष्टा में लगा है जो उस पर ऐसे मानदण्ड लादती है जिन्हें वह कभी स्वीकार नहीं कर सकता। सो इस दुनिया से बचने के लिए कुछ तो अपने काल्पनिक गढ़ में जा बसते हैं और उसके ऊपर 'कला कला के लिए' की रेशमी पताका फहरा देते हैं। यह विचित्र नारा, अगर सच पूछा जाय तो उस सभ्यता को चुनौती देता है जो चांदी के कुछ सिक्कों के अलावा कला का और कोई मूल्य नहीं मानती। 'कला कला के लिए' का नारा, कला धन के लिए के नारे का एक बहुत ही निकृष्ट उत्तर है,—निकृष्ट इसलिए कि कल्पना किलेबन्दी के लिए कभी कारगर सामग्री सिद्ध नहीं हुई है।

गेरार्ड द नेरवाल[1] की भांति कुछ आत्म-हत्या करने पर मजबूर होते हैं। अन्य हताश होकर, अपने ही कृतित्व से इन्कार करना शुरू कर देते हैं। रिम्बौ,[2] जो कि पेरिस कम्यून का एक युवक कवि था, जो बुर्जुआ वर्ग से घृणा करता था और जिसने कविता में अनेक क्रान्तिकारी प्रयोग किए थे, अबीसीनिया में जाकर अपने-आपको जिन्दा दफना देता है और पाशविक सनक के साथ हथियारों और मानव-

हरीरो तथा अफ्रीका की उन सभी चीजो में व्यापार करन लगता है जिन पर उस समय बुर्जुआ वर्ग की लोलुप निगाहें विशेष रूप से जमी थी। गोगां[1] ताहिती में पोलीनीशियाई 'आदिवासियों' के बीच जा बसता है और अपनी घासफूस की झोंपड़ी को उत्कृष्ट कलाकृतियों से सजाता है, सीज़ां[2] अपने चित्रों को खन्दक में फेंक देता है, और वान गौ[3] के आखीरी दिन एक पागलखाने में कटते हैं।

किन्तु ठीक इसी काल में उनका मित्र और हिमायती एमील जोला, अस्पष्ट किन्तु सच्चे मायनों में प्रतिभावान, अंधेरे में टटोलता हुआ प्रकाश की ओर अग्रसर होता है। और ज्यों-ज्यों वह मजदूर वर्ग के कठोर और कटु किन्तु उमंग भरे जीवन के निकट पहुंचता है, उसे अपने अन्दर एक नयी ज्वाला का आभास होता है। जोला सफल नही हो पाता, अपने पूर्वजों के गलत सिद्धान्तों के बोझ से दबा हुआ वह उन्ही सिद्धान्तों के आधार पर, यथातथ्यवाद के घातक तथा यांत्रिक सिद्धान्त की रचना करता है। किन्तु उसकी यह असफलता भी एक शानदार असफलता है जिससे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

कुंजी भी वहीं, पास में ही, मौजूद थी। मार्क्स और ऐंगेल्स यह दिखा चुके थे कि किस प्रकार पूंजीवाद उन परिस्थितियों को नष्ट करने के साथ-साथ, जिनमें कि महान कला पनप सकती है, ऐसी परिस्थितियों की भी रचना करता है जिनमें कला और भी अधिक ऊंची उठ सकती है,—इतनी ऊंची कि जिसका मानव इतिहास में कोई दृष्टांत नही मिलता। किन्तु पूंजीवाद अपने-आप में इन परिस्थितियों का उपयोग नही कर सकता, इस नयी कला को जन्म नही दे सकता। इसने तो इतिहास में पहली बार, विश्व कला के लिए, एक विश्व साहित्य के लिए, उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण भर किया है। इसने समूचे विश्व को अपने साचे में ढाल लिया है, टेकनीक और उत्पादन का इतना विकास किया है कि "पिछड़ी" हुई और "उन्नत" जातियो के भेद के बने रहने का अब कोई कारण नहीं रह गया है। *कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र* के शब्दों में :

उत्पादन प्रणाली में निरंतर क्रांतिकारी परिवर्तन सामाजिक परिस्थितियों में अनवरत उथल-पुथल, स्थाई अनिश्चितता और हलचल—बुर्जुआ युग की यही वे विशिष्टताएं हैं, जो कि पहले के सभी युगों से उसे भिन्न बना देती हैं। प्राचीन तथा पूज्य कहलाने वाले अंधविश्वासों तथा मतों की श्रृंखला को लिए हुए तमाम स्थिर और जड़ सम्बंध खत्म कर दिये गये हैं। नये सम्बंधों को बने देर नहीं होती कि वे पुराने पड़ जाते हैं, उनके रूढ़ होने की नौबत ही नहीं आ पाती। जिन चीजों को ठोस समझा जाता था वे हवा में उड़ जाती हैं; जिन्हें पवित्र माना जाता था, वे भू-लुंठित हो रही हैं; और मानव आखिरकार इस बात के लिए बाध्य हो गया है कि वह अपने जीवन की असली परिस्थितियों तथा दूसरों के साथ अपने सम्बंधों पर गम्भीरता के साथ विचार करे।

"अपने माल के लिए निरंतर बढ़ते हुए बाजार की जरूरत के कारण पूंजीपति वर्ग समूचे भूमण्डल की धूल छानता है। वह हर जगह घुसने की, हर जगह पैर जमाने की, और हर जगह सम्बंध स्थापित करने की कोशिश करता है।

"विश्व मण्डी के शोषण द्वारा पूंजीपति वर्ग ने उत्पादन और खपत को हर देश में एक सार्वभौम रूप दे दिया है। प्रतिक्रियावादी चीखते-चिल्लाते रहे, किन्तु उसने उद्योग के पांव के नीचे से उसकी वह राष्ट्रीय जमीन ही खिसका दी जिस पर कि वह खड़ा हुआ था। तमाम पुराने स्थापित राष्ट्रीय उद्योग तबाह हो गये या आये दिन तबाह हो रहे हैं। उनकी जगह नये उद्योग ले रहे हैं, जिनकी स्थापना करना सभी सभ्य राष्ट्रों के लिए जीवन-मरण का सवाल बन गया है। ये नये उद्योग अपने देश के कच्चे माल का उपयोग नहीं करते, बल्कि अपने लिए दूर-दूर के प्रदेशों से कच्चा माल मंगाते हैं। इन उद्योगों की तैयार की हुई चीजों की केवल घर में ही खपत नहीं होती, बल्कि विश्व के कोने-कोने में वे पहुंचती हैं। उन पुरानी आवश्यकताओं की जगह, जिन्हें स्वदेश की बनी हुई चीजों से ही पूरा किया जा सकता था, अब ऐसी नयी-नयी आवश्यकताओं ने ले ली है, जिनको पूरा करने के लिए दूर-दूर के देशों और

भू-भागों से माल मंगाना पड़ता है। पुरानी स्थानीय तथा राष्ट्रीय पृथकता और आत्म-निर्भरता की जगह अब आदान-प्रदान के चौतरफा सम्बंधों ने, राष्ट्रों के बीच सार्वभौमिक अन्तर-निर्भरता ने, ले ली है और भौतिक उत्पादन की ही तरह बौद्धिक उत्पादन में भी यही परिवर्तन हो गया है। व्यक्तिगत राष्ट्रों की बौद्धिक रचनाएं सामूहिक सम्पत्ति बन गयी हैं। राष्ट्रीय एकांगीपन तथा संकीर्ण दृष्टिकोण अब अधिकाधिक असम्भव होते जा रहे है, और अनगिनत राष्ट्रीय तथा स्थानीय साहित्यों के बीच से एक विश्व-साहित्य का उदय हो रहा है।"[१]

किन्तु यह विश्व साहित्य एक पंगु शिशु है। पूंजीवादी उत्पादन की जिन परिस्थितियों ने इसे जन्म दिया था, वे ही इसके सहज विकास में बाधक हैं। जातीय और राष्ट्रीय विद्वेष, वर्ग शत्रुता, सबल राष्ट्रों द्वारा निर्बल राष्ट्रों के राष्ट्रीय विकास का बलपूर्वक रोका जाना, यहां तक कि यौन हठ और यौन शत्रुता, नगरों और देहातों के बीच विरोध, माल के सामूहिक उत्पादन के परिणामस्वरूप मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच दिन-दिन चौड़ी होती हुई खाई—पूंजीवादी समाज के अन्तर-विरोधों से उत्पन्न ये सब चीजें विश्व-साहित्य के विकास को अवरुद्ध करती हैं। इससे परिणाम यह निकलता है कि उपन्यासकार की कठिनाइयों का हल हमारे आधुनिक समाज की वास्तविकता को नजर में रख कर एक क्रान्तिकारी ढंग से ही हो सकता है, और केवलमात्र ऐसे हल से ही उसकी कला फिर से महाकाव्य का रूप ग्रहण कर सकती है।

पांच

उपन्यास महाकाव्य के रूप में

इस निबंध की यह मुख्य मान्यता है कि उपन्यास विश्व की कल्पना-प्रसून संस्कृति को बुर्जुआ अथवा पूंजीवादी सभ्यता की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है।[1] उपन्यास उसकी एक महान साहसपूर्ण खोज है,—मानव की उसके द्वारा खोज है। यहां आपत्ति उठाई जा सकती है कि सिनेमा भी तो पूंजीवाद की देन है। यह बात सच है, किन्तु केवल टेकनिकल अर्थ में ही, कारण कि पूंजीवाद अभी तक उसे एक कला के रूप में विकसित नहीं कर सका है। नाटक, संगीत, चित्रकारी और मूर्तिकला, इन सबको आधुनिक समाज ने विकसित किया है, चाहे अच्छी दिशा में किया हो या बुरी दिशा में। ये सभी कलाएं विकास की एक लम्बी मंजिल पार कर चुकी हैं, और लगभग उतनी ही पुरानी हैं जितनी कि खुद सभ्यता है, और उनकी मुख्य समस्याएं भी हल हो चुकी हैं। किन्तु उपन्यास की केवल एक ही समस्या—सो भी सबसे सीधी, यह कि कहानी कैसे कही जाय—अतीत ने हल की है।

इसका यह अर्थ नहीं कि उपन्यासकारों ने एकदम न कुछ से अपनी इमारत खड़ी करनी शुरू की। उनके पास संचित अनुभव की एक पूंजी मौजूद थी, ऐसे अनुभव की पूंजी जिससे हम आज भी लाभ उठा सकते हैं। मध्य काल का अन्त होते-न-होते इंग्लैण्ड तथा इटली के व्यापारी समुदायों ने आधुनिक पद्धति से कथा कहने वाले पहले किस्सागो पैदा किये। इन किस्सों में पुरुष तथा स्त्री पात्रों के चरित्रों को, और उनके काम करने के ढंगों को, लगभग उतना ही महत्त्व दिया जाता था जितना

कि उनके कारनामों को उपन्यासकार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता —पुरुषों और स्त्रियों को जानने की जिज्ञासा—सर्वप्रथम चौसर और बौकेशियो में प्रकट हुई। हो सकता है कि मेलोरी[1] में भी यह तत्व कुछ दिखाई दे, लेकिन वह चौसर से करीब एक शताब्दी बाद लिख रहा था, और हालांकि गद्य को ही उसने अपना माध्यम बनाया था, लेकिन लगता ऐसा है मानो वह कवि से बहुत ही पिछड़ा हुआ हो। यह सच है कि उसके लेखन-काल में समाज ह्रास की पूरी अराजकता में डूबा था, किन्तु अंग्रेजी पुरुषों और स्त्रियों का कहीं अधिक सच्चा चित्र (और कहीं-कहीं अच्छा गद्य भी) मेलोरी के मुकाबले में आपको पेस्टन के पत्रों[2] में मिलेगा।

मेलोरी के शूरवीरों और रमणियों में, उनकी गोलमेज और उनके रहस्यवादी सन्त ग्राएल[3] में, उनकी हत्याओं और उनके छलछन्दों में, पूंजीवादी साहित्य के उस अत्यन्त विनाशकारी रूप के—रोमाण्टिसिज्म के —सभी तत्व मिलते हैं। किन्तु हम मेलोरी को मध्य कालीन कह कर टालने को तैयार नहीं, जैसे कि स्कौट या शेतोब्रियां को हम मध्य कालीन नहीं मानते। मेलोरी भी उतनी ही अच्छी तरह से कहानी कहते हैं जितनी कि स्कौट और उनकी भावुकता कभी उतनी घिनौनी नहीं होती जितनी कि शेतोब्रियां की, फिर भी वह पहला महान पलायन-वादी है, एक ऐसा व्यक्ति जो भयानक और घृणित वर्तमान से भाग कर अपनी भावना के सुनहरे अतीत की शरण लेता है। वास्तविकता को उन्होंने त्याग दिया, बल्कि यूं कहिए कि वास्तविकता का उनके लिए कोई अस्तित्व ही नहीं रहा। चौसर तो जैसे उनके लिए कभी हुआ ही न था, और अगर मेलोरी ने *कैण्टरबरी टेल्स* को कभी पढ़ा भी हो तो इसमें सन्देह नहीं कि उन्हें भोंडा समझ कर नाक सिकोड़ ली होगी। एक तरह से *यूफिअस*[4] और *आर्कीडिया*[5] उसकी रोमाण्टिक परम्परा के अंश थे, जैसे कि '*फ़ेयरी क्वीन*'[6] था। कविता या भावपूर्ण गद्य के रूप में उनके गुणों से इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु उन्होंने अंग्रेजी कल्पना को कथा के क्षेत्र में पनपने से रोका। किन्तु शायद इस बात को अधिक महत्व न देना चाहिए। कारण कि उस काल में हमारी सारी

श्रेष्ठतम राष्ट्रीय प्रतिभा नाटकीय काव्य की रचना में व्यस्त थी। एलिजाबेथ युग ने उल्लेखनीय रूप में उपन्यास को आगे नहीं बढ़ाया, यद्यपि फञ्जल की परम्परा के विरोध में शराबखानों और चोर उचक्कों की कुछ शानदार कथाएं इस काल में रची गयीं।

यही बात सत्रहवीं शताब्दी के बारे में भी कही जा सकती है। किन्तु यहां, मेरी समझ में, एक बात ध्यान देने योग्य है। अपनी आत्मकथा में एच. जी. वेल्स ने अनजान में ऐसे आत्मसमालोचनात्मक विचार प्रकट किये हैं, जिनका अत्यंत गहरा महत्व है। उन्होंने लिखा है: "चरित्र का विस्तार के साथ अध्ययन एक वयस्क धंधा है, एक दार्शनिक धंधा है। मेरे जीवन का इतना बड़ा हिस्सा एक लम्बी और फैली हुई नाबालिगी में, आम तौर से दुनिया से जूझने में, बीता है कि मैंने अपने जीवन के बाद के वर्षों में ही चरित्रों का मुख्य रूप से अध्ययन करना शुरू किया। मेरे लिए यह आवश्यक था कि पहले मैं उस ढांचे का पुनर्निर्माण करूं जिसके अन्दर व्यक्तियों का पूरा जीवन बीतता है। तभी मैं उसको इस ढांचे के अन्दर फिट बैठाने की व्यक्तिगत समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकता था।"

यह सच है कि उपन्यास लेखन एक दार्शनिक धंधा है। विश्व के महान उपन्यास—*डोन क्विगजोट, गारगनतुआ और पान्तागुएल, रोबिन्सन क्रूसो, जोनाथन वाइल्ड, जाक्वे ला फैटेलिस्त,*[1] *ला रूज ए ला न्वायर,*[2] *युद्ध और शान्ति, ला एजूकेशन सेन्टिमेंटल,*[3] *वुदरिंग हाइट्स,*[4] *दि वे आफ आल फ्लैश*[5]—ठीक इसीलिए महान हैं कि उनमें चिन्तन का यह गुण निहित है, कि वे जीवन की अत्यंत भावपूर्ण या यूं कहिए कि प्रेरणापूर्ण टीका हैं। यही वह गुण है जिससे कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रथम और द्वितीय कोटि की रचनाओं की परख होती है। यह सच है कि अनेकों दार्शनिक उपन्यास लिखने में बुरी तरह विफल रहे हैं, किन्तु कोई भी उपन्यासकार अपने पात्रों की विशिष्टताओं से सामान्य नतीजे निकालने की उस क्षमता के बिना रचना नहीं कर सका है, जो कि जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण से पैदा होती है।

सत्रहवीं शताब्दी ने महान उपन्यास नहीं पैदा किये, किन्तु उसने उन दार्शनिकों को अवश्य पैदा किया जिनकी बदौलत आगामी शताब्दी की जीतें सम्भव हो सकीं। जाने क्यों, बरबस कुछ ऐसा अनुभव होता है कि अठारहवीं शताब्दी अंग्रेजी कथासाहित्य का इसीलिए सिरमौर है कि वह अंग्रेजी दर्शन के सर्वोच्च काल के फौरन बाद आती है। अंग्रेजी दर्शन हमारे देश की पूंजीवादी क्रान्ति का फल था और वह गहरे रूप में भौतिकवादी था। मार्क्स के शब्दों में: "भौतिकवाद ग्रेट ब्रिटेन की सच्ची सन्तान है। वह एक इंग्लिश स्कूल मैन — डन्स स्कोउटस — ही था जिसने यह सवाल उठाया था कि 'क्या पदार्थ सोच नहीं सकता।'"[1] बर्कले ने, जो पहला अंग्रेज भाववादी था, लौक के एन्द्रियगोचर दर्शन का केवल उल्टा रूप अपनाया। इसी प्रकार स्टर्न ने रैबिले के भौतिकवाद और सर्वेण्टीज की कल्पनाशक्ति पर केवल भावुकता का आवरण चढ़ाकर पेश किया।

उपन्यास के वास्तविक संस्थापक, रैबिले और सर्वेण्टीज, अपने उत्तराधिकारियों से इस अर्थ में अधिक भाग्यवान थे कि उन्हें उस नये समाज में नहीं रहना पड़ा जिसके कि वे अग्रदूत थे। वे सन्तरण काल के जीव थे, उन क्रान्तिकारी तूफानों की सन्तान थे जिन्होंने मध्यकालीन सामन्तवाद को ढहा दिया। वे नये विचारों के महानतम प्रवाह से, मानव के उस रोमांचकारी पुनर्जन्म से, अनुप्राणित थे जिसकी इतिहास में कोई मिसाल नहीं मिलती (इस विवादास्पद प्रश्न को छोड़ दीजिए कि आज भी हम वैसे ही दौर में प्रवेश कर रहे हैं या नहीं)।

उनकी दोनों कृतियां जीवन की स्फूर्ति की, कल्पना-शक्ति और भाषा की समृद्धता की दृष्टि से आज भी बेजोड़ हैं। दो संसारों के बीच वे खड़े थे। पुरानी दुनिया के व्यसनों का, बुराइयों का, वे उपहास करते और धज्जियां उड़ाते थे। किन्तु नवीन को भी वे आंखें मूंद कर नहीं ग्रहण करते थे। शेक्सपीयर में भी यही बात थी, और सच पूछिये तो रेनैसां काल की अन्य महान विभूतियों में भी यह विशेषता मौजूद थी। तब से मानव ने उस बहादुर नयी दुनिया को, जिसे इन लोगों ने अपनी आल्हाद-

पूर्ण किन्तु सतर्क आंखों के सामने जन्म लेते देखा था, काबू में करके जितना पाया उतना ही उसकी तुलना में अपना व्यक्तित्व भी खो दिया।

रैबिले जीवन के उस दयनीय, विचित्र तथा अल्हादपूर्ण साधन, मानवशरीर की स्वतंत्रता को उभारते हैं और उस शरीर में बसने वाले मस्तिष्क को, उस मस्तिष्क को जिसने अभी-अभी नये सिरे से जीवन की खोज शुरू की है, संघर्ष का एक नया नारा प्रदान करते हैं: "जो जी में आये करो!" भाषा के क्षेत्र मे भी उन्होंने उतनी ही आश्चर्यजनक क्रान्ति का सूत्रपात किया जितनी कि विचारों के क्षेत्र में। फ्रांसीसी भाषा के किसी भी अच्छे ऐतिहासिक व्याकरण के अध्ययन मे यह बात प्रत्यक्ष हो जायगी। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि भाषा के क्रान्तिकारी प्रत्यावर्तन में लेखक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। रेनैसा के बाद फ्रांसीसी भाषा में जीवन का अगला महान प्रवाह आता है रोमाण्टिक आंदोलन के रूप में, जो कि महान क्रान्ति की सन्तान था। हमारी भाषा के बारे में भी, मोटी तौर से, यह बात सच है।

सर्वेण्टीज के कृतित्व की क्रान्तिकारी प्रकृति प्रत्यक्ष से अधिक परोक्ष है। उनके जीवन दृष्टिकोण का नाटक उनके दो मुख्य पात्रों के पारस्परिक सम्बंधों के रूप में, और फिर बाहरी दुनिया के साथ क्विक्जोट तथा साको के सम्बंधों के रूप में व्यक्त होता है। इस तरह उनका उपन्यास रैबिले से एक डग आगे बढ़ा हुआ है। जो हो, इन दोनों ने उपन्यासकार के लिए आवश्यक हर हथियार गढ़ कर रख दिया है। रैबिले ने हास्य और भाषा का कवित्व प्रस्तुत किया, सर्वेण्टीज ने व्यंग और अनुभूति की कविता दी। वे सार्वभौम प्रतिभा रखते थे और उपन्यास रूपी बहुरंगी गद्य-कथा के क्षेत्र में तबसे एक भी ऐसी कृति नहीं लिखी गई जो उनसे टक्कर ले सके।

यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि ये दोनों उपन्यासकार होने के साथ-साथ कर्मठ व्यक्ति भी थे, दोनों को उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा, और यह कि यदि मि. डेविड गार्नेट के लिए 'विशुद्ध कलाकार' के बारे में उनके साथ बातें करना सम्भव होता, तो दोनों-के-दोनों कुछ न समझ पाते। अगर काफी खींचतान के बाद, अन्त में वे इस विचित्र और

विरोधाभास युक्त धारणा का अर्थ समझ भी लेते तो दोनों अपने अपने ढंग से, पहले उसे गले से लगाते और इसके बाद अपने मनका बोझ हल्का करते—एक मौज में भद्दी गालियों का अम्बार लगाकर, दूसरा गम्भीरता के साथ व्यंग की बौछार करके। इस प्रकार दोनों ही इस विचित्र और विकृत धारणा की खबर लेते।

इस प्रकार उपन्यासकारों को, नये समाज के महाकाव्य लेखकों को, विरासत के रूप में महान पूंजी प्राप्त थी जिससे वे लाभ उठा सकते थे। अब देखना यह है कि उन्होंने अपना दायित्व किस प्रकार निभाया। हमारे अपने देश में, करीब आधी शताब्दी तक, गौरव के साथ उन्होंने काम किया, हालांकि वे उन ऊंचाइयों पर कभी नहीं पहुंच सके जिन्हें फ्रान्स और स्पेन के महान प्रतिभाशाली उपन्यासकार नाप चुके थे। उपन्यास एक हथियार था—राजनीतिक नारेबाजी के मोटे अर्थ में नहीं, बल्कि अपने जन्म और स्वस्थ विकास के प्रथम काल में यह एक ऐसा हथियार था जिसके द्वारा पूंजीपति वर्ग के श्रेष्ठतम, सर्वाधिक कल्पनाशील प्रतिनिधियों ने नये पुरुष और स्त्री को तथा उस समाज को जिसमें कि वे रहते थे, परखा। अठारहवीं शताब्दी के लेखकों के बारे में यह एक सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है। वे मानव से कतराते नहीं थे। वे उसमें विश्वास करते थे, दुनिया को काबू में करने की उसकी योग्यता में विश्वास करते थे। किन्तु एक क्षण के लिए भी वे इस दुनिया की क्रूरता और बेइन्साफी की ओर से अपनी आंखें नहीं मूंदते थे। आखिर उनके नायक इसी दुनिया के ही तो अंग थे।

फील्डिंग पर यह दोष लगाया जाता है कि उसके उपन्यासों में "उपदेशों" की भरमार है। किन्तु अगर सब उपदेशों को हटा दिया जाय तो समाज की उनकी आलोचना फिर भी लुप्त नहीं होगी, क्योंकि वह स्वयं उनकी कहानी में निहित है। हां, ऐसा करने पर अंग्रेजी भाषा में से कुछ श्रेष्ठतम निबंध अवश्य गायब हो जायेंगे। अच्छा यही है कि इन निबंधों को वहीं रहने दिया जाय और इस दुःखद सत्य को स्वीकार कर लिया जाय कि फील्डिंग जो, हैनरी जेम्स[1] की तो बात ही छोड़िये, फ्लौबर्ट तथा गौन्कोर्ट बन्धुओं से भी पहले हुआ था, सभ्य साहित्यिक समाज के

उन कतिपय नियमों से सचमुच परिचित न था, जिनका उपन्यास लिखते समय पालन करना जरूरी समझा जाता है। वह पहला अंग्रेज था जो यह समझ सका कि उपन्यासकार का कर्तव्य जीवन के बारे में सत्य को, जिस रूप में वह उसे देखता है, उसी रूप में प्रकट करना है; और सत्य को उसने अपने ही रंग में प्रकट किया। *जोनाथन वाइल्ड* में उसने जीवन के इस सत्य को जिस रूप में व्यक्त किया, वैसे न कोई उसके पहले कर सका और न बाद में, यहां तक कि स्विफ्ट भी उसकी ऊंचाइयों को छूने में कभी सफल नहीं हो सका। सत्य की यह अभिव्यक्ति एक ऐसे भयानक और निर्मम आक्रोश के साथ उसने की, जो अमर है, क्योंकि वह मानवीय जीवन के अधोपतन के प्रति मानवीय आक्रोश का मूर्त रूप है।

फील्डिंग की यह आलोचना की गयी है—उल्लेखनीय रूप में *अंग्रेज उपन्यासकार* में श्री डेविड गार्नेट के निबंध में—कि दुःख दर्द के प्रति उनका एक ऐसा निर्मम रवैया है जो संवेदनशीलता की कमी को व्यक्त करता है। यह सच है कि मानव हृदय की कुछ ऐसी गहनतम गहराइयां हैं जिन्हें उनके कृतित्व में अभिव्यक्ति नहीं मिली, क्योंकि वह अन्तर्मुखी लेखक न होकर बहिर्मुखी लेखक थे; और यदि यह कभी कहीं-कहीं उनकी निरीक्षण शक्ति में बाधक होती है, तो यह कहना अनुचित न होगा कि रिचर्डसन, स्टर्न और रूसो जैसे अन्तर्मुखी लेखकों ने कदाचित् वस्तुगत जगत को त्याग कर और भी अधिक खोया है, और उनकी दृष्टि और भी अधिक संकुचित हो गयी है।

किन्तु उपन्यासकार फील्डिंग पर हृदयहीनता का यह आरोप अनुचित और अन्यायपूर्ण है। वह एक हृदयहीन दुनिया में, विजयी पूंजीवाद की दुनिया में, रहता था। वह उस काल में रहता था जबकि अंग्रेज सामन्त अंग्रेज किसान को कुचल कर नेस्तनाबूद कर रहे थे, जबकि अंग्रेज लुटेरे भयानक और अनैतिक (निर्गुण अर्थ में) तरीकों से इण्डीज की सम्पदा पर हाथ साफ कर रहे थे और इस लूटे हुए धन के संचय से देश में औद्योगिक क्रान्ति की जमीन तैयार की जा रही थी। वह विचित्र विभूति, वारेन हेस्टिंग्स,[1] पूर्व से बदला लेने के लिए जिसे हमने अंग्रेजी नगेज खां बना कर भेजा था, फील्डिंग के दिनों में अभी बच्चा था।

वालपाल उसके प्रौढ़ काल का प्रधान मंत्री था और *जानाथन वाइल्ड* के वे परिच्छेद जिनमें बड़े लोगों द्वारा लूट के माल तथा पगड़ियों की हिस्सा-बांट का वर्णन है, भ्रष्टाचार और लूट के उस युग का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते हैं। फील्डिंग पर हृदयहीनता का आरोप लगाना ऐसा ही होगा जैसा कि *लेडी इनटू फौक्स* के रचयिता को अपने युग के वास्तविक जीवन के प्रति संवेदनहीन होने का दोषी ठहराना।

अठारहवीं शताब्दी के लेखकों में एक द्वैध दिखाई देता है जो न केवल दिलचस्प है बल्कि महत्वपूर्ण भी है। डेफो, फील्डिंग और स्मौलेट दुनिया का विशुद्ध वस्तुगत चित्र प्रस्तुत करने में संलग्न रहते हैं। उनके पात्रों का "आन्तरिक जीवन" बहुत ही संकुचित या न के बराबर है, और ये लेखक भावना या उद्देश्य का विश्लेषण करने में अपना जरा भी समय खर्च नहीं करते, कारण कि वे "क्यों" के बजाय "कैसे" का वर्णन करने में अधिक व्यस्त रहते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि "क्यों" का बहिष्कार हो गया। नहीं, ऐसा नहीं है। आमतौर से, पाठक को यह साफ पता चल जाता है कि कोई पात्र अमुक काम क्यों करता है, कारण कि कर्म पात्र से ही—जैसा कि हम जानते हैं—प्रवाहित होता है। मिसाल के लिए उस सुप्रसिद्ध प्रसंग को लीजिए जिसमें मौलफ्लैण्डर्स* बच्चे को लूटने के बाद उसकी हत्या करने से हाथ खींच लेती है। उसके चरित्र को देखते हुए यह बात साफ समझ में आ जाती है कि वह ऐसा क्यों नहीं करती। डेफो की दिलचस्पी इस बात में है कि उसने बच्चे को लूट कर संतोष कर लिया, और शिशु हत्या करने से पहले ठिठक कर हाथ खींच लिया। 'क्यों' की खोजबीन से यह ज्यादा दिलचस्प मालूम होता है। लेकिन डेफो की जगह अगर दोस्तोवस्की होता तो इस (अपेक्षाकृत) तुच्छ घटना के चारों ओर एक समूचे उपन्यास का जाल पूर देता जिसका एकमात्र लक्ष्य 'क्यों' की खोजबीन करना होता।

अठारहवीं शताब्दी में उपन्यास का एक सर्वथा नये रूप में विकास हुआ। उपन्यास ने अब केवल व्यक्तिगत उद्देश्यों और भावनाओं से ही वास्ता रखा जिसमें सामान्य जीवन के चित्रण का लगभग कोई स्थान न रहा। रॉबिन्सन क्रूसो व्यक्ति की सर्वोच्च अभिव्यक्ति था, लेकिन एक ऐसे

व्यक्ति की अभिव्यक्ति जो पूर्णतया बहिर्मुखी था,—एक पहलू से नयी दुनिया का प्रतिनिधि मानव, लेकिन दूसरे पहलू से नहीं। रूसो ने देखा कि वही अकेला दुनिया को जीत सकता है। स्टर्न और रूसो और भी आगे बढ़े और उन्होंने आविष्कार किया कि अकेला व्यक्ति ही दुनिया है। दर्शन के क्षेत्र में भी ऐसा ही कुछ हुआ। बर्कले ने लौक के अनुभव-सिद्धवाद को उलट कर अपने अन्तर्मुखी भाववादी दर्शन की रचना की, जो हमारी निजी चेतना से बाहर अन्य किसी वास्तविकता से इनकार करता था। कथा-साहित्य के क्षेत्र पर इसका—व्यक्ति की चेतना को प्रारम्भ-बिन्दु मान कर दुनिया को देखने का—क्रान्तिकारी और व्यापक प्रभाव पड़ा। शीघ्र ही इसका अनिवार्य परिणाम भी प्रकट हो गया : रेस्टिफ द ब्रेटोन[1] ने अपनी जीवनी पर आधारित उपन्यास *मौंशिये निकोलास* स्वयं अपने आप को ही समर्पित किया। किन्तु जहां इस नयी पद्धति ने कुछ हास्यास्पद नतीजे पैदा किये और अन्त में उपन्यास को ही नष्ट कर दिया, वहां वह शुभ्र नतीजे भी प्रकट कर सकती थी।

असलियत यह है कि वास्तविकता के बारे में न तो फील्डिंग का दृष्टिकोण पूर्णतया सही था, और न रिचर्डसन तथा स्टर्न का ही। भावों और विश्लेषण की उपेक्षा तथा व्यक्ति के अन्तर्मुखी पक्ष को न देख सकने के कारण उपन्यास सूझबूझ और कल्पना की उड़ान से वंचित रह गया। इसी प्रकार समूचे कार्यक्षेत्र को व्यक्ति की चेतना में केन्द्रित करने के परिणामस्वरूप उपन्यास महाकाव्य के गुणों से शून्य हो गया। सर्वेण्टीज के लिए इस तरह का विभाजन कल्पनातीत था। यह विभाजन तो उस पूर्णतया विकसित पूंजीवादी समाज की देन था जिसने व्यक्ति को समाज से पृथक करने की प्रक्रिया को पूरा कर दिया था, ठीक उसी प्रकार जैसे कि दो और पीढ़ियों में अपने सामाजिक श्रम के सूक्ष्म और जटिल विभाजन को पूरा करने के दौरान में उसने खुद व्यक्तियों का ही उप-विभाजन करना शुरू कर दिया।

नयी धारा के उपन्यासकार परेशानी में डालने वाले "चेतनावाद" के अपने आविष्कार के साथ उपन्यास के क्षेत्र में एक क्रान्ति के अग्रदूत

वालपोल उसके प्रौढ़ काल का प्रधान मंत्री था। और *जोनाथन वाइल्ड* के वे परिच्छेद जिनमें बड़े लोगों द्वारा लूट के माल तथा पगड़ियों की हिस्सा-बाँट का वर्णन है, भ्रष्टाचार और लूट के उस युग का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते हैं। फील्डिंग पर हृदयहीनता का आरोप लगाना ऐसा ही होगा जैसा कि *लेडी इनटू फौक्स* के रचयिता को अपने युग के वास्तविक जीवन के प्रति संवेदनहीन होने का दोषी ठहराना।

अठारहवीं शताब्दी के लेखकों में एक द्वैध दिखाई देता है जो न केवल दिलचस्प है बल्कि महत्त्वपूर्ण भी है। डेफो, फील्डिंग और स्मौलेट दुनिया का विशुद्ध वस्तुगत चित्र प्रस्तुत करने में संलग्न रहते हैं। उनके पात्रों का "आन्तरिक जीवन" बहुत ही संकुचित या न के बराबर है, और ये लेखक भावना या उद्देश्य का विश्लेषण करने में अपना ज़रा भी समय खर्च नहीं करते, कारण कि वे "क्यों" के बजाय "कैसे" का वर्णन करने में अधिक व्यस्त रहते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि "क्यों" का बहिष्कार हो गया। नहीं, ऐसा नहीं है। आमतौर से, पाठक को यह साफ पता चल जाता है कि कोई पात्र अमुक काम क्यों करता है, कारण कि कर्म पात्र से ही—जैसा कि हम जानते हैं—प्रवाहित होता है। मिसाल के लिए उस सुप्रसिद्ध प्रसंग को लीजिए जिसमें मौलफ्लैण्डर्स[1] बच्चे को लूटने के बाद उसकी हत्या करने से हाथ खींच लेती है। उसके चरित्र को देखते हुए यह बात साफ समझ में आ जाती है कि वह ऐसा क्यों नहीं करती। डेफो की दिलचस्पी इस बात में है कि उसने बच्चे को लूट कर संतोष कर लिया, और शिशु हत्या करने से पहले ठिठक कर हाथ खींच लिया। 'क्यों' की खोजबीन से यह ज्यादा दिलचस्प मालूम होता है। लेकिन डेफो की जगह अगर दोस्तोवस्की होता तो इस (अपेक्षाकृत) तुच्छ घटना के चारों ओर एक समूचे उपन्यास का जाल पूर देता जिसका एकमात्र लक्ष्य 'क्यों' की खोजबीन करना होता।

अठारहवीं शताब्दी में उपन्यास का एक सर्वथा नये रूप में विकास हुआ। उपन्यास ने अब केवल व्यक्तिगत उद्देश्यों और भावनाओं से ही वास्ता रखा जिसमें सामान्य जीवन के चित्रण का लगभग कोई स्थान न रहा। रौबिन्सन क्रूसो व्यक्ति की सर्वोच्च अभिव्यक्ति था, लेकिन एक ऐसे

व्यक्ति की अभिव्यक्ति जो पूर्णतया बहिर्मुखी था,—एक पहलू से नयी दुनिया का प्रतिनिधि मानव, लेकिन दूसरे पहलू से नहीं। रूसो ने देखा कि वही अकेला दुनिया को जीत सकता है। स्टर्न और रूसो और भी आगे बढ़े और उन्होंने आविष्कार किया कि अकेला व्यक्ति ही दुनिया है। दर्शन के क्षेत्र में भी ऐसा ही कुछ हुआ। बर्कले ने लौक के अनुभव-सिद्धवाद को उलट कर अपने अन्तर्मुखी भाववादी दर्शन की रचना की, जो हमारी निजी चेतना से बाहर अन्य किसी वास्तविकता से इनकार करता था। कथा-साहित्य के क्षेत्र पर इसका—व्यक्ति की चेतना को आरम्भ-बिन्दु मान कर दुनिया को देखने का—क्रान्तिकारी और व्यापक प्रभाव पड़ा। शीघ्र ही इसका अनिवार्य परिणाम भी प्रकट हो गया : रेस्टिफ द ब्रेटोन[1] ने अपनी जीवनी पर आधारित उपन्यास *मौंश्ये निकोलास* स्वयं अपने आप को ही समर्पित किया। किन्तु जहां इस नयी पद्धति ने कुछ हास्यास्पद नतीजे पैदा किये और अन्त में उपन्यास को ही नष्ट कर दिया, वहां वह शुभ्र नतीजे भी प्रकट कर सकती थी।

असलियत यह है कि वास्तविकता के बारे में न तो फील्डिंग का दृष्टिकोण पूर्णतया सही था, और न रिचर्डसन तथा स्टर्न का ही। भावों और विश्लेषण की उपेक्षा तथा व्यक्ति के अन्तर्मुखी पक्ष को न देख सकने के कारण उपन्यास सूझबूझ और कल्पना की उड़ान से वंचित रह गया। इसी प्रकार समूचे कार्यक्षेत्र को व्यक्ति की चेतना में केन्द्रित करने के परिणामस्वरूप उपन्यास महाकाव्य के गुणों से शून्य हो गया। सर्वेण्टीज के लिए इस तरह का विभाजन कल्पनातीत था। यह विभाजन तो उस पूर्णतया विकसित पूंजीवादी समाज की देन था जिसने व्यक्ति को समाज से पृथक करने की प्रक्रिया को पूरा कर दिया था, ठीक उसी प्रकार जैसे कि दो और पीढ़ियों में अपने सामाजिक श्रम के सूक्ष्म और जटिल विभाजन को पूरा करने के दौरान में उसने खुद व्यक्तियों का ही उप-विभाजन करना शुरू कर दिया।

नयी धारा के उपन्यासकार परेशानी में डालने वाले "चेतनावाद" के अपने आविष्कार के साथ उपन्यास के क्षेत्र में एक क्रान्ति के अग्रदूत

थे। रिचर्डसन ने डबडबाई आंखों से, किन्तु सचाई के साथ, मानव हृदय की अत्यंत गहनतम भावनाओं को प्रकट किया। जीवन के बारे में फील्डिंग जैसे अडिग दृष्टिकोण तथा वास्तविकता की मजबूत पकड़ की अगर उनमें कसर न होती तो वह विश्व के श्रेष्ठतम उपन्यासकारों में स्थान पाते। लेखक में जिन गुणों का अत्यंत प्रत्यक्ष अभाव हो, उन गुणों की उससे कामना करना है तो बेकार की बात, किन्तु रिचर्डसन के अभावों पर यह बेकार का खेद सर्वथा असंगत नहीं है, कारण कि इन अभावों ने उन्हें, अन्यायपूर्वक किन्तु अनिवार्यतः, अजायबघर की चीज बना दिया —एक जीवित लेखक के बजाय वह एक ऐतिहासिक तथा साहित्यिक "प्रभाव" मात्र रह गये हैं।

वास्तविकता से इस पलायन को स्टर्न ने और भी आगे बढाया। रिचर्डसन जहां अपने पात्रों की केवल भावनाओं का ही चित्रण करते थे, और बावजूद इसके कि वह चिट्ठी-पत्री के रूप में अपनी कहानी कहते थे, (उनका यह ढंग फ्रान्स से उधार लिया हुआ तथा अपने घरेलू अनुभव पर आधारित था) समय और काल की पृष्ठभूमि में कहानी कहने की परम्परा को उन्होंने नहीं छोड़ा था। स्टर्न ने, एक ही आघात में, यह सब नष्ट कर दिया। उनके उपन्यास *त्रिस्त्राम शैण्डी*, के नायक की केन्द्रीय समस्या को मजे में 'जीवन का बोझ ढोये या उससे छुटकारा पायें' की समस्या कहा जा सकता है, किन्तु इतने शाब्दिक अर्थ में कि जिसकी हैमलेट सपने तक में कल्पना नहीं कर सकता था, और जहां तक इस पाठक का सम्बंध है, वह कभी यह निश्चयपूर्वक नहीं जान सका कि समस्या का कोई समुचित समाधान हुआ अथवा नहीं। बावजूद इसके कि त्रिस्त्राम शैण्डी के जन्म की भौतिक प्रक्रिया की पेचीदगियों का इतने रोचक ढंग से वर्णन किया गया है, तत्व की बात पल्ले नहीं पड़ती। स्टर्न अपने उपन्यास में समय की—काल की—हत्या करता है। क्या उपन्यास में कहानी कही जाय? हां, सापेक्षतावादी जवाब देते हैं, उपन्यास में कहानी कही जा सकती है बशर्ते कि वह एक जासूसी कहानी हो जिसमें पाठक प्रारम्भ, मध्य और अन्त का सूत्र पाने के लिए छटपटाए, निरन्तर हैरान और परेशान रहे, और बाद में स्वयं लेखक से उसे सारा

रहस्य मालूम हो, अथवा, जहां इन बातों की अति हो जाती है, — लेखक के मित्रों को खासतौर से टीका-टिप्पणियां लिखनी पड़ें।

स्टर्न में महानतम उपन्यासकारों के सभी दैवी गुण मौजूद थे : वह व्यंग्य के धनी थे, उनकी कल्पना अद्भुत उड़ानें भरती थी, अश्लीलता में रस लेना वह जानते थे, मानवता से वह प्यार करते थे और हर वह चीज, जिससे देवबालाएं जन्म के समय प्रतिभा के धनी का अभिषेक करती हैं, उनके पास मौजूद थी — हर चीज, केवल एक को छोड़ कर, और वह एक चीज थी अपने पात्रों को वास्तविक दुनिया में स्थापित करने की क्षमता। वह बड़े चाव से अपने-आपको इंग्लैंड का रैबिले कहा करते थे, चचा टोबी और ट्रिम[1] की रचना में सर्वेन्टीज का उन्होंने अनुसरण किया था। किन्तु वह रैबिले नहीं थे, और सर्वेण्टीज तो उन्हें किसी भी हालत में नहीं कहा जा सकता। इन दोनों ने एक नयी दुनिया खोज निकाली थी, दोनों जीवन से लड़ते थे, और उसे प्यार भी करते थे, किन्तु स्टर्न तो केवल अठारहवीं शताब्दी के एक शब्दवीर भलेमानुस थे जो श्रीमन्तों के समाज के साथ पटरी बैठाने के लिए छटपटाते रहे। अपने दूर के उत्तराधिकारी स्वान्न के मुकाबले में वह कहीं अधिक रोचक और कहीं अधिक प्रतिभाशाली था, किन्तु दोनों पुस्तकों की रचना का प्रेरणास्रोत एक ही थे। स्टर्न प्रथम लेखक थे जिन्होंने समय या काल को नष्ट किया, उपन्यास में सापेक्षतावाद का सूत्रपात किया, किन्तु यह उन्होंने एक महानतर वास्तविकता के हित में नहीं, बल्कि इसलिए किया कि इस तरह अपने बारे में बातें करना उन्हें अधिक आसान मालूम हुआ। भाववादी पूछते हैं कि स्वयं से बढ़ कर वास्तविकता और कौन सी है? जवाब है : उन लोगों की वास्तविकता जो तुम्हें पसन्द नहीं करते और तुम्हें किसी गधे से कम नहीं समझते, — बेशक, उन्हीं लोगों की वास्तविकता जो स्टर्न को अपना ढोल पीटने वाला निर्लज्ज विज्ञापक और प्राउस्ट को सामाजिक बड़प्पन की सीढ़ियां नापने वाला ढोंगी समझते थे। किन्तु क्या वे गलत न थे? हां, वे गलत थे, हालांकि उन्हें गलत सिद्ध करने के लिए स्टर्न और प्राउस्ट ने जिस बुरी तरह हाथ-पैर मारे, उससे रचनात्मक कलाकार के रूप में खुद उनका मूल्य कम हुआ।

अठारहवीं शताब्दी का वास्तविक क्रान्तिकारी, यदि सच पूछा जाय तो उपन्यासकार था ही नहीं, हालांकि वह सभी काल के महानतम कल्पनाशील गद्य-लेखकों में से एक था। अठारहवीं शताब्दी के फ्रान्सीसी भौतिकवाद ने एक भ्रम का पोषण किया था—यह कि शिक्षा मानव को बदल सकती है। रूसो के हृदय में यही भ्रम बसा था। निश्चय ही यह धारणा पूर्ण रूप से भ्रम नहीं है, बल्कि मानव का सामाजिक वातावरण यदि अनुकूल हो तो यह सच भी हो सकती है, बशर्ते कि खुद मानव भी अपने-आप को बदलने के लिए सक्रिय रूप से प्रयत्नशील हो। रूसो के सिद्धान्त ने उनके हृदय में यह विश्वास पैदा किया कि मानव-चरित्र को अच्छी दिशा में बदलने के लिए प्रकृति अत्यत शक्तिशाली प्रभावों में से एक है। यह एक दुःखद भ्रम है, किन्तु इस भ्रम का पोषण करके रूसो ने साहित्य की एक बहुत बड़ी सेवा की,—कला के क्षेत्र में प्रकृति को फिर वापिस ला दिया। रूसो के बिना हम कभी एग्डोनहीथ[1] को नहीं पाते, न तॉल्स्तोय के फसल काटने वालों से हमारा परिचय होता और न कोनराद के प्रशान्त[2] से।

अठारहवीं शताब्दी उपन्यास का स्वर्णयुग था। इस युग के उपन्यासों में सर्वेण्टीज और रैबिले जैसी अद्भुत कल्पना की उड़ान तो नहीं थी, जो यह दिखा सके कि कल्पना किस प्रकार वास्तविकता को दानवी शक्ति से बदल सकती है, किन्तु वे मानव से डरे नहीं। और बिना किसी रू-रियायत के उन्होंने जीवन के बारे में साहस के साथ खरी बात कही। उनमें व्यंग्य है, और हास्य भी, और मानव को यह समझने के लिए वे बाध्य करते हैं कि व्यक्ति का एक आन्तरिक जीवन भी होता है और बाह्य जीवन भी। मानव के लिए उन्होंने प्रकृति को खोज निकाला, और फील्डिंग, स्विफ्ट, वाल्तेयर, दिदेरो और रूसो की कृतियों द्वारा उन्होंने मानव में यह चेतना जाग्रत की कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ इस दुनिया में भी सब कुछ श्रेष्ठ नहीं है। और उन्होंने मानव को जगाया ठीक समय पर ही, क्योंकि अठारहवीं शताब्दी की दुनिया इतिहास के सबसे महान क्रान्तिकारी भूकम्प में तबाह होने जा रही थी। किन्तु यह शताब्दी एक काम करने में विफल रही। वह एक भी ऐसा उपन्यास नहीं पैदा कर सकी

जो फीलिंग के मानवीय यथार्थवाद रिचर्डसन की संवेदनशीलता स्टन के व्यंग्य-हास्य और रूसो के गहरे प्रकृति-प्रेम को एक साथ प्रस्तुत करता। उन्नीसवीं शताब्दी भी इस मामले में अधिक सफल न रही, हालांकि बालजाक और तॉल्सतोय में पहले के मुकाबले वह इस लक्ष्य के काफी निकट आ गयी। वैसे यदि समग्र रूप में देखा जाय तो, उन्नीसवीं शताब्दी निस्संदेह एक पीछे हटने की शताब्दी थी, और इस पीछे हटने की क्रिया ने हमारे समय में आकर एक आतंकपूर्ण भगदड़ का रूप धारण कर लिया है।

छः

विक्टोरिया-कालीन गतिरोध

अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में इंग्लैंड में उपन्यास का विकास एकाएक रुक गया। ऐसा मालूम होता था मानो देश की प्रतिभा को, जो इतनी सहजता से एक नये महाकाव्य के रूप में बह निकली थी, अब कुछ काल के लिए अन्यत्र और अन्य रूप में प्रकट होना था। गोल्ड स्मिथ की भावुकता और वालपोल का कृत्रिम रोमाण्टिसिज्म स्मौलेट, फील्डिंग और स्टर्न की उपलब्धियों के सामने इतनी निम्न कोटि के मालूम होते हैं कि देख कर दुःख होता है। नये पूंजीपति वर्ग में जीवन की जो उमंग थी वह अब जौन वेस्ले[1] द्वारा चलाये गये धार्मिक आन्दोलन में व्यक्त होने लगी, और व्यापार के रंग में डूबे अभिजात्य वर्ग ने अपने बौद्धिक मनोरंजन के लिए फ्रान्स की ओर मुंह मोड़ा या अठारहवीं शताब्दी के अन्त के पतन-शील कवियों[2] की नैतिक बारीकियों में डूबना-उतराना शुरू किया। देश के सौभाग्य से, हमारी राष्ट्रीय प्रतिभा का काफी भाग, अमरीकी क्रान्ति और उसके बाद के नाजुक काल में, राजनीति की ओर भी उन्मुख हुआ।

असल में बात क्या थी? शताब्दी के पूर्वार्द्ध ने एक ऐसे साहित्यिक आन्दोलन को जन्म दिया था, जिसे, हमारे इतिहास में केवल एलिजेबेथ-कालीन[3] साहित्यिक ही मात करते हैं। शताब्दी के उत्तरार्द्ध ने ठहराव और पतन को जन्म दिया। अठारहवीं शताब्दी के आदि काल के लेखक मानव की उस रूप में जांच करने से नहीं डरते थे, जिसमें कि नये पूंजीवादी समाज ने उसे जन्म दिया था। इस नये जीव से तत्कालीन कवि, व्यंग्यकार और उपन्यास-लेखक हमेशा ही विशेष रूप से खुश नहीं रहते थे, किन्तु उन्होंने जैसा उसे पाया, उसी रूप में सच्चाई के साथ उसका चित्रण किया

था। किन्तु इसके बाद मानव से भय का, करीब-करीब घृणा का प्रादुर्भाव होता है। अब हम उसे एक क्रूर, मनमौजी, उमंगी और संघर्षरत मानवीय जीव के रूप में नहीं देखते, बल्कि एक ऐसे पापी के रूप में देखते हैं जिसका उद्धार करना आवश्यक है। इस पतन का क्या रहस्य है?

इसका रहस्य खुद देश के विकासक्रम में, धन की बढ़ती हुई शक्ति में,—जिसने मानव और मानव के बीच तथा पुरुष और स्त्री के बीच के सम्बंधों को विषैला बना दिया— सम्पन्नता और गरीबी के विरोध में, किसानों की हृदयहीन बेदखलियों में, तथा उन नये नगरों के जीवन की भयानक मनहूसियत में निहित है, जो पुरानी मंडियों और प्रशासन केन्द्रों के स्थान पर बन रहे थे। जर्मन बादशाह के नाम पर देश का कुशासन करने वाले भ्रष्ट गुट ने अमरीकी युद्ध लड़ा था और उसमें उसकी हार हुई थी। युद्ध के नुकसान को पूरा करने के लिए भारत को लूटा गया, और इस बात को कोई साफ-साफ नहीं समझ पा रहा था कि अतलान्तिक सागर के पार पांच हजार मील की दूरी पर प्रथम जनवादी जनतंत्र की स्थापना ने विश्व के इतिहास को बदल दिया है। कुछ अज्ञात पत्रकारों और एक या दो शैतान राजनीतिज्ञों के अलावा सभी इससे बेखबर थे।

जब अंग्रेज उपन्यासकार फिर मानव की ओर उन्मुख हुए और उन्होंने अंग्रेजी जीवन का महाकाव्य फिर रचना आरम्भ किया, उस समय तक दुनिया इतनी अधिक बदल चुकी थी कि उपन्यास पहले जैसा जरा भी नहीं रहा। हथियार खुट्टल हो चुका था, साथ ही कलाकार की दृष्टि भी बदल गयी थी। स्काट ने, जो कि इस नये औद्योगिक युग का प्रथम महान उपन्यासकार थे, अपने युग से एकदम भाग कर अपनी भावनाओं के गौरवमय और लुभावने अतीत में शरण ली। एक अर्थ में वह क्रान्तिकारी थे—एक नयी लीक उन्होंने डाली थी, सबसे पहले उन्होंने ही साफ तौर से बताया था कि मानव को केवल देखना ही काफी नहीं है, उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जांच करना भी जरूरी है। वह जानते थे कि मानव का एक अतीत भी होता है और वर्तमान भी, और अपनी अद्भुत व प्रखर प्रतिभा से उन्होंने वह निचोड़ निकालने का प्रयत्न किया जिसे हासिल करने में अठारहवीं शताब्दी विफल हो चुकी थी। उपन्यास

को वह एक ऐसा रूप देना चाहते थे जिसमें जीवन की कविता और गद्य का ऐक्य हो, जिसमें रूसो के प्रकृति-प्रेम, स्टर्न की भावप्रवणता तथा फील्डिंग की स्फूर्ति और विस्तार का सामन्जस्य हो।

वह इसमें विफल हुए, किन्तु यह एक गौरवपूर्ण विफलता थी, और इसके कारण ध्यान देने योग्य हैं। स्कॉट को यह कह कर ताक पर रख देने का आज फैशन-सा चल गया है कि वह एक निरा क़िस्सागो था, कि उसकी कहानियां दक्षता से गुथी हुई और असह्य भावुकता में डूबी होती थीं। मि. ई. एम. फौर्स्टर ने उन्हें इसी रूप में देखा है, किन्तु बालजाक का मत इससे भिन्न था। केवल स्कॉट ही एकमात्र ऐसे उपन्यासकार हैं जिनके प्रति बालजाक गहरी और वास्तविक कृतज्ञता स्वीकार करते हैं, और मि. फौर्स्टर के प्रति — जो कि हमारे एकमात्र बड़े और सम-सामयिक उपन्यासकार हैं—पूरी श्रद्धा प्रकट करते हुए भी मैं यह कहना चाहूंगा कि मुझे बालजाक का मत अधिक सही जंचता है।

स्कॉट को अपने महान काम में सफलता क्यों नहीं मिली? इसलिए कि अभेद्य पर्दे उसकी दृष्टि को अवरुद्ध किये हुए थे। यदि कोई आधुनिक आलोचक यहां मुझे टोक कर यह कहे कि उसका भी ठीक यही मत है तो मैं जवाब दूंगा कि आधुनिक आलोचक की आंखों पर भी वैसे ही पर्दे पड़े हैं, अन्तर केवल इतना है कि स्कॉट, हालांकि उसकी आंखों पर पर्दे पड़े थे, महान प्रतिभा का धनी था। स्कॉट मानव को उसके वास्तविक रूप में नहीं देख सका। उसके पात्र इतिहास के वास्तविक पुरुष और स्त्रियां नहीं हैं, बल्कि यूं कहना चाहिए कि वे उन्नीसवीं शताब्दी के आदि काल के अंग्रेजी उच्च मध्यम वर्गीय तथा व्यापारोन्मुख अभिजात्य वर्ग के लोग हैं, जिनको उसने अपने ही रंग में रंग कर पेश किया है। स्कॉट और फील्डिंग के पात्रों के बीच ठीक यही अन्तर है कि उसके पुरुष व स्त्रियां भावना के रंग में रंगे हैं जबकि फील्डिंग के पात्र प्रतिनिधि पात्र हैं।

अपनी जनता को सच्चे रूप में देखना उपन्यासकार के लिए असम्भव हो गया था। यहां तक कि जेन आस्टिन[1] भी, जो लगभग सफल हो चली थीं, हर पात्र के साथ घुटने झुका देती हैं। उनमें परख है, व्यंग्य है, वह अपने पात्रों का सच्चा विश्लेषण करती हैं, यह दिखाती हैं कि उनका

और उनकी समस्याओं का उनके समाज के अन्तर्गत हल नहीं हो सकता, और इसके बाद चुपचाप हथियार डाल देती हैं। यह उनकी सुरक्षित और नफीस कुलीनता की दुनिया है। इसके बाहर एक और दुनिया है, लेकिन उसका अस्तित्व कभी, किसी हालत में भी, स्वीकार नहीं किया जा सकता। लगता है जैसे अब हमारा वास्ता ऐसे लेखकों से पड़ रहा है जिन्हें बधिया कर दिया गया है — शारीरिक अर्थ में नहीं, मानसिक अर्थ में। यह कहना काफी नहीं है कि नयी दुनिया की, विशेषकर विक्टोरिया काल की, धार्मिक कट्टरता ही इसका कारण है, क्योंकि अगर ऐसा होता तो किसी भी महान् लेखक के लिए इस कट्टरता को तोड़ना मुश्किल न न होता (कविता के क्षेत्र में एक पीढ़ी पहले बायरन ऐसा कर ही चुके थे)। असल में कठिनाई यह थी कि खुद लेखक ही जीवन को इस रूप में देखता था। मानव को उसके वास्तविक रूप में देखने में वह असमर्थ था, वह उसे केवल एक ऐसी छवि के रूप में देखता था जो नये औद्योगिक समाज के चौखटे में फिट बैठती थी।

थैकरे नये पूंजीपति वर्ग से घृणा करते थे और अपनी इस घृणा को साफ प्रकट कर देते थे। उनका व्यंग्य तीखा था। इसी प्रकार अन्य छोटे-मोटे लेखक भी व्यंग्य बाण छोड़ते थे, किन्तु समूचे मानव को वास्तविक जगत के साथ उसके सम्बंधों के बीच में अंकित करने का — जैसा कि अठारहवीं शताब्दी में किया गया था — साहस उन्होंने कभी नहीं किया। यह नहीं कि विक्टोरिया काल के लोग यौन-विषयक चर्चा से घबराते थे। नहीं, ऐसा कुछ नहीं था बल्कि वे अपने ही ढंग से — और यह ढंग सदा बहुत अच्छा भी नहीं होता था — इस समस्या को लेकर काफी खुल खेलते थे। चाहे कितना ही भला-बुरा कहिए, बैकी शार्प पुनःस्थापन काल के सुखांत नाटकों (रेस्टोरेशन कामेडी) की नायिकाओं से अधिक भिन्न नहीं है, हालांकि उसकी भाषा काफी अधिक शिष्ट है।

दिक्कत यह थी कि विक्टोरिया काल का लेखक समाज में मानव-मानव के बीच के वास्तविक सम्बंधों का पर्दाफाश किए बिना पुरुष-स्त्री के सम्बंधों की वस्तुस्थिति का विवेचन नहीं कर सकता था। यह असम-

पदों का, भुखमरी के पाँचवें दशक ('४० से' ५० तक) का, चार्टिस्ट हड़तालों और न्यूपोर्ट विद्रोह का काल था, एक ऐसा काल जिसमें १६८८ के बाद अंग्रेजी इतिहास में पहली बार देश के बुनियादी कानून में परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन योंही नहीं हुआ, बल्कि सशस्त्र बल-प्रयोग की धमकी से किया गया था। धन और सफलता की पूजा का यह काल था, फैक्टरियों का विकास हो रहा था और इंग्लैंड के अत्यन्त सुन्दर देहात के पूरे-के-पूरे इलाके उजाड़े जा रहे थे। सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन में, आदर्शवादी पाखण्ड की घृणित चादर की आड़ में खूंख्वार भौतिकता का दौर-दौरा था। विक्टोरिया कालीन परिवार का यदि सच्चा चित्र अंकित किया जाता, तो इन अन्य पहलुओं को नजरंदाज करना भला कैसे सम्भव होता? विक्टोरिया कालीन 'शराफत' और धार्मिकता — सभी की पोल खुल जाती। इस शताब्दी में आगे चलकर सैम्युअल बटलर ने अपने एक उपन्यास में, जो विक्टोरिया काल के सचमुच में महान् उपन्यासों में से एक था, सच्चाई को अवश्य प्रकट किया। यह उपन्यास उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ और केवल हमारे अपने समय में ही उसे मान्यता दी गई।

बात यह नहीं थी कि विक्टोरिया काल के उपन्यासकार ईमानदारी से देखना नहीं चाहते थे, बल्कि वास्तविकता यह है कि वे देख नहीं सकते थे। उनके काल की सीमाओं के लिए उन्हें दोष देना उतनी ही मूर्खता की बात होगी जितनी कि उनकी बाकी ठोस उपलब्धियों को नजरंदाज करना। उन्होंने अंग्रेजी उपन्यास को निस्सन्देह नया जीवन दिया, जो, पिछली शताब्दी के मध्य में अपनी प्रथम शानदार विजय के बाद मृतप्राय हो गया था। डिकेन्स के रूप में उन्हें एक ऐसा प्रतिभाशाली लेखक प्राप्त हुआ, जिसने उपन्यास को महाकाव्य का गुण फिर पूर्णतया प्रदान किया, और अपनी प्रचुर कल्पना से ऐसी-ऐसी कहानियों, कविताओं तथा पात्रों की सृष्टि की जो कि अंग्रेजी भाषाभाषी दुनिया के जीवन का अभिन्न अंग बन चुके हैं। उनके कुछ पात्र तो कहावतों की भांति जीवित हैं और हमारे आधुनिक लोक-साहित्य में उन्होंने घर कर लिया है। निश्चय ही किसी भी लेखक के लिए इससे बड़ी उप-

लब्धि नहीं हो सकती। केवल प्रतिभा, मानव-प्रेम और जीवन की कविता की अनुभूति ही उसे ऐसा बना सकती है।

किन्तु इस बात के बावजूद डिकेन्स भी अन्य समसामयिकों के समान अपने युग के स्वामी नहीं थे। उनकी कल्पना की उड़ान, काव्यमय भावनाओं को जगाने की उनकी क्षमता, अनगिनत घटनाओं को गढ़ने तथा अपने पात्रों के रूप में अपनी जनता को प्रिय लगनेवाली मानवीय कमजोरियों और गुणों का चित्रण करने की उनकी योग्यता ने पाठकों को मुग्ध कर लिया। वह अपने युग के लेखक थे, हालांकि वह उस युग पर कभी छा नहीं सके। उन पर आक्रमण किया जाता है कि वह कलाकार नहीं थे (इस सन्दर्भ में चाहे जो कुछ भी इसका अर्थ हो), और यह कि वह पाठकों के लेखक थे, लेखकों के लेखक नहीं। अगर ऐसी बात है तो क्या से। यही बात स्कॉट के बारे में भी कही जाती है, विदेशी लेखकों में से बालजाक पर जिनका प्रभाव सबसे अधिक था, और बालजाक ही उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध पर छाये थे। तॉल्स-तोय को बाहर के जिन लेखकों ने प्रभावित किया उनमें से शायद डिकेन्स का असर सबसे अधिक था, और तॉल्सतोय ही उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध पर छाये थे।

क्या कारण है कि स्कॉट बालजाक की भांति प्रभावशाली नहीं हो सके, या डिकेन्स तॉल्सतोय की बुलन्दियों को नहीं छू सके ? डिकेन्स और स्कॉट के पात्रों में हमेशा किसी चीज की कमी क्यों खटकती है ? इसका कारण यह है कि वे अपने समाज की सतही शराफत को भेद कर उसकी ओट में हो रहे मानव के उत्तरोत्तर पतन को नहीं देख सके। चूंकि वे इस प्रक्रिया को नहीं देख सके, इसलिए वे अपने समसामयिकों के वास्तविक गौरव को न देख सके, और न अपने युग के गौरव को ही उन्होंने पहचाना। विक्टोरिया काल के उपन्यासकार विजयी मध्यम वर्ग के मापदण्डों के छिछलेपन से तो खूब परिचित थे, और इस छिछलेपन की बखूबी चिन्दियां उड़ाने की सामर्थ्य भी उनमें थी किन्तु वे आत्मिक विघटन की गहरी प्रक्रिया को नहीं देख पाते थे। पूंजीवादी समाज के *कमीनेपन* को देखना उनकी सामर्थ्य से परे था।

इस मामले में उन्नीसवीं शताब्दी के फ्रान्सीसी यथार्थवादी अंग्रेजो से बेहतर थे, जैसा कि हम अगले परिच्छेद में देखेंगे। वे सब कुछ साफ देखते थे, किन्तु एक बालजाक को अपवाद रूप में छोड़कर वे भी विजयी नहीं हो सके,—वास्तविकता पर वे भी छा नहीं सके। रोमाण्टिसिज्म और उसके कृत्रिम मूल्यों के विरुद्ध प्रतिक्रिया के फलस्वरूप फ्रान्सीसी उपन्यासकारों ने पूँजीवादी समाज की कटु तथा अविचल आलोचना की स्थिति को अपना लिया। यह इसलिए सम्भव हो सका,—बल्कि ऐसा होना अनिवार्य था—कि फ्रान्स में वर्गों का संघर्ष अधिक तेज था। इस तेजी के सामने भ्रमों का पोषण सम्भव न था। किन्तु, दुर्भाग्यवश, आलोचना की इस स्थिति ने, न केवल सामाजिक दृष्टि से ही, बल्कि कलात्मक दृष्टि से भी, नकारात्मक रूप धारण कर लिया। अन्त में, यथार्थवाद में और अधिक गहराई लाकर उपन्यास का उद्धार करने के बजाय उसने उपन्यास को और भी विच्छृंखलित किया, और इसके परिणामस्वरूप उपन्यास यथार्थवाद से और भी दूर हट गया।

अंग्रेज यथार्थवादियों ने समाज के बारे में अपने भ्रमों को बनाए रखा। इसके लिए उन्होंने रोमाण्टिसिज्म से, कृत्रिम शराफत का घूंघट काढ़े विक्टोरिया काल की उस पतुरिया से, समझौता किया। उन्नीसवी शताब्दी के उपन्यासकारों में एक अजीब विरोधाभास नजर आता है। उनके पूर्वज जीवन के भौतिक व्यापारों के बारे में, कानून और सम्पत्ति के बारे में, प्रेम और युद्ध के बारे में लिखते थे। उनके पाठकों का दायरा बहुत ही छोटा और उच्च शिक्षित लोगों का था जिनके लिए मानवीय जीवन की वास्तविकताओं को चेतन तथा 'दार्शनिक' दृष्टि से देखना, ऐयाशी की बात थी और जो इसे अपना विशेषाधिकार समझते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के लेखक के साथ ऐसी बात नहीं थी। उसके पाठक—अर्धशिक्षित निम्न मध्य वर्ग या स्वशिक्षित मजदूर वर्ग का अपार जन-समूह—उसकी छाती का बोझ बन बैठे। ऐसी अनेक बाते हैं जिनको सरे-आम दोहराना एक भद्र मध्यम वर्गीय व्यक्ति के लिए शोभा नहीं देता। यौन विषयक पुस्तक के लेखक पर अश्लीलता के मुकदमे का फैसला सुनाते हुए गत वर्ष एक न्यायाधीश ने बड़ी गम्भीरता से राय दी

कि चुने हुए पाठकगण के लिए प्रेम के रास रंग का वर्णन करने में कोई हानि नहीं है, किन्तु इस तरह की बातें लिखना और फिर प्रत्येक मजदूर महिला के लिए उसे उपलब्ध करना एकदम दूसरी बात है। यह केवल निन्दनीय ही नहीं, बल्कि दण्ड के भी योग्य है।

इस कठिनाई को उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज उपन्यासकारों ने रोमान्स की चादर ओढ़ कर पार किया। फ्रान्सीसी उपन्यासकारों ने इस पाठक समूह के विरुद्ध, जिसने लेखक के रूप में उनके अस्तित्व को सम्भव बनाया, किन्तु कलाकार के रूप में उनकी आत्मा को नष्ट कर दिया (वह ऐसा ही महसूस करते थे), एक मूक और सुलगती हुई घृणा की शरण ली। रूसी उपन्यासकारों की स्थिति इन से निराली और किसी हद तक अठारहवीं शताब्दी के फ्रान्सीसी उपन्यासकारों के समान थी, किन्तु उपन्यास के क्षेत्र में बाद में आने के कारण इन दोनों देशों में उपन्यास की प्रगति का समूचा लाभ उन्हें प्राप्त था। फलतः उनकी स्थिति अच्छी रही—न तो उन्हें समझौतों के लिए बाध्य होना पड़ा, और न ही वे मैदान छोड़ कर भागने पर मजबूर हुए।

प्रस्तुत पुस्तक का एक उद्देश्य कुछ ऐसी कठिनाइयों पर प्रकाश डालना भी है जो मानव की आत्मा का चित्रण करते समय उपन्यासकार के सामने उठ खड़ी होती हैं। मेरा विश्वास है कि इस आत्मा का पर्याप्त चित्रण केवल महाकाव्य की शैली में ही किया जा सकता है। कला के रूप में उपन्यास की सफलता का असली रहस्य इसी में निहित है। रैबिले और सर्वेण्टीज के बाद इस महाकाव्य की शैली को इतना मांजा और घिसा गया कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक उसका बहुत ही कम अंग बाकी रहा, और उपन्यास का तो लगभग घाते में खात्मा ही हो गया। लेखक के मुकाबले की ताकत के रूप में पाठक के भी मैदान में उतरने के परिणामस्वरूप यह प्रक्रिया पूरी हो गयी। कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे उपन्यास का उद्धार भी हो सकता था। गायक और उसके श्रोताओं के बीच तालमेल और संगति ने ही महाकाव्य को जन्म दिया था और अगर लेखक तथा उसके पाठकों के बीच भी ऐसी ही कोई संगति स्थापित हो सकती, तो पतन के बजाय उपन्यास का विकास होता।

डिकेन्स पर पाठकों ने पत्रों की वर्षा की थी कि वह नन्ही नेल[1] को मरने न दें। किन्तु हार्डी को उल्टी गालियां सुननी पड़ीं और दमन के भय का सामना करना पड़ा, जबकि ब्रिटिश चैनल के उस पार, जहां साहित्य में काफी ईमानदारी बरती जाती थी और कला के क्षेत्र में साहस की कमी न थी, फ्लौबर्ट, गौन्कोर्ट बन्धुओं तथा जोला को मुजरिमों की भांति अदालत में घसीटा गया। इन दो चरम अवस्थाओं के बीच उपन्यास की नौका अनिवार्य रूप से डूबती दिखाई देती थी। "समाज"—हमारा तात्पर्य शासक वर्ग से है—इस बात की इजाजत नहीं दे सकता था कि "पब्लिक" को भ्रष्ट किया जाय, हालांकि अपने तमाम जबरदस्त साधनों से वह खुद उसे नैतिक और आध्यात्मिक—दोनों ही तरह से भ्रष्ट कर रहा था। अंग्रेजी उपन्यास की शानदार परम्परा को आगे बढ़ाने के इच्छुक लेखक के लिए अब यह सम्भव नही रहा था कि वह अपने आप को अलग रख कर राष्ट्र के जीवन का निरीक्षण कर सके और मौके के अनुसार अपने गुस्से, व्यंग्य, दया अथवा क्रूरता के भावों को व्यक्त कर सके। अठारहवीं शताब्दी के लेखक को यह सुविधा प्राप्त थी। असल में अत्यंत सीमित सख्या में उसके धनी और विशेषाधिकार प्राप्त पात्र ही उसकी पुस्तकों को पढ पाते थे। इन पात्रों के बारे में चाहे जितना खुल कर, सचाई के साथ, लिखा जा सकता था, क्योंकि इनकी सामाजिक स्थिति सुरक्षित थी, और साहित्य की मानवीय परम्परा में पले होने के कारण इतना तो था ही कि वे, बिना घबराये, उपन्यासकार के तिरस्कार को बर्दाश्त कर सकते।

किन्तु डिकेन्स की स्थिति कैसी थी? उनका अपना लन्दन उनकी पुस्तकों को पढ़ता था। वह और उनका लन्दन अभिन्न थे। अगर वह सात घड़ियालों वाले नगर[1] के जीवन को उसी रूप में देख पाते जैसा कि वह वस्तुत. था, तो उनकी आंखों के सामने एक अत्यंत भयानक चित्र उभर आता, उनके नाम पर एक अच्छा खासा द्वन्द्व उठ खड़ा होता, यह भी सम्भव है कि वह इस बोझ को न सम्भाल पाते और अपने प्रिय नगर से घृणा और नफरत के साथ मुंह फेर लेते। उन्होंने वास्तविकता पर भावुकता का मुलम्मा चढ़ा कर पेश करने का आसान रास्ता अपनाया। फ्रान्स में वास्तविकता और रोमाण्टिसिज्म के द्वन्द्व को दूसरे तरीकों से हल

किया गया—प्रत्यक्षतः अधिक ईमानदार तरीकों से, हालांकि अन्त में वे फलप्रद नहीं सिद्ध हुए। इस प्रकार डिकेन्स भी, जो कि अंग्रेजी उपन्यास की गौरवशाली परम्परा के अन्तिम महान प्रतिनिधि कहलाने का कुछ अधिकार रखते हैं, अपनी कला की उच्चतम कसौटी पर पूरा नहीं उतरते। उनके पास कल्पना थी, किन्तु कविता नहीं थी; हास्य था, व्यंग्य नहीं था; भाव थे, अनुभूति नहीं थी; अपने युग का चित्र तो उन्होंने प्रस्तुत किया, अपने युग को वह व्यक्त नहीं कर सके, उन्होंने वास्तविकता से समझौता तो किया, एक नये रोमाण्टिसिज्म की सृष्टि नहीं कर सके।

डिकेन्स को छोड़ कर—जिनमें फिर भी सार्वभौमिक प्रतिभा का कुछ अंश है—विक्टोरिया काल में उपन्यास, अधिकाधिक विशिष्टीकरण के साथ, विच्छृंखल होता जाता है। *टौम जोन्स* जैसे उपन्यास के स्थान पर अब हास्य के, साहसिक वृत्तान्त के, राह-बाट तथा जुर्म आदि के, अलग-अलग उपन्यास सामने आते हैं। सर्वेण्टीज जहां कल्पना और कविता का हास्य और स्वप्नलोकी चित्रों के साथ मेल बैठा सकते थे, वहां अब विशुद्ध काल्पनिक तथा कवितामय और विशुद्ध हास्य तथा स्वप्नलौकिक उपन्यास नजर आते हैं। जीवन के प्रति वस्तुगत रवैये से आत्मगत रवैये को अन्तिम रूप से अलग करने की चेष्टा, जो अठारहवीं शताब्दी में ही स्पष्टतः प्रकट हो गयी थी, निस्संदेह हमारे काल तक के लिए—जो कि व्यक्ति के संकट का काल है—रोक दी जाती है। फिर भी, कुल मिला कर, उन्नीसवीं शताब्दी का काल परम्परागत रूप के विच्छिन्न होने का काल है। मि. फौर्स्टर की पुस्तक *उपन्यास के पहलू* में इसका प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। इस पुस्तक में उपन्यास अनेक श्रेणियों में विभाजित है: कहानी-प्रधान उपन्यास, कल्पना-प्रधान उपन्यास, भविष्य-द्योतक उपन्यास। यह विभाजन एकदम सजग प्रयास नहीं है, फिर भी पुस्तक में मौजूद तो है ही।

सच तो यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी में पूंजीवाद की परिस्थितियां इस कृत्रिम विभाजन को जन्म देती है तथा इसे अनिवार्य बनाती हैं। उपन्यास की प्रकृति से इसका कोई वास्ता नहीं है। किन्तु आप आपत्ति कर सकते हैं कि एमिली ब्रान्ते कृत विशुद्ध रूप से 'भविष्यगर्भित'

उपन्यास *वुदरिंग हाइट्स* में उन्नीसवीं शताब्दी के पूंजीवाद की परिस्थितियां कहां हैं ? इस पुस्तक को भौतिकवादी दृष्टि से भला कैसे स्पष्ट किया जा सकता है ? उन्नीसवीं अथवा अन्य किसी शताब्दी से इसका क्या सम्बंध हो सकता है ? यह समय की परिधि से परे है, अमर है, और उस उत्कट अनुराग की भांति आदिम तथा प्रकृत है जो कि पुस्तक में प्राण फूंकता है। यह उपन्यास क्या है, विशुद्ध कविता है।

वुदरिंग हाइट्स सचमुच एक ऐसा उपन्यास है जो काव्य के स्तर पर पहुंच गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह मानव प्रतिभा द्वारा प्रस्तुत अत्यंत असाधारण पुस्तकों में से एक है। ऐसा इसीलिए है कि यह छटपटाती वेदना की पुकार है, जिसे खुद जीवन ने ऐमिली के हृदय को मथ कर निकाला है। मध्य विक्टोरिया काल के इंग्लैंड के जीवन ने इस पुस्तक को जन्म दिया। यह एक अनुरागभरी, कल्पनाशील लड़की की कहानी है जो वैस्ट राईडिंग के कछार में एक पादरी के सांय-सांय करते घर में कैद थी। शार्लोट ने इन लड़कियों के खंडित और सूने जीवन को रौचेस्टर और जेन एयर[1] के पवित्र प्रेम में तथा *विलेट* में लूसी स्नो[2] की विदग्ध कहानी में व्यक्त किया है। किन्तु एमिली केवल इतने से ही संतुष्ट नहीं रह सकती थी। उसके लिए यह आवश्यक था कि प्रेम पूर्ण रूप से विजयी हो, और कछार में पत्थरों से बने घर के हिंस्र तथा भयावह वातावरण में वह विजयी हुआ भी। कैथरीन और हीथक्लिफ[3] के चरित्र उन्नीसवीं शताब्दी के विरुद्ध प्रेम के प्रतिशोध के सूचक हैं।

"मेरी उंगलियां एक नन्हें, बर्फ की तरह ठंडे हाथ की उंगलियों से सट गयीं। दुःस्वप्न की गहरी भयानकता ने मुझे घेर लिया, मैंने अपनी बांह पीछे खींचने की कोशिश की, किन्तु वह हाथ मेरी बांह से लिपट गया और एक अत्यंत उदास आवाज ने सुबकी ली, 'मुझे अन्दर आने दो, अन्दर आने दो।' मैंने पूछा, 'तुम कौन हो ?' और इस बीच अपने हाथ को छुड़ाने का भी प्रयत्न करता रहा। 'कैथरीन लिन्टन,' कांपती हुई आवाज में उसने जवाब दिया...'मैं घर लौट आई हूं। कछार में मैं रास्ता भूल गयी थी।' तभी, उसके बोलते समय, मुझे एक बच्चे का धुंधला सा चेहरा खिड़की के अन्दर झांकता हुआ दिखाई दिया। भय से मैं

निमम हो उठा, उसे झटक कर दूर करने की कोशिश में विफल हो, मैं उसकी कलाई को खींच कर टूटे हुए कांच पर ले आया और आरी की भांति उसे रगड़ने लगा, यहां तक कि खून बह चला और उससे बिस्तरे के कपड़े तर हो गये। फिर भी वह कराहती रही : 'मुझे अन्दर आने दो।' और अपनी मजबूत गिरिफ्त को उसने जरा भी ढीला न होने दिया। भय ने मुझे एकदम पागल-सा बना दिया। 'यह कैसे हो सकता है ?' अन्त में मैंने कहा। 'मुझे छोड़ो, तभी मैं तुम्हें आने दे सकता हूं !' उंगलियां ढीली पड़ीं। मैंने अपना हाथ छेद में से भीतर खींच लिया, किताबों का एक अम्बार उसके आगे चुन दिया, और अपने कानों को इसलिए ढंक लिया कि उसकी मर्म-बेधी मनुहार सुनाई न दे। पौन घंटे से भी अधिक तक शायद मैंने अपने कानों को बंद रखा; किन्तु ज्यों ही मैं फिर सुनने लगा, तो वही दुःखद कराहट जारी थी। 'दफा हो यहां से !' मैंने चिल्ला कर कहा, 'मैं तुम्हें कभी अन्दर नहीं आने दूंगा, चाहे तुम बीस साल तक क्यों न गिड़गिड़ाती रहो !' 'बीस साल हो गये,' आवाज ने विलाप किया : 'बीस साल ! मुझे परित्यक्ता का जीवन बिताते हुए बीस साल हो गये !"

उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी साहित्य का यह सबसे भयानक उद्धरण है। किन्तु यह, यहां तक कि इसका वह तीखापन भी, जो कि इसकी जान है, स्थान अथवा काल से परे नहीं है। वेदना में डूबे ये शब्द एमिली के हृदय से खुद उसके युग ने उमेठ कर निकाले हैं, और अन्य कोई युग उसे इतनी तेज यंत्रणा नहीं पहुंचा सकता था, उसके हृदय को मरोड़ कर पीड़ा और भयानक वेदना में डूबे शब्दों को इतनी प्रचण्डता के साथ बाहर नहीं ला सकता था। पुस्तक के समूचे ओर-छोर में, एक विकृत और बीभत्स कोरस की गूंज की भांति, खेत-मजदूर जोसेफ[1] का असंतोष व्याप्त है — उस जोसेफ का, जो अपने युग की भोंडी नैतिकता का आनन्दविहीन, घृणा करने और घृणा किया जाने वाला प्रतीक है। लगता है जैसे खुद बन्दीगृह की दीवारों ने बन्दी का उपहास करने तथा उसे ठुकराने के लिए वाणी प्राप्त कर ली हो।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक का जन्म और लालन-पालन, हावर्थ पादरी-

घर से दस एक मील से भी कम दूर, एक ऐसे समाज में हुआ जिसमें ब्रॉन्ते बहनों के समय से कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआ था, जहां ब्रायवैल के कौतुक की याद अभी ताजा थी। उसे एमिली के इस उपन्यास में ऐसी कोई चीज नहीं नजर आती जिसे उस अर्थ में "विशुद्ध" कविता कहा जा सके, जिसमें कि इस विचित्र वाक्यांश के प्रेमी इसका प्रयोग करते हैं। मानव-वेदना की यह एक ऐसी भीषण और भयानक चीत्कार है, जैसी विक्टोरिया काल का इंग्लैंड तक किसी मानव के हृदय से इससे पहले न निकाल सका।

वास्तव में इस युग की तीन महानतम पुस्तकें वेदना की ऐसी ही पुकारें थीं। *वुदरिंग हाइट्स*, *जूड द औब्स्क्योर*[1] और *वे आफ आल-फ्लेश* अंग्रेजी प्रतिभा के घोषणा-पत्र थे, जिनका यह ऐलान था कि पूंजी-वादी समाज में पूर्ण मानवीय जीवन की उपलब्धि असम्भव है। पुरुष के प्रति स्त्री के प्रेम की दशा थी एक परित्यक्ता जैसी, जिसे शीत में चीखते-चिल्लाते कछार में खदेड़ दिया जाता है। अपने बच्चों के प्रति मनुष्य का प्रेम अन्त में उन्हें औक्सफोर्ड गरीब घर में पहुंचा देता है, मानो वे किसी किसान के सूअर हों, और ईमानदारी, बुद्धिमत्ता तथा सादगी आपके उन्नीसवीं शताब्दी के नायक को जेल पहुंचा देती हैं, जहां से उसे छुटकारा उसी समय मिलता है जबकि चची अलेथिया से प्राप्त उत्तर-पश्चिमी रेलवे के सत्तर हजार पौण्ड के शेयरों की अप्र-याशित भेंट की जमानत से उसकी आजादी खरीदी जाती है। ये तीनों पुस्तकें डिकेन्स से बहुत दूर हैं, डिकेन्स से भिन्न वे एक दूसरी ही दुनिया की चीज हैं और वे, एक तरह से, केवल भीमाकार खण्ड, भग्न प्रतिमाएं हैं। किन्तु उनमें उपन्यास की असली परम्परा को जीवित रखा गया है। वास्तविकता पर काबू पाने के अपने संघर्ष में— उस निरन्तर रचनात्मक संग्राम में, जिसमें डिकेन्स ने संघर्ष का झंडा उतार कर भावुकता का समझौतावादी सफेद झंडा फहराया था — भविष्य के लेखक इन उपन्यासों से प्रेरणा ग्रहण करेंगे और कृतज्ञता के साथ उनका स्मरण करेंगे।

सात

बालज़ाक, फ्लौबर्ट और गौन्कोर्ट बन्धु

१८५४ में न्यू यार्क ट्रिब्यून में प्रकाशित अपने एक लेख के अन्त में मार्क्स ने विक्टोरिया काल के यथार्थवादियों का उल्लेख करते हुए लिखा था :

"इग्लैंड के मौजूदा प्रतिभाशाली उपन्यासकारों के दल ने — जिनके चित्रमय और सजीव वर्णनों ने दुनिया के सामने सम्मिलित रूप से सारे राजनीतिज्ञों, पत्रकारों और नैतिकता के प्रचारकों से अधिक राजनीतिक और सामाजिक सत्यों को उभार कर रखा है,— मध्यम वर्ग के सभी हिस्सों का चित्र खींचा है। सभी प्रकार के 'व्यापार' को भोंडा समझकर तिरस्कार करने वाले सरकारी स्टाक के मालिक और 'सभ्य' महाजन से लेकर छोटे दूकानदार और वकील के मुंशी तक, किसी को उन्होंने नहीं छोड़ा है। और किस रूप में वर्णन किया है डिकेन्स, थैकरे, शार्लोट ब्रॉन्ते और श्रीमती गास्केल ने उनका? आत्मप्रवंचना, पाखण्ड, तुच्छ निरंकुशता और अज्ञान के पुतलों के रूप में। और इस वर्ग के माथे पर कलंक की भांति अंकित सभ्य जगत का यह टकसाली कथन कि समाज में अपने से ऊंचों के सामने वह दांत निपोरता है और अपने से छोटों के साथ तानाशाही बरतता है, उनके फ़ैसले की पुष्टि कर देता है।"[1]

करीब-करीब उन्हीं दिनों जबकि न्यू यार्क के समाचारपत्र में ये शब्द प्रकाशित हुए थे, शारीरिक यंत्रणा से त्रस्त फ्लौबर्ट ने अपने मित्र लुई बौइलहेत को लिखा : "रेचक, जुल्लाब, अर्क, जोंकें, बुखार दस्त, तीन रात हो गईं बिना आंख लगे। और बुर्जुआ वर्ग के प्रति अपार

झल्लाहट, आदि-आदि। यह है सप्ताह भर का हाल, श्रीमान।"
अंग्रेज और फ्रान्सीसी उपन्यासकार समान रूप से एक ही समस्या से उलझे थे—वह यह कि एक ऐसे समाज को कलात्मक रूप और अभिव्यक्ति कैसे दी जाए जो कि उन्हें स्वीकार नहीं है। इंग्लैंड में उन्होंने इस समस्या का हल किया अन्त में केवल वास्तविकता से एक तरह का समझौता करके, किन्तु फ्रान्स का समूचा इतिहास ऐसा था कि उस देश में इस तरह का समझौता करना असम्भव हो गया। आधुनिक दुनिया का अन्य कोई भी देश इतने भयंकर संघर्षों में से नहीं गुजरा था जितना कि फ्रान्स। पहले महान क्रान्ति, उसके बाद बीस वर्षों तक युद्धों का सिलसिला, जिनके दौरान में, १८१४ में अन्तिम विनाश तक, फ्रान्स की सेना योरप के सामन्ती राज्यों को एक छोर से दूसरे छोर तक रौंदती हुई बढ चली और फिर वापस लौटी।

नैपोलियन अन्तिम महान विश्व-विजेता था, किन्तु वह पहला बुर्जुआ सम्राट भी था। फ्रान्स उस भारी भरकम युद्ध तन्त्र के बोझ को केवल इसलिए संभाल पाया कि उन वर्षों में वह अपने प्रतिद्वन्द्वी इंग्लैंड के बराबर आने लगा, और उसने अपने उद्योगों का विकास आरम्भ कर दिया, विद्युत से चलने वाली मशीनों को बड़े पैमाने पर प्रचलित किया और अपने उन्मुक्त किसान वर्ग के बल पर एक विशाल नई मण्डी का निर्माण शुरू कर दिया। नैपोलियन के पतन के एक पीढ़ी बाद जब यह प्रक्रिया पूरी हुई तो एक अजीब विरोधाभास देखने में आया। वह यह कि एक सर्वथा नूतन फ्रान्स पर, एक ऐसे फ्रान्स पर जिसमें धन की तूती बोलती थी, और जो महाजनों, व्यापारियों तथा उद्योगपतियों का फ्रान्स था, वही सामन्ती अभिजात्य वर्ग शासन कर रहा था जिसे क्रान्ति ने जाहिरा तौर पर चूर-चूर कर दिया था। किन्तु अपने पुराने शासकों से युक्त इस नये फ्रान्स की वीरतापूर्ण परम्परा मूल रूप से क्रान्तिकारी थी—एक ओर इसके क्रान्तिकारी जैकोबिन थे, और दूसरी ओर नैपोलियन के सैनिक।

इस शताब्दी की महान प्रतिभा बालजाक ने, सचेष्ट भाव से, इस समाज का 'प्रकृत इतिहास' लिखने का बीड़ा उठाया। उसी बाल-

जाक ने, जो स्वयं एक तृपतन्त्रवादी, उत्तराधिकारवादी और कैथोलिक धर्म के अनुयायी थे। उनकी रचना *कामेडी ह्यूमेन*—मानव-जीवन के अध्ययन का वह विश्वकोष—उनके युग का एक क्रान्तिकारी चित्र था। क्रान्तिकारी इसलिए नहीं कि लेखक का ऐसा इरादा था, बल्कि इसलिए कि उसमें सच्चाई के साथ अपने समय के आन्तरिक जीवन का वर्णन किया गया है। अंग्रेज उपन्यासकार मार्गरेट हार्कनैस के नाम अपने एक पत्र में ऐंगेल्स ने बालज़ाक की यथार्थवादी शैली की सचाई पर जोर दिया था : "बालज़ाक ने, जिसे मैं आगे-पीछे के तमाम ज़ोलाओं से[1] यथार्थवाद का कहीं बड़ा उस्ताद मानता हूं, अपने *कामेडी ह्यूमेन* में हमें फ्रान्सीसी समाज का एक अत्यंत अद्भुत यथार्थवादी इतिहास दिया है, जिसमें सिलसिलेवार तरीके से, १८१६ से १८४८ तक लगभग साल-दर-साल सामंतों के उस समाज पर उदयीमान बुर्जुआ वर्ग के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए दखल का वर्णन है, जिसने सन १८१५ के बाद अपने आपको पुनर्संगठित कर लिया था तथा जहां तक सम्भव हो सका, पुरानी फ्रान्सीसी कुलीनता और नफासत के मापदण्ड[2] को पुनर्स्थापित किया था। वह वर्णन करते हैं कि किस प्रकार इस समाज—जिसे वह आदर्श मानता था—के अन्तिम अवशेष शनैः-शनैः अभद्र, मालदार बुर्जुआ की दखलन्दाजी के सामने ध्वस्त हो गए या उसने उन्हें भ्रष्ट कर दिया। किस तरह कुलीन स्त्री, जिसकी वैवाहिक जीवन से बेवफाइयां केवल अपनी महत्ता को जाहिर करने के ढंग थे (विवाह के द्वारा जिस प्रकार उसमे पिंड छुड़ाया जाता था, यह उसके सर्वथा अनुकूल था), का स्थान अब बुर्जुआ स्त्री लेती है, जो या तो नकदी के लिए, या ग्राहकों के लिए ही पति ग्रहण करती है; और इस केन्द्रीय चित्र के चारों ओर वह फ्रान्सीसी समाज का पूरा इतिहास गूंथ देते हैं, जिससे, आर्थिक विवरण तक की दृष्टि से—मिसाल के लिए जैसे क्रान्ति के बाद वास्तविक तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति की पुनर्व्यवस्था—मैंने जितनी अधिक जानकारी प्राप्त की है, उतनी अधिक जानकारी उस काल के तमाम पेशेवर इतिहास लेखकों, अर्थशास्त्रियों तथा अंकशास्त्रियों को एक जगह जमा करने से भी नहीं मिलती। बालज़ाक, राजनीतिक दृष्टि से,

उत्तराधिकारवादी थे; और उनकी महान कृति भद्र समाज के लाइलाज ह्रास पर एक अनवरत मर्सिया है; उनकी सहानुभूति उस वर्ग के साथ है जिसके भाग्य में विनाश के सिवा और कुछ नहीं बदा है। किन्तु इस सब के बावजूद उनकी फब्तियां, उनका व्यंग्य, कभी उतना तेज और उतनी काट करने वाला नहीं होता जितना कि उस समय जब वह ठीक उन पुरुषों तथा स्त्रियों को हरकत में लाते हैं जिनके साथ उनकी अत्यंत गहरी सहानुभूति है,—अर्थात कुलीनों को। और उनके मुंह से मुक्त प्रशंसा के शब्द निकलते हैं केवल उन लोगों के लिए जो कि उनके कटुतम राजनीतिक दुश्मन हैं—क्लोइत्रे संत मैरी[1] के रिपब्लिकन वीर, वे लोग जो उन दिनों (१८३०-३६) निस्सन्देह आम जनता के प्रतिनिधि थे। यह बात कि बालजाक को इस प्रकार खुद अपनी वर्ग-सहानुभूतियों तथा राजनीतिक पूर्वग्रहों के विरुद्ध जाने के लिए बाध्य होना पड़ा, यह कि उन्होंने अपने प्रिय कुलीनों के पतन की अनिवार्यता को देखा और ऐसे लोगों के रूप में उनका वर्णन किया जो इससे बेहतर अन्त के योग्य न थे; और यह कि उन्होंने भविष्य के असली लोगों को ठीक वहीं देखा जहां कि उस समय वे मिल सकते थे—मेरी समझ में यही यथार्थवाद की महानतम विजय और वृद्ध बालजाक की सबसे बड़ी विशेषता है।"[2]

कामेडी ह्यूमेन की भूमिका में खुद बालजाक ने बताया है कि वह मानव को समाज की देन के रूप में देखते थे, उसे उसके प्राकृतिक वातावरण के बीच देखते थे, और यह कि वैज्ञानिक ढंग से उसका अध्ययन करने की वैसी ही आकांक्षा वह भी अनुभव करते थे जैसी कि पशु-जगत का अध्ययन करने वाले महान प्राकृतिक विज्ञान शास्त्री अनुभव करते हैं। उनके राजनीतिक और धार्मिक विचार वही थे जो कि पुराने सामन्ती फ्रान्स के थे, किन्तु मानव के प्रति उनका यह रवैया, मानवीय-जीवन के सुखान्त नाटक की उनकी धारणा, क्रान्ति की, उन जैकोबिनों की, जिन्होंने फ्रान्सीसी समाज की सामाजिक बेड़ियों को पूरी निर्ममता से चकनाचूर कर दिया था, अभियान करते उन सैनिकों की देन थी जिन्होंने यूरोप की बादशाहतों को नैपोलियन के नेतृत्व के आगे घुटने टेकने के लिए बाध्य कर दिया था। बालजाक, इसमें कोई संदेह नहीं, फ्रान्स के साहित्यिक

नैपोलियन थे। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में सामन्ती विचारों को उतनी ही पूर्णता के साथ नष्ट किया, जितनी पूर्णता के साथ राजनीतिक क्षेत्र में उस महान सैनिक ने सामन्ती व्यवस्था को नष्ट किया था। पुनर्स्थापित काल के फ्रान्स में पूंजीवादी समाज की, नये पूंजीवादी सामाजिक सम्बंधों की आलोचना रोमाण्टिसिज्म के मध्यकालीन चोले में प्रकट होती थी। अपने व्यक्तिगत जीवन में, और इसी प्रकार कला के क्षेत्र में भी, रोमाण्टिकों की स्वच्छन्दताएं वर्तमान के विरुद्ध उनके विद्रोह को तथा वर्तमान से उनके पलायन को व्यक्त करती थीं। बालज़ाक ने न तो विद्रोह किया, न पलायन। रोमाण्टिकों की सारी कल्पना-प्रवीणता, उनकी कविता और यहां तक कि उनकी रहस्यवादिता बालज़ाक में मौजूद थी, किन्तु वह उनसे ऊपर उठे और वर्तमान पर अपने यथार्थवादी आक्रमण द्वारा एक नये साहित्य का उन्होंने रास्ता दिखाया। समसामयिक जीवन की वास्तविकता को कल्पनात्मक ढंग से धारण करने में वह करीब-करीब उसी पैमाने पर समर्थ हुए, जिस पर कि रैबिले और सर्वेण्टीज ने किया था। किन्तु, यह बालज़ाक का सौभाग्य था कि उन्होंने शताब्दी के शुरू के भाग में जीवन बिताया, जबकि राष्ट्रीय शक्ति के उस भीमाकार उभार —जिसने क्रान्ति और नैपोलियनी महाकाव्य की सृष्टि की—की ताकत और तपिश का असर चौथे और पांचवें दशक के प्रारम्भ के साहित्यिक आन्दोलन में अभी मौजूद था।

बालज़ाक और फ्लौबर्ट के बीच एक दीर्घ अन्तर है। बुर्जुआ वर्ग से घृणा और हिकारत ही फ्लौबर्ट के हृदय की सर्वोपरि भावना थी। वह अपने पत्रों पर 'बुर्जुआ फोबस'[1] के नाम से हस्ताक्षर करते थे और अपने रचनात्मक कार्य के सुदीर्घ वर्षों में, जो कि उन्होंने इस घृणित वर्ग के जीवन से सम्बंधित एक अकेला उपन्यास लिखने पर खर्च किए, उन्हें भारी शारीरिक तथा मानसिक वेदना सहनी पड़ी। बालज़ाक को अपने राजनीतिक विचारों पर, अपनी नृपतंत्रवादिता और कैथोलिकता पर, सचेत रूप से गर्व था। गौन्कोर्ट बन्धुओं ने अपनी *डायरी* में लिखा था कि सभी काट-छांट के राजनीतिज्ञों की नेक-नीयती में उनकी आस्था के खण्डित हो जाने के फलस्वरूप, अन्त में, वे "हर प्रकार की निष्ठा से

घृणा करने को तैयार हो गये, राजनीतिक लगाव के प्रति एक उपेक्षा का भाव, जो कि मुझे अपने सभी साहित्यिक मित्रों में दिखाई देता है, फ्लोबर्ट में भी और मुझ में भी। सो आप समझ सकते हैं कि किसी भी ध्येय के लिए प्राणाहुति देना व्यर्थ है, कि जो भी सरकार कायम हो उसी को कबूल करना चाहिए, चाहे वह कितनी ही अप्रिय क्यों न हो, कि कला के सिवा अन्य किसी चीज में विश्वास नहीं करना चाहिए, साहित्य के सिवा अन्य किसी धर्म को न मानना चाहिए।"

तब से अब तक न जाने कितने ऐसे लेखक, जो गौन्कोर्ट-द्वय से कहीं कम प्रतिभावान हैं तथा फ्लौबर्ट के साथ एक ही साँस में जिनके नाम का उल्लेख तक नहीं किया जा सकता, इसी तरह के दृष्टिकोण मे आस्था प्रकट कर चुके हैं (और अब भी करते हैं)। ऐसी स्थिति में यह अनुपयुक्त न होगा कि इस ऊपरी विश्वासहीनता और जीवन से अलगाव के स्रोत की खोज-बीन की जाये। "ऊपरी" मैं इसलिए कहता हूं कि कम-से-कम फ्लौबर्ट (जो कि एक महान लेखक थे) के मामले में अलगाव का कोई प्रश्न न था, बल्कि वह तो उस बुर्जुआ समाज के विरुद्ध, जिससे वह गहरी घृणा करते थे, मृत्युपर्यन्त एक तीखे संघर्ष में रत थे।

गौन्कोर्ट बन्धु बालजाक को निजी रूप से जानते थे, उनकी डायरियां उस प्राणवान और रैबिलेतुल्य प्रतिभा के बारे में दिलचस्प कहानियों से भरी पड़ी हैं। फ्लौबर्ट भी, उनकी भांति, बालजाक के प्रभाव से बचे न रहे। गुरू और शिष्यों के बीच यह भारी अन्तर कैसे उत्पन्न हुआ, एक ऐसा अन्तर, जो समय का नहीं, बल्कि दृष्टिकोण का है और एक खाई की तरह उन्हें पृथक कर देता है? फ्लौबर्ट की पीढ़ी के शुरू होने तक क्रान्ति से पैदा हुई शक्ति तथा उसकी वीरत्वपूर्ण परिणति का कुछ भी शेष नहीं रहा था। वर्गों का कटु संघर्ष और पूंजीवादी समाज का लुटेरा चरित्र इतना उजागर हो गया था कि वे केवल हिकारत को जन्म देते थे; इसके प्रतिकूल बालजाक, जो इस समाज का निर्माण करने वाली रचनात्मक शक्ति से अभी अनुप्राणित थे, केवल अपनी जिज्ञासा शांत करना चाहते थे।

१८६३ के जनतान्त्रिक तथा जैकोबिन आदर्श उन्नीसवीं शताब्दी के उदारपंथी राजनीतिज्ञों के मुंह में असह्य और भयानक शब्दजाल बनकर रह जाते थे। *सबको एक ही तराजू से तौलनेवाले* पूंजीवाद का असली चरित्र, मानवीय मूल्यों से उसका इन्कार, आंकड़ों का उसका दर्शन—जो हर मानवीय तथा दैवी वस्तु का मूल्य रुपये-पैसों में आंकता है—प्रकट होता जा रहा था। पुराना अभिजात्य वर्ग, जिसके भ्रष्टाचार का बालजाक ने इतनी दक्षता से चित्र खींचा था, अपने पूर्व रूप की एक सड़ी-गली छायामात्र रह गया था, एक वीभत्स प्रेत की भांति जो देहाती हवेलियों की विस्मृत बैठकों में बड़बड़ाता और फुसफुसाता रहता है, या फिर वह नकद-नारायण के नये कुलीनों के रंग में रंग गया था। समाजवाद, जिसके केवल काल्पनिक रूप से ही फ्लौबर्ट और उसके मित्रों का परिचय था, उन्हें उतना ही मूर्खतापूर्ण तथा अवास्तविक प्रतीत होता था जितना कि उदारपंथी राजनीतिज्ञों की उच्छृंखलताएं, जो अपनी कथनी और करनी से हर घड़ी अपने महान पूर्वजों के साथ विश्वासघात कर रहे थे (इसके प्रचुर प्रमाण हैं कि फ्लौबर्ट उन्हें महान पूर्वज समझते थे। एक पत्र में उन्होंने लिखा है कि "मरात मेरा प्रिय" है)। समाजवाद में भी वे सभी मूल्यों के सामान्य रूप से उसी समरूपीकरण का एक दूसरा रूप देखते थे, जिससे कि उन्हें इतनी घृणा थी, और जो इसलिए और भी अधिक घृणित था कि वह (उन्हें ऐसा लगता) अशिक्षित जन-समूह को भावुकतावश देवता की भांति पूजता था।

१८४८ के काल में अनेक भ्रमों का अन्त हो गया। उस कटु अनुभव के बाद भला कौन ऐसा था जो कि कभी यह विश्वास करता कि सुन्दर शब्दों से पेट भरा जा सकता है? जून के वे दिन, जिनमें पेरिस के मजदूरों ने वाक्यजाल बुनने वालों के शब्दों पर भरोसा किया और स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व के लिए हथियार लेकर लड़े, होनहार की सूचना देते थे। फ्लौबर्ट एक उपन्यासकार थे, न कि मानवता के सामाजिक इतिहास और अर्थतन्त्र के विद्यार्थी, और जून के दिनों ने उनके लिए केवल इतना ही सिद्ध किया कि कोरे नारों के खेलवाड़ ने ऐसी काली शक्तियों को उभार दिया है जो सभ्य समाज के अस्तित्व को

खतरे में डालती है। लुई नपोलियन की जो तानाशाही बाद में स्थापित हुई, वह ठीक धूर्तों की ही तानाशाही थी, बुर्जुआ वर्ग का, तथा उस सब कुछ का चरम रूप थी, जिसकी कि विगत वर्षों की उच्छृंखलताओं से आशा की जा सकती थी। इस प्रकार *एजुकेशन सेन्टीमेण्टल* उदारपंथी बुर्जुआ वर्ग के सारे सुन्दर भ्रमों के अन्त का एक कटु और निर्मम व्यंग्य में पूर्ण चित्र है। लाल ँडे ने और जून १८४८ की गोलीबारी ने इन भ्रमों को सदा के लिए चूर-चूर कर दिया था। उसके बाद सामने आया साम्राज्य का भोंडा रूप। लगता था कि अब कुछ भी पहले जैसा नहीं रहेगा, सामाजिक ह्रास और सभ्यता के विनाश की सुदीर्घ प्रक्रिया को नतमस्तक होकर स्वीकार करने के अतिरिक्त अब और कोई चारा नहीं है, यह मूर्ख, कंजूस बुर्जुआ वर्ग अपने युद्धों, अपनी संकीर्ण राष्ट्रीयता और पाशविक लिप्सा से सभी कुछ नष्ट कर डालेगा।

कुछ लोग ऐसा समझ सकते हैं कि फ्लौबर्ट के इस सिद्धान्त में कि कलाकार को देवता के समान तटस्थ होना चाहिए और बालज़ाक के सामाजिक मानव के प्रकृत इतिहास सम्बंधी सिद्धान्त में कोई भारी अन्तर नहीं है। किन्तु सत्य यह है कि इनमें जमीन-आसमान का अन्तर है। बालज़ाक के वैज्ञानिक विचार सम्भवतः अनगढ़ और गलत थे, किन्तु उनका जीवन को देखने का दृष्टिकोण सच्चे अर्थ में यथार्थवादी था। वह मानव समाज को उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में, एक ऐसी वस्तु के रूप में देखते थे, जो संघर्ष करती है और संघर्ष के दौरान में विकसित होती है। फ्लौबर्ट में जीवन जैसे जाम और स्थिर हो गया है। १८४८ के बाद जीवन को उसके विकास-क्रम में देखना और चित्रित करना सम्भव न रहा, कारण कि वह विकास-क्रम अत्यन्त पीड़ामय था, विरोधाभास अत्यन्त उभर आये थे। सो, जीवन उनके लिए एक जमी हुई झील बन गया। अपनी प्रेमिका को उन्होंने लिखा : "मुझे जो सुन्दर मालूम होता है, मैं जो करना चाहता हूं, वह है एक ऐसी पुस्तक लिखना जो किसी चीज के बारे में न हो, बाह्य जगत से जिसका कोई लगाव न हो, अपनी शैली के आन्तरिक बल पर जो टिक सके, जैसे विश्व बिना किसी बाह्य सहायता के हवा में लटका है, एक ऐसी किताब जिसका

लगभग कोई विषय न हो, या जिसका विषय लगभग अदृश हो—यदि यह सम्भव हो सके। सबसे सुन्दर पुस्तकें वे ही हैं जिनमें सबसे कम सामग्री होती है। अभिव्यक्ति जितनी ही अधिक विचार के निकट पहुंचती है, शब्द जितना ही अधिक उसे पकड़ना चाहता है और फिर विलीन हो जाता है, उतना ही अधिक वह सुन्दर होती है।"

इस दृष्टिकोण को अपनाने-भर की देर थी कि उस नये 'यथार्थवाद' का रास्ता खुल गया जिसमें जीवन की एक फांक को लेकर उसका बारीकी और तटस्थता के साथ वर्णन किया गया। किन्तु, कहने की आवश्यकता नहीं, जीवन कुछ इतनी बेकाबू वस्तु सिद्ध हुई कि कलापूर्ण ढंग से उसकी फांक नहीं तराशी जा सकती थी। सो, उपन्यासकार अपने फांक के चुनाव में मीनमेख करने लगा, और जीवन की काया से ऐसी परिष्कृत फांकें तराशने की मांग करने लगा कि अन्त में किसी उपनगर की गली या मेफेयर[1] में पार्टी से कुछ अधिक दिलचस्प बात का वर्णन न कर सका। अन्य लेखकों ने, उनकी दृष्टि को संकुचित और संकीर्ण बनाने वाले इस सिद्धान्त के खिलाफ विद्रोह करते हुए, अपनी निजी चेतना की धारा का काव्यमय चित्र प्रस्तुत करने के लिए फ्रायड और दोस्तोव्स्की से प्रेरणा ली। इस प्रकार, अन्त में, उपन्यास दो ऐसी प्रवृत्तियों में बंट कर विलीन हो गया, जिनका विरोध हमारे लिए मध्य-कालीन पंडितों के शास्त्रार्थों से अधिक महत्व नहीं रखता।

किन्तु फ्लौबर्ट, यह सब कुछ होते हुए भी, एक ईमानदार आदमी और महान कलाकार थे। उनके उत्तराधिकारियों ने जहां अपने युग की वास्तविकता पर काबू पाने के कार्य से बचकर उसकी जगह जीवन की फांक या अपनी निजी चेतना की धारा में ही संतोष कर लिया, वहां वह इतनी आसानी से हथियार डालने को तैयार न हुए। फ्लौबर्ट के पत्र एक ऐसे जीवन और एक ऐसी वास्तविकता के साथ उनके अत्यंत भयानक संघर्ष की आत्मस्वीकृति हैं, जो उनके लिए दुस्सह हो उठे थे। फ्लौबर्ट जैसी घृणा के साथ बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध अन्य किसी का प्रकोप न फूटा होगा। "मानवता मेरे उगालदान में डूब जाएगी," उन्होंने लिखा है, और यहां उनका मतलब समूची मानवता से नहीं, बल्कि उन्नीसवीं

शताब्दी के युरोप के पूंजीवादी समाज से है, जैसा कि वह १८७१ के पेरिस कम्यून के तुरंत बाद था।

एक के बाद दूसरे पत्र में वह आत्माभिव्यक्ति के लिए अपने संघर्ष का वर्णन करते हैं। *मदाम बोवेरी* में कहवाखाने के दृश्य को लिखने में उन्हें दो महीने लगे जब कि उपन्यास में दृश्य की अवधि केवल तीन घंटे है। वह बार-बार इस बात को दोहराते हैं कि गए महीने में उन्होंने बीसेक पन्ने ही लिखे। इनका कारण क्या केवल इतना ही है कि मजे-तुले वाक्यों से, उपयुक्त शब्दों से, उन्हें लगाव था? क्या कलाकार की आत्मा को *पूर्ण रूप से परिष्कृत* शैली के बिना संतोष न होता था? नहीं, ऐसा नहीं। वह स्वयं कहते हैं कि वे कृतियां जिनकी शैली और रूप-विधान पर ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान दिया गया है, अधिकांशतः द्वितीय श्रेणी की हैं, और एक स्थल पर तो वह दो टूक घोषणा करते हैं कि ऐसा कोई निश्चित मापदण्ड नहीं है जिससे यह परखा जा सके कि शैली पूर्ण रूप से परिष्कृत है या नहीं। विश्व के महान लेखकों का जब वह जिक्र करते हैं तो ईर्ष्या के साथ: "उन्हें शैली के लिए कमर दोहरी करने की जरूरत नहीं थी, तमाम त्रुटियों के बावजूद और अपनी इन त्रुटियों के कारण वे सशक्त और सबल हैं, किन्तु हम जो छुटभैये हैं, हमारी केवल रचना-कौशल के कारण पूछ होती है ... मैं तो यहां एक ऐसी बात कहना चाहूंगा जिसे अन्य कहीं कहने का साहस नहीं कर सकता। वह यह कि जो सचमुच बहुत बड़े हैं, वे बहुधा बहुत बेढंगे ढंग से लिखते हैं, और यह उनके लिए अच्छा ही है। रूप-विधान की कला की खोज हमें उनमें नहीं, बल्कि होरेस तथा ब्रूयेर[7] जैसे द्वितीय श्रेणी के लेखकों में करनी चाहिए।"

फिर भी फ्लौबर्ट, अपने देहात के घर में बन्द, ऐसे लोगों के बीच जिनसे कि वह घृणा करते थे, शारीरिक और मानसिक वेदना में यदि तड़पते रहे तो उसका कारण यह नहीं था कि वह रूप-विधान में पूर्ण परिष्कार प्राप्त करने में रत एक द्वितीय श्रेणी के कलाकार थे। नहीं, वह एक महान और ईमानदार कलाकार थे और एक ऐसे संसार और जीवन को अभिव्यक्ति देने में जुटे हुए थे जिससे उन्हें घृणा थी। उनका कला सम्बंधी समूचा

सिद्धान्त उस समझौते का फल था जो कि उन्हें अपने संघर्ष के दौरान मे मजबूर होकर करना पड़ा था। अपने एक पत्र में वह कहते हैं: "कला और कलाकार को एक समझने की भूल कदापि नही करनी चाहिए। यदि वह लाल, हरा या पीला रंग पसद नही करता तो सबसे अधिक अपना ही नुकसान करता है, कारण कि सभी रग सुन्दर होते हैं, और उसका काम उनका चित्रण करना है... पत्तियों को उनके अपने रूप में देखो; प्रकृति को समझने के लिए प्रकृति की भाति शान्त रहना आवश्यक है।" या फिर उनके उस सुप्रसिद्ध पत्र को लीजिए जिसमें वह अपने विश्वास का सारतत्व प्रकट करते है: "लेखक को अपनी कृति में उसी भाति रहना चाहिए जैसे कि भगवान ब्रह्माण्ड में रहते हैं, सर्वत्र वर्तमान किन्तु कही भी दृष्टिगोचर नहीं; कला चूंकि एक दूसरी प्रकृति है, इसलिए इस प्रकृति के सृष्टा को भी वैसे ही तरीकों से काम लेना चाहिए; हर अणु में उसके हर पहलू मे, एक गुप्त और अनन्त अस्तित्व का बोध होना चाहिए।"

फ्लौबर्ट स्वयं अपनी मान्यताओं की कसौटी पर खरा उतरने में सर्वथा असमर्थ रहे। ऐसा भगवान न प्रेम का अनुभव करता है न घृणा का। किन्तु फ्लौबर्ट का समूचा जीवन घृणा से—अपने युग के विरुद्ध पवित्र घृणा से—अनुप्राणित था। यह घृणा, उस समाज द्वारा पतित, सताए और छले गए मानव के प्रति प्रेम का एक अन्तर्मुखी रूप थी, जो सम्पत्ति को ही मानवीय मूल्यों की एकमात्र कसौटी मानता था। इस समाज के बारे में अपना दृष्टिकोण आखिर उन्होंने अपने उपन्यास *बोवार और पेक्युचेत*[1] मे व्यक्त किया। यह उपन्यास उनकी एक योजना की उपज था जो कि उन्होंने *मान्य आदर्शों का कोष*[2] रचने के लिए बनाई थी। इस कोष में "वर्णमाला के क्रम से हर सम्भव विषय पर वे तमाम बाते दी जाने वाली थी जो समाज में एक सभ्य और अच्छा व्यक्ति कहलाने के लिए आवश्यक होती हैं।"

डिकेन्स की भाति फ्लौबर्ट भी एक महान लेखक थे। दोनो के सामने एक ऐसे समाज का सच्चा चित्र प्रस्तुत करने की समस्या थी जिसकी आधारभूत मान्यताएं ही मानवतावाद के उन मानदण्डो को

तेजी से ठुकरा रही थीं जिन्हें कभी हमारी सामूहिक विरासत समझा जाता था। डिकेन्स ने अपनी इस समस्या को भावुकतापूर्ण रोमाण्टिसिज्म रूपी समझौते द्वारा हल किया। इंग्लैंड की परिस्थितियों ने ऐसा करना उनके लिए अनिवार्य बना दिया था। फ्लौबर्ट, जो कि जून १८४८ के, तृतीय साम्राज्य के फ्रान्स के, प्रसया युद्ध और कम्यून के फ्रान्स के निवासी थे, दूसरा रास्ता अपनाने पर बाध्य हुए। न केवल उनके अपने स्वभाव ने, उनकी अडिग ईमानदारी ने भावुकता के पथ को निषिद्ध बनाया (किसी कम प्रतिभावान व्यक्ति के लिए यह कितना आसान हो सकता था, यह बाद में दौदे के दृष्टान्त मे स्पष्ट हुआ), बल्कि फ्रान्स के जीवन की कही अधिक कठोर वास्तविकता ने उनके लिए इस पथ को अपनाना एकदम असम्भव बना दिया था। वह संघर्ष से अलग रहे, अत्यंत कष्ट सहते हुए अपने लिए एक अवास्तविक तटस्थता की उन्होंने रचना की और विशुद्ध रूपवादी रवैया अपनाकर जीवन के कुछ पहलुओं को अलग करने की चेष्टा की। बेचारे फ्लौबर्ट, जिन्हें जीवन का चित्र खींचने के प्रयास में अपने समय के किसी भी लेखक से ज्यादा भयानक कष्ट उठाने पड़े, जो अपने युग की असली नब्ज को अन्य सब लोगो से अधिक पहचानते थे, फिर भी उसे अभिव्यक्ति नही दे पाये थे, गहरे अनुराग और घनीभूत घृणा से जिनका रोम-रोम पगा था, ऐसे व्यक्ति के भाग्य में यह दुखद अन्त बदा था कि वह एक बेरंग चीज, बड़े लोगो के लिए "विशुद्ध कलाकार" का एक नमूना बन कर रह जाएं। "विशुद्ध कलाकार" को हमें "विशुद्ध स्त्री" से अधिक क्यों पसंद करना चाहिए, यह इस युग का एक रहस्य है। क्या निरा कलाकार, और निरी स्त्री, ही काफी नही है? दोनों ही दिलचस्प हैं और दोनों दुख सहते हैं, किन्तु सुन्दर कहलाने के लिए नहीं।

फ्लौबर्ट के समसामयिकों में एक अन्य कलाकार थे जो सृजन की वैसी ही वेदना में से गुजरा थे, जो हफ्तों तक अपने को इसलिए यन्त्रणा देते रहते थे कि जिस वास्तविकता पर वह हावी होने तथा अपने दिमाग में नयी शक्ल में जिसे ढालने का निश्चय कर चुके थे, उसे व्यक्त करने के लिए ठीक-ठीक शब्द पा सकें। यह कलाकार लिखते और बार-

बार लिखते थे, गढ़ते और बारबार गढ़ते थे, और कहीं अधिक गहराई के साथ प्रेम तथा घृणा करते थे। अन्त में अपनी प्रतिभा के बल पर उन्होंने विश्व को शक्तिशाली कृतियां भेंट कीं। उनका नाम था कार्ल मार्क्स। उन्होंने सफलतापूर्वक उस समस्या को—उन्नीसवीं शताब्दी की दुनिया को तथा पूंजीवादी समाज के ऐतिहासिक विकास को पूर्णतया समझने की समस्या को—हल किया, जिसने उनके समसामयिकों में से प्रत्येक के घुटने तोड़ दिए थे।

"रूप से विचार जन्म लेता है," फ्लौबर्ट ने गौतिए को बताया था, जो इन शब्दों को "वस्तुगत" यथार्थवाद की इस धारा का "सर्वोपरि मन्त्र" मानते थे और इन्हें दीवारों पर अंकित करने योग्य समझते थे। मार्क्स का दृष्टिकोण इससे भिन्न था—यह कि विषय रूप को निर्धारित करता है, किन्तु इन दोनों के बीच एक आपसी अन्तर-सम्बंध, एक ऐक्य, एक अटूट नाता है। फ्लौबर्ट का आदर्श था कि वह एक ऐसी पुस्तक लिखे जो "किसी भी चीज के बारे में न हो", जो एक विशुद्ध रूपवादी कृति हो, जिसमें तर्कसंगत वस्तु तात्विक और ऐतिहासिक वस्तु से विच्छिन्न हो। इसका चरम रूप एड्मण्ड गौन्कोर्ट, ह्य इस्मैंन्स[1] तथा अन्य की कृतियों में प्रकट हुआ,—एक ऐसा रूप जो निरा आत्मगत था, जिसमें वस्तु एक निष्क्रिय सामग्री के रूप में उपन्यासकार के सामने आती है, जो स्वयं, निरा फोटोग्राफर बन कर रह गया।

लफार्ग ने, जो कि मार्क्स के दामाद और फ्रान्सीसी यथार्थवादियों के गहरे आलोचक थे इन दो पद्धतियों की तुलना करते हुए लिखा है: "मार्क्स केवल सतह को ही नहीं देखते थे, बल्कि सतह को बेध कर गहराई में जाते थे और सम्बद्ध अंशों के बीच आदान-प्रदान तथा पारस्परिक आन्तरिक क्रिया-प्रक्रिया का निरीक्षण करते थे। वह इन अंशों में से प्रत्येक को अलग करते और उसके विकास के इतिहास की जांच करते। इसके बाद वह वस्तु तथा उसके वातावरण को लेते और बारी-बारी से एक की दूसरे पर प्रक्रिया का निरीक्षण करते। फिर लौट कर वह वस्तु के जन्म, इसमें हुए परिवर्तनों, विकासों तथा क्रान्तियों पर दृष्टि डालते हुए उसकी सूक्ष्मतम गतिविधियों का निरीक्षण करते।

वह वस्तु को ऐसे रूप में नहीं देखते थे जो अपने में अलग, अपने आप में पूर्ण, और अपने वातावरण से बिलकुल असम्बद्ध हो, बल्कि एक सम्पूर्ण, जटिल और चिर-गतिशील संसार को देखते थे। और मार्क्स इस संसार के जीवन को उसकी विभिन्न तथा निरन्तर परिवर्तनशील क्रिया-प्रक्रियाओं में पेश करने की कोशिश करते थे। फ्लौबर्ट तथा गौन्कोर्ट पंथी लेखक उन कठिनाइयों का रोना रोते हैं, जो कि कलाकार के सामने उस समय उठ खड़ी होती हैं जब कि वह अपने गोचर जगत का चित्रण करने का प्रयत्न करता है। किन्तु वे केवल सतह का, केवल उस छाप का चित्रण करने का प्रयत्न करते हैं, जो कि उनके मस्तिष्क पर पड़ती है। उनका साहित्य कार्ल मार्क्स के कृतित्व की तुलना में बच्चों का खेल है। वास्तविकता के घटनाक्रम को इतनी गहराई से समझने के लिए असाधारण मानसिक शक्ति की आवश्यकता थी, और मार्क्स ने जो कुछ देखा था तथा जो कुछ वह कहना चाहते थे, उसे व्यक्त करने के लिए भी इतनी ही कलात्मक क्षमता की जरूरत थी।"[1]

लफार्ग ने मार्क्स की रचनात्मक पद्धति को ठीक ही आंका है और फ्लौबर्ट की पद्धति की कमियों पर भी उन्होंने ठीक ही प्रकाश डाला है, हालांकि वह यह नहीं समझे कि खुद फ्लौबर्ट भी अपने अन्तर्तम में इन कमियों को अनुभव करते थे। न ही लफार्ग उन शक्तियों को समझ सके हैं जिन्होंने फ्लौबर्ट तथा गौन्कोर्ट बन्धुओं को कला-सम्बंधी अपनी पद्धति को अपनाने पर मजबूर किया। उनकी डायरी से इस आखीरी बात पर कुछ दिलचस्प रौशनी पड़ती है। १८५५ में एड्मण्ड गौन्कोर्ट ने लिखा है: "हर चार या पांच सौ साल के बाद दुनिया में नया प्राण फूकने के लिए बर्बरता आवश्यक होती है। ऐसा न हो तो सभ्यता दुनिया को मार डाले। पहले जमाने में जब भी युरोप के किसी सुन्दर देश की पुरानी आबादी रक्तहीनता का पर्याप्त रूप से शिकार हो जाती थी, तो उसकी पीठ पर ऊपर की ओर से छः फुट लम्बे लोगों का दल टूट पड़ता था और जाति का पुनर्निर्माण कर देता था। अब युरोप में बर्बर लोग नहीं रहे और इस काम को मजदूर पूरा करेंगे। इसे हम सामाजिक क्रान्ति के नाम से पुकारेंगे।"

पेरिस कम्यून के दिनों में उन्हें यह भविष्यवाणी फिर याद हो आई। उन्होंने लिखा : जो कुछ हो रहा है वह यह है कि मजदूर वर्गीय आबादी फ्रान्स पर पूर्ण विजय प्राप्त कर रही है, और अपनी तानाशाही के नीचे कुलीनों, पूंजीपतियों तथा किसानों को दासता की बेड़िया पहना रही है। सरकार सम्पत्तिशाली वर्गों के हाथों से निकल कर सम्पत्तिविहीनो के हाथों में जा रही है, समाज को कायम रखने में जिनके माली हित है, उनके हाथों से निकल कर ऐसे लोगों के हाथों में जा रही है जिनका व्यवस्था, स्थायित्व और परम्परागत विचारों की सुरक्षा में कोई हित नही है। आखिर को, जैसा कि मैंने कुछ वर्ष पहले कहा था, इस भू-लोक में परिवर्तन के महान विधान में शायद मजदूर वही स्थान ग्रहण करते है जो कि प्राचीन समाज में बर्बरों का होता था, उन्ही की तरह वे भी विनाश और विघटन के प्रलयंकर दूतो का काम करते हैं।"

फ्लौबर्ट और गौन्कोर्ट बन्धुओं ने मजदूर वर्ग को केवल विशुद्ध विनाश के दूतों के रूप में देखा। बुर्जुआ समाज के बारे मे उनके मन में कोई भ्रम नही थे, वे उसकी लिप्सा, उसकी संकीर्ण राष्ट्रीयता, उसकी अनैतिकता, सभी को समरूप बनाने की उसकी आम प्रवृत्ति, और उसके द्वारा मानव के पतन मे घृणा तो करते थे, किन्तु इस समाज के स्थान पर एक नये समाज की वे कल्पना नहीं कर पाये, और यही उनके कृतित्व की बुनियादी कमजोरी थी। फ्लौबर्ट के बाद आलोचनात्मक यथार्थवाद आगे नही बढ सका, कारण कि उनके भीमाकार प्रयासो ने जैसे उसे निःसत्व कर दिया था। उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक हो गया था कि या तो वह समाज को फिर उसके गतिशील रूप में देखना शुरू करे, जैसा कि बाल्जाक ने किया था, या फिर अपने ही घोंघे में शरण ले, पूर्णतया आत्मगत बन जाए, समय और स्थान से इन्कार करे, और महाकाव्य के समूचे ढाचे को छिन्न-भिन्न कर डाले। इसके अलावा एक कठिनाई और थी, ऐसी कठिनाई जो सौ साल से भी अधिक समय से पनपती आ रही थी और अब अपनी उग्रतम अवस्था में पहुंच चुकी थी। यह कठिनाई जीवन के बारे में एक सुसम्बद्ध दृष्टिकोण की, मानव-चरित्र का चित्रण करने की क्षमता के पूर्ण अभाव की, कठिनाई थी।

रेनैसां काल के महान   ों न इस कठिनाई को अनुभव नहीं किया था। उनके लिए मानवतावाद ने उनके विचारों को निर्देशित करने तथा उनकी कृतियों को अनुप्राणित करने का काम किया था। रेनैसां ने अपने महान दार्शनिकों—स्पिनोजा, देकार्त, बेकन—को जन्म दिया, हालांकि उनका उदय इस काल के प्रारम्भ में न होकर अन्त में हुआ था। यह सच है कि देकार्त और स्पिनोजा के द्वन्द्व में यहां भी मानवीय चिन्तन में मुख्य विभाजन का आभास मिल जाता है, किन्तु सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में इसने अभी इतना उग्र रूप नहीं धारण किया था कि समूची दार्शनिक एकता को नष्ट कर डालता। अंग्रेजी और फ्रान्सीसी यथार्थवादी उपन्यासकार, कुल मिलाकर, जीवन के बारे में एक-सा ही दृष्टिकोण रखते थे। फलतः उनकी कृतियां अधिक पूर्ण और सशक्त बन पाई हैं। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में—उस काल में जब कि पूंजीवादी समाज-व्यवस्था के सारे अन्तर्विरोध साफ दिखाई देने लगे, जब युद्धों तथा क्रान्तियों ने युरोप में अन्तिम सामन्ती गढ़ों को नष्ट कर दिया और आधुनिक राष्ट्रों का निर्माण हुआ—कोई दार्शनिक एकता बाकी नहीं रहती। काण्ट और हीगेल भाववादी दर्शन को इतना विकसित कर लेते हैं कि वह, कुछ काल के लिए यथार्थवादी भौतिकवादी दर्शनो पर छा जाता है। यह शताब्दी एक ऐसी शताब्दी है जिसमें मानव-जीवन के बारे में कोई सम्बद्ध दृष्टिकोण नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप लेखक के लिए एक लघु, विशिष्ट रीति से, जीवन के अथवा व्यक्तिगत चेतना के किसी अंश को अलग करके लिखने के अलावा अन्य किसी तरीके से काम करना अधिकाधिक कठिन होता जाता है। फ्लौबर्ट के पत्र इसी भावना से भरे हुए हैं, और दार्शनिकों पर काबू पाने के अपने व्यर्थ प्रयत्नों का—काण्ट, हीगेल, देकार्त, ह्यूम तथा अन्य के ग्रंथों की अपनी छान-बीन का—वर्णन करते हैं। स्पिनोजा के दर्शन को ही फिर से अपनाने की इच्छा वे निरन्तर महसूस करते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कि गौन्कोर्ट बन्धु दिदेरो के द्वन्द्ववादी चिन्तन को अपनाना चाहते थे। किन्तु अन्त में, अपने समय के संसार में दार्शनिक आधार की खोज को असम्भव समझ कर उन्होंने अपनी चेष्टाओं को त्याग दिया।

फ्लौबर्ट और उसके अनुयाइयों की ट्रेजेडी इस बात में निहित है कि वे इतनी बुरी तरह और निरन्तर अपनी कमियों को महसूस करते थे और यह कि अतीत के उस्तादों — रैबिले, सर्वेण्टीज, दिदेरो और बाल्जाक — की श्रेष्ठता का उन्हें इतना अधिक मान था। कभी-कभी वे भटकते-टटोलते इसके कारण को जानते-जानते रह गए हैं. और गौन्कोर्ट बन्धुओं की डायरी में बालजाक पर एक परिच्छेद है जो सत्य के इतने निकट है और आज के लेखक के लिए इतना महत्वपूर्ण है कि वह इस अध्याय के सारतत्व को खूब अच्छी तरह प्रकट कर देता है.

"मैंने बालजाक की कृति *किसान* अभी-अभी दोबारा पढ़कर खत्म की है। बालजाक को आज तक किसी ने राजनेता की संज्ञा नहीं दी, फिर भी कदाचित् वे हमारे समय के सबसे बड़े राजनेता थे, ऐसे एकमात्र व्यक्ति थे जिन्होंने हमारे रोग की जड़ को पकड़ा। अकेले वही थे जो एक उच्च आसन पर बैठ, १७८९ के उपरान्त फ्रान्स के विशृंखलन को, कानूनों की ओट में छिपे व्यवहारों को, शब्दों के पीछे छिपे तथ्यों को, प्रत्यक्ष व्यवस्था के पीछे निरंकुश हितों की अराजकता को, कुव्यवहारों का स्थान ग्रहण करने वाले प्रभावों को, अदालत में वर्तमान असमानता द्वारा कानून में प्राप्त समानता के विनाश को, देख सके। संक्षेप में यह कि १८८९ के उस कार्यक्रम में निहित झूठ को उन्होंने उद्‌घाटित किया, जिसने बड़े नामों की जगह बड़े सिक्कों की स्थापना की और मार्क्विसों को महाजनों में बदल दिया। बस, इससे अधिक जो और कुछ न कर पाया। और यह एक उपन्यासकार ही था जिसने यह सब कुछ देखा और उसका पर्दाफाश किया।"

आठ

नायक की मृत्यु

इस बात पर जोर देना कदाचित् आपको अनावश्यक पिष्टपेषण मालूम हो कि उपन्यास को मुख्यतः चरित्र के सृजन पर ध्यान देना चाहिए। किन्तु दुर्भाग्यवश सच यही है कि आज के उपन्यासकारों के लिए यह उनकी चिन्ता का मुख्य विषय नहीं रहा है, यों औपचारिक रूप में कोई कुछ भी कहे। आज के उपन्यासों में केवल मानव चरित्र को छोड़ कर करीब-करीब हर चीज आपको मिलेगी। कुछ उपन्यासों का, जैसे कि मि. हक्सले की कृतियों का, ताल्लुक, एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका से और अपने निजी परिचितों की नकलों से होता है, जब कि अन्य में—जैसे डी. एच. लारेन्स के उपन्यासों में—स्वयं लेखक की मनोदशाओं के अत्यंत रंगीन वर्णन होते हैं, या फिर, जैसा कि एच. जी. वेल्स की अधिकांश कृतियों में, राजनीतिक बहसों की, या—जैसा कि ऐरे, गैरे, नत्थू, खैरे की अन्य सैकड़ों कृतियों में—हल्के सामाजिक व्यंग्य की भरमार नजर आती है (उपन्यासकार निश्चय ही सामाजिक व्यंग्य को अपनी कथा-वस्तु बना सकता है, सच तो यह है कि इसने विश्व के अनेक महानतम उपन्यासों को जन्म दिया है, किन्तु व्यंग्यकार भी—बल्कि इस मामले में तो व्यंग्यकार का नाम सबसे पहले लेना चाहिए—मानव-चरित्र को अपनी कृति का केन्द्र बनाने की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं है)।

फिर भी यह सच है कि मानवीय व्यक्तित्व, और उसके साथ-साथ "नायक" सामयिक उपन्यासों से गायब हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दी

का उपन्यास जिस रूप में विकसित हुआ, उसमें नायक की हत्या होना अनिवार्य था। यथार्थवाद के ह्रास ने इसे आवश्यम्भावी बना दिया था। *मदाम बोवेरी* को लिखने के दौरान में, फ्लौबर्ट ने अपनी रचनात्मक पद्धति के कारण यद्यपि नार्मन प्रान्त का एक अत्यंत पूर्ण चित्र खींचने में लगभग उतनी ही शक्ति खर्च की जितनी की ऐम्मा के चरित्र-चित्रण में, फिर भी उनकी मुख्य दिलचस्पी अभी खुद उस स्त्री में ही थी। किन्तु एडमण्ड द गौन्कोर्ट इन्सानों के स्थान पर रंगमंच, अस्पताल, वेश्यावृत्ति आदि विषयों पर उपन्यास लिखने की बात सोचने लग चुके थे। जोला ने भी युद्ध पर, धन पर, वेश्यावृत्ति पर, पेरिस के बाजारों और मदिरा-पान आदि पर उपन्यासों का सिलसिला जारी रखा। फ्रांसीसी यथार्थवादियों के पक्के शिष्य, आर्नोल्ड बैनेट[1] ने अपने पिता तथा स्वयं अपनी जवानी पर एक बढ़िया उपन्यास लिखा, इसके बाद "एक परिवार का इतिहास" लिखने की घातक धुन उन पर सवार हुई। इस धुन के फलस्वरूप जिन दो नए खण्डों की उन्होंने रचना की, उनकी बदौलत उनका पहले का किया-कराया भी सब चौपट हो गया। इसी प्रकार उन्होंने एक बहुत ही बढ़िया उपन्यास लिखा जो युद्ध-पूर्व के इंग्लैंड के श्रेष्ठतम उपन्यासों में गिना जाता है। यह उपन्यास दो वृद्ध महिलाओं के बारे में है जिनसे वे पौटरीज[2] में परिचित हुए थे। इसके बाद वे फिर एक समाचार पत्र के मालिक, एक होटल, और वेश्यावृत्ति आदि पर उपन्यास लिखने पर (जी हां, बिल्कुल वैसे ही जैसे कि अन्य सैकड़ों लिख रहे थे!) उतर आए।

गौन्कोर्ट बन्धु सचेत कलाकार थे, और उनकी कृतियों को आज भी थोड़े-बहुत आनन्द के साथ पढ़ा जा सकता है। जोला भी एक प्रतिभाशाली व्यक्ति की भांति प्राणवान और रचनात्मक शक्ति के धनी थे। उनके उपन्यास अपनी रागात्मकता के कारण आज भी पठनीय हैं। किन्तु हजारों की संख्या में वे "यथार्थवादी" अध्ययन, जिनके लेखकों में न तो कला है, न रागात्मकता और न ही प्रतिभा, प्रकाशित होने के महीने भर के भीतर ही अपठनीय बन जाते हैं। आधुनिक उपन्यासकार ने व्यक्तित्व के, नायक के, निर्माण का काम छोड़ कर साधारण परि-

स्थितियों में साधारण लोगों का चित्रण करने के फेर में न केवल यथार्थवाद से ही, बल्कि खुद जीवन से भी नाता तोड़ लिया है। यह बात केवल "तटस्थ" पंथ के स्वविज्ञापित यथार्थवादियों के बारे में ही नहीं, बल्कि निरा आत्मगत मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने वाले उपन्यासकारों के बारे में भी सच है। इन बाद के लेखकों को तो, निस्सन्देह, चरित्र-चित्रण को एक बेहूदगी की सीमा तक पहुंचाने का श्रेय प्राप्त है, हालांकि यह बेहूदगी भी कभी-कभी शानदार तथा प्रतिभाशाली रूप में प्रकट होती है। जेम्स जॉयस को लीजिए, जो सधारण मानव का चित्रण करने पर इतने दत्तचित्त हैं, कि इसके लिए वे डबलिन के एक अत्यंत साधारण, "औसत" आदमी को चुनते हैं और "साधारण" परिस्थितियों में उसका चित्रण करने पर तत्पर वह अपने नायक का परिचय कराते समय उसे टट्टी में बैठा हुआ पेश करते हैं।

यह वास्तव में मानवतावाद से, साहित्य में समूची पश्चिमी परम्परा से, इन्कार करना है (बल्कि यूं कहना चाहिए कि मानव के बारे में समग्र विश्व साहित्य के सामान्य दृष्टिकोण से इन्कार करना है, क्योंकि पूर्व का भी अपना मानवतावाद है)। साहित्य-रचना की समूची आधुनिक पद्धति जीवन को वास्तविकता से अलग करके, तदुपरान्त काल और घटनाओं की आन्तरिक संगति को नष्ट करके चलती है। परिणाम इसका यह होता है कि पात्रों तथा बाह्य जगत के बीच में एक दूसरे को प्रभावित करने की अन्तर-क्रिया विलुप्त हो जाती है। इस प्रकार यह पद्धति, मानव की ऐतिहासिकता से इन्कार करके, अन्त में रचना-शक्ति को ही नष्ट कर देती है। असल में बुर्जुआ वर्ग में अब वह क्षमता ही नहीं है कि वह समय के संदर्भ में, दुनिया में काम करते हुए, दुनिया द्वारा स्वयं बदले जाते और स्वयं दुनिया को बदलते हुए, सक्रिय रूप से अपना निर्माण करने में जुटे मानव को, ऐतिहासिक मानव को, स्वीकार कर सके। कारण कि उसे स्वीकार करने का अर्थ है बुर्जुआ जगत को रद्द करना, पूंजीवादी व्यवस्था के ऐतिहासिक भाग्य को स्वीकार करना और समाज को बदलने वाली क्रियाशील ताकतों को मान्यता देना।

उन्नीसवीं शताब्दी के महान काल के उपन्यासों में प्रायः एक ऐसे नायक से हमारी भेंट होती है जो युवक है, समाज से संघर्षरत है, और अन्त में जिसके सारे भ्रम नष्ट हो जाते हैं, या जो समाज द्वारा परास्त कर दिया जाता है। स्टेन्ढाल के उपन्यासों का एकमात्र नायक वही है, बालजाक भी बहुधा ऐसे ही नायक को रंगमंच के बीच ला खड़ा करते हैं, करीब-करीब हर रूसी उपन्यास में केन्द्रीय पात्र वही होता है, और इंगलैंड में उसे आप पेनडेनिस से लेकर रिचर्ड फेवरेल, अर्नेस्ट पौण्टिफेक्स और जूड[1] तक देख सकते हैं। यह कभी न झुकने वाला, आदर्शवादी, जोशीला और दुःखी युवक एक ऐसा व्यक्तिवादी है, जो अहंवाद को अपना धर्म मानने वाले समाज में अपने को नहीं खपा पाता। लगता है कि उस शताब्दी में अहंवाद के दो रूपों—पवित्र और अपवित्र—का प्रचलन था, और पवित्र अहंवादियों के लिए कोई जगह न थी—केवल हताशा, पाखण्ड, संकल्प-शक्ति का टूटना और अन्त में सभी चीजों से विश्वास का उठ जाना ही उनके भाग्य में बदा था।

यह युवक नायक—यह सहज ही मान लिया जा सकता है—अधिकांश मामलों में लेखक की युवावस्था का, या एक ऐसे समाज के साथ उसके निजी संघर्ष के किसी दौर का ही काल्पनिक प्रतिरूप होता था, जो उसके मानवतावाद को, व्यक्तिगत सुख, सम्पत्ति या स्त्री-पुरुषों के आपसी सम्बंधों पर उसके विचारों को, स्वीकार न करता था। फ्लौबर्ट के पत्र उस बुर्जुआ समाज के प्रति तीखी घृणा और हिकारत से भरे हैं जो कलाकार को प्रतिष्ठा के अपने तुच्छ आदर्शों के आगे हर क़दम पर झुकने के लिए बाध्य करता था। प्रतिष्ठा भी ऐसी जो अज्ञान की देन थी और नकदनारायण जिसका ठोस आधार था। फ्लौबर्ट और उसके बुद्धिजीवी साथी—जिनमें उन्नीसवीं शताब्दी के सब से अच्छे और सबसे ईमानदार व्यक्ति थे—सारी सामाजिक बुराई की जड़ अनिवार्य शिक्षा तथा सार्वभौमिक मताधिकार में देखते थे। अनिवार्य शिक्षा के बारे में जब वे सोचते थे तो बुर्जुआ आदर्शों के अनुसार शिक्षा का रूप उनकी आंखों के सामने खड़ा हो जाता था और

मताधिकार को वे उस मत-गणना का पर्यायवाची समझते थे जिसने द्वइया नेपोलियन की बुर्जुआ तानाशाही के हाथों में सत्ता की पुष्टि की थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूंजीवादी समाज में जीवन की एकरसता और निकृष्टता के विरुद्ध प्रतिक्रिया ने उपन्यासकार को इस बात का अवसर ही नहीं दिया कि वह उक्त शताब्दी में मानवीय जीवन के कुछ अत्यंत दिलचस्प पहलुओं को समझ सके और उन पर महारथ प्राप्त कर सके। मजदूर वर्ग की, कुल मिला कर, उपेक्षा करना उसके लिए स्वभाविक ही था। उपन्यासकार का मजदूरों से कोई सम्पर्क नहीं था, वह उन्हें एक विचित्र और अज्ञेय दुनिया के निवासी समझता था, और केवल आगे चलकर, पेरिस कम्यून के बाद, उसने इस दुनिया की टोह लेने का कठिन प्रयास गम्भीरता से शुरू किया। एडमण्ड गोन्कोर्ट ने स्पष्ट रूप में यह लिखा है कि "निम्न जीवन" पर उपन्यास लिखने के लिए सामग्री बटोरते समय उन्हें ऐसा अनुभव होता है मानो वह पुलिस के जासूस हों, फिर भी वह इस ओर आकर्षित होते हैं "क्योंकि मैं एक कुलीन घर का साहित्यिक आदमी हूं और जनता—लोगों का रेवड़ कह लीजिए—मुझे एक अनजान और अनखोजी जाति की भांति, एक ऐसी 'विचित्र' वस्तु की भांति आकर्षित करती है, जिसकी खोज पाने की आशा में यात्री दूर-दूर के देशों में हजारों कठिनाइयां बर्दाश्त करता है।" अधिकांश लेखकों की दृष्टि में मजदूर वर्ग आज दिन भी केवल दूर देश की वह "विचित्र" वस्तु बना हुआ है, बावजूद इस तथ्य के कि ऐसे दृष्टिकोण के द्वारा मानवीय व्यक्ति की रचना करना असम्भव है। एक या दो दुर्लभ अपवादों को छोड़ कर (मिसाल के लिए जैसे मार्क रूदरफोर्ड[1]) उपन्यासकार मजदूर वर्ग के स्त्री-पुरुषों का विश्वसनीय चित्रण करने में कभी सफल न हो सके, यहां तक कि "दो राष्ट्रों" के बीच की दीवार को तोड़ने का इस कठिनाई के कारण इसकी चेष्टा तक बिरले ही की गयी।

किन्तु इससे भी ज्यादा ध्यान देने योग्य यह है कि बुर्जुआ उपन्यासकारों ने दो अन्य किस्म के लोगों को कल्पनात्मक साहित्य से बाहर रखा। ये वे लोग हैं जिन्होंने पूंजीवादी समाज के इतिहास में सचमुच निर्णयात्मक भूमिका का निर्वाह किया था। इन दोनों में एक है वैज्ञानिक

और दूसरा पूंजीवादी "नेता," हमारे आधुनिक जीवन का करोड़पति शासक।

विश्व के सर्वोच्च वैज्ञानिकों — आर्कीमेडीज, गैलीलियो, न्यूटन, लेवोसियर, डार्विन, फैराडे, पास्चर और क्लर्क मैक्सवेल — में से चार अंग्रेज थे और इनमें से तीन उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज थे। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम महान भौतिक विज्ञान शास्त्री हम्फ्री डेवी की मदे, कोलरिज, वर्ड्सवर्थ और उपन्यास लेखिका मारिया एजवर्थ से घनिष्ठ मित्रता थी। रसायन शास्त्री डाक्टर जोसेफ प्रीस्टले से अधिक दिलचस्प अंग्रेज विरले ही हुए होंगे, किन्तु उनके यशगान में एक भी अच्छी जीवनी नहीं लिखी गयी (यह शायद इसलिए कि न तो वह जेस्यूट थे, न सनकी, और न वे टोरी ही थे); उन्नीसवीं शताब्दी के वस्तुतः अच्छे उपन्यासकारों की रचनाओं में, चिराग लेकर ढूंढ़ने पर भी, इस तथ्य का आभास तक नहीं मिलेगा कि विज्ञान का अस्तित्व मानव के लिए सार्वजनिक मूत्रालयों के अस्तित्व से अधिक अर्थपूर्ण है, हालांकि मूत्रालय एक उपयोगी और आवश्यक, किन्तु भद्दा प्रसाधन है। दोनों ही को साहित्य के क्षेत्र से अलग रखा गया है। यहां तक कि हमारे अपने समय में भी, जबकि विज्ञान को पूर्ण मान्यता मिल चुकी है और मूत्रालयों ने भी साहित्य में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है, केवल दूसरी श्रेणी के कुछ लेखकों ने ही वैज्ञानिक का इतना अधिकार माना है कि उसे, कला की सामग्री के रूप में, अगर अधिक नहीं, तो वेश्या तथा अभिनेत्री के समकक्ष अवश्य रखा जा सकता है।

ऐसा न सोचिए कि हम उस रूप में वैज्ञानिक को कला की "विषय वस्तु" स्वीकार कराने के लिए दलीलें दे रहे हैं जैसे कि द गौन्कोर्ट ने अभिनेत्री को या जोला ने बूचड़खाने को और आर्नोल्ड बैनेट ने ऐश्वर्यमय होटल को स्वीकार किया था। वैज्ञानिक विषय वस्तु नहीं है, वह मानव का एक ऐसा प्रतिनिधि रूप है जिसका रचनात्मक मस्तिष्क महान कलाकारों की ऊंचाइयों को छूता है। वह मानव जीवन का एक अंग है और उसकी उपेक्षा करके आधुनिक संसार में मानव जीवन का कोई भी सम्भव चित्र पूर्ण नहीं हो सकता। इस प्रकार के मनुष्य को, जो कि

हमारे युग का एक वास्तविक रचनात्मक शक्ति है, उपन्यासकार ने क्यों नजरन्दाज किया ? इसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि उपन्यासकार स्वयं विज्ञान से बेहद बेगाना होता है। संकीर्ण विशेषीकरण और श्रम-विभाजन की इस दुनिया में वैज्ञानिक रचना के दायरे से वह इतना दूर और इतना अलग होता है कि मानवीय व्यक्तित्व का यह समूचा प्राणवान क्षेत्र उसके लिए अज्ञात देश के समान है। दूसरा कारण यह है कि वैज्ञानिक के व्यक्तित्व के अध्ययन में स्वयं सामाजिक जीवन की परिस्थितियां उपन्यासकार के लिए बाधक सिद्ध हुई हैं। विज्ञान हमारी दुनिया के देवताओं में से एक है, किन्तु हमारी इस दुनिया ने उसके पांवों में बेड़ियां भी डाल रखी हैं और उसे भ्रष्ट भी कर दिया है। कोई निडर यथार्थवादी ही उन्नीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक का चित्रण कर सकता था। वह काम एक ऐसा व्यक्ति ही कर सकता था जो एक ओर धर्म तथा अपढ़ लोगों के अंधविश्वासों से लोहा लेने को, और दूसरी ओर व्यापारिक भ्रष्टाचार तथा समाज-व्यवस्था की जड़ों का पर्दाफाश करने को तैयार होता, और आज तो उसे और भी आगे बढ़कर यह दिखाना होगा कि किस प्रकार समाज विज्ञान के नाश के लिए विज्ञान का प्रयोग कर रहा है।

मैं ऊपर यह कह चुका हूं कि उपन्यासकार ने मानव अस्तित्व के एक अन्य पहलू के विकास की उपेक्षा की है। उस शताब्दी में इसकी भूमिका भी कोई कम महत्व नहीं रखती थी। कथा-साहित्य में ,उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी की उपलब्धियां काफी बड़ी हैं। उन सबको छान डालने पर भी महान उद्योगपति का — उस आदमी का, जिसने रेलें बनाने, इस्पात मिलों का निर्माण करने, अफ्रीका की खानों में से हीरे निकालने और दलदलों और रेगिस्तानों में से नहरें काट कर सागरों को एक दूसरे से जोड़ने के कार्यों का संगठन-संयोजन किया — कहीं भी चित्रण नहीं मिलेगा। सम्भवतः उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकारों का इसमें उतना दोष नहीं है। १८७० में व्यापारिक जगत में अगर किसी की तूती बोलती थी तो महाजन की, और बालजाक ने उसका सच्चा चित्र देने में कोई कसर नहीं उठा रखी। कारखानेदार उन दिनों अपेक्षाकृत छोटा

आदमी माना जाता था। तब तक दुनिया पर शासन करने के लिए पूंजी से उसका गठबन्धन नहीं हुआ था। किन्तु इस छोटे कारखानेदार या उद्योगपति को भी, अगर सच कहा जाए तो, महान यथार्थवादियों ने नजरन्दाज नहीं किया। शताब्दी के तृतीय और अन्तिम भाग में तथा हमारे अपने समय में ऐसा नहीं हुआ। कहां है सीसिल रूहोड्स, या रौकफैलर, या क्रुप ? अकेले ड्रेजर ने इस किस्म के आदमी के जीवन के चित्रण की चेष्टा की है, किन्तु आमतौर पर कलाकारों ने उससे कन्नी ही काटी है, मानो वह शैतान हो जिससे बचना चाहिए। किन्तु कोई कारण नहीं कि शैतान को कल्पनात्मक साहित्य से अलग रखा जाए। मिल्टन को वह काफी उपयुक्त पात्र मालूम हुआ। और यदि जेस्यूट शहीद एडवर्ड कैम्पियोन एक प्रतिभाशाली लेखक का ध्यान आकर्षित कर सकता है, तो पूंजीवादी शहीद आईवर क्रूगर[1] क्यों नहीं ध्यान आकर्षित कर सकता, जो "संपदा" के देवता के पतन के साथ ही शहीद हो गया था ?

रेनैसां काल का कलाकार खलनायक का वर्णन करने से कतराता नहीं था। शैक्सपीयर से अगर कोई पूछता तो वह कहते कि खलनायक के बिना जीवन पूरा नहीं होता। यह सोचना भारी अन्याय है कि खलनायक निरा नकारात्मक होता है, कि उसमें कोई प्रसाद-गुण नहीं होते, या यह कि वह केवल बुराई का साकार प्रतीक होता है। यह सच है कि आज के पूंजीपतियों का रेनैसां काल के साहसिकों के साथ केवल ऊपरी रूप में मेल है। वे हिंस्र थे, खूनी और क्रूर थे, किन्तु खुले रूप में, जब कि आज के पूंजीपति अंधेरे की ओट में यह सब करते हैं, या हिंसा और क्रूरता का काम अपने गुर्गों के हाथों में छोड़ देते हैं। रेनैसां काल का राजकुमार व्यभिचार तो करता था, किन्तु एक शानदार ढंग से, जंगलियों की तरह एकदम निर्बन्ध होकर, मानो जीवन के साथ प्रयोग कर रहा हो, मानव शरीर में जीवन की खोज कर रहा हो। किन्तु आज के अरबपति रस लेते हैं गुप्त विकृतियों में, और उनके व्यभिचार काण्ड किसी बोर्गिया[2] के दावतों से उतना नहीं, जितना कि फौली बर्जे[3] नृत्य से मेल खाते हैं।

इसका यह अर्थ नही कि इन अरबपतियो मे शानदार आदमी नही होते। र्होड्स उतना ही शानदार था जितना कि वह अरुचिकर था। नौर्थक्लिफ प्रतिभावान भी था और पागल भी। इन लोगों को आधुनिक जीवन की कविता से अलग नहीं किया जा सकता, यथार्थ पर उस विजय से अलग नहीं किया जा सकता जिसकी बदौलत आधुनिक समाचार पत्र का अस्तित्व सम्भव हुआ, जो अभी हत्यारे ने गोली चलाई नहीं कि उस गोली से मरते हुए राजा का चित्र करीब-करीब उसी समय आपके सामने लाकर रख देता है। यह सब आधुनिक भौतिक विज्ञान का करिश्मा है। महान राष्ट्रों की गतिविधि, महान उद्देश्यों के लिए स्त्री-पुरुषों के प्रेरणादायक बलिदान—ये सब भी अरबपतियों के जीवन के साथ गुथे हैं।

फिर भी कल्पनात्मक साहित्य में उनके दर्शन नही होते। लेखक उनसे घबराता है, उन भयानक ताकतों से डरता है जो—यदि एक बार भी उसने ऐसे चरित्र का चित्रण करने का प्रयत्न किया तो—उसके पन्नों से फूट निकलेंगी। इसलिए अच्छा यही है कि स्वान्त की शान्त दुनिया की शरण लो, बाग-बगीचों, दीवानखानों, लम्बे वार्तालापो और भावों के कोमल विश्लेषणों, तथा शरीर और आत्मा के सूक्ष्मतम विकारों का आनन्द उठाओ। माना कि इन सब में भी राष्ट्रों के जीवन के स्वामी तथा महान सभ्यताओं के भाग्य का नियन्त्रण करने वाले अरबपतियों की दुनिया की छाया देखी जा सकती है, किन्तु यह छाया स्वान्त, डचेस और मौशिये द चार्लस को जन्म देने वाली वास्तविक दुनिया से इतनी नफासत के साथ कटी हुई तथा दूर होती है कि हम इस दुनिया के अस्तित्व को सहज ही नजरन्दाज कर सकते हैं।

इस प्रकार हमारे आधुनिक उपन्यासों से नायक और खलनायक—दोनों ही खत्म हो गये हैं। व्यक्तित्व अब कहीं नहीं दिखाई देता, खुर्दबीन की स्लाइड पर चिपकी हुई रंगबिरंगी कतरनों के रूप में ही अब उसका अस्तित्व है। ये कतरनें बहुधा अत्यंत विचित्र, दिलचस्प या सुन्दर होती हैं, किन्तु वे जीवित स्त्री-पुरुष नही होते। व्यक्तित्व या चरित्र के विनाश के साथ, उसकी जगह पर औसत परिस्थितियों में औसत व्यक्ति

को ला बिठाने, अथवा व्यक्तित्व के किसी एक पहलू को उसकी चेतना के एक अंश में यांत्रिक ढंग से अलग करके चित्रण करने के परिणामस्वरूप उपन्यास के ढांचे का तथा उसके महाकाव्यात्मक गुण का भी विनाश हो गया है। मानव अब वह व्यक्तिगत इच्छा-शक्ति न रहा जो अन्य इच्छा-शक्तियों और व्यक्तियों के साथ द्वंद्व-रत थी, कारण कि आज सभी द्वंद्वों पर महान सामाजिक द्वन्द्व छा गए है जो आधुनिक जीवन को झझोड़ और बदल रहे हैं। इसलिए, उपन्यासों में से द्वन्द्व भी गायब हो गया है और उसकी जगह आत्मा के भीतरी संघर्षों, यौन षडयन्त्रों या हवाई वाद-विवादों ने ले ली है।

रेनैसां से लेकर काण्ट के समय तक, सोलहवी शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक (भौतिकवाद तथा मानववाद की विरोधी प्रवृत्तियों के बावजूद), जिस सम्बद्ध दार्शनिक दृष्टिकोण को कुछ-न-कुछ सफलता के साथ कायम रखा गया था, उसके स्थान पर अब किसी भी प्रकार के सम्बद्ध विश्व-दृष्टिकोण के पूर्ण विनाश ने, कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जमा करने वाली दार्शनिकता ने, नीत्शे तथा बर्गसन के संकल्प और अन्तश्चेतना सम्बंधी ह्रासग्रस्त कृत्रिम दर्शनों ने, फ्रायड के वासनारूढ़ रहस्यवाद ने, नव-काण्टपंथी विभिन्न मतों के अन्तर्मुखी भाववाद ने, आसन जमाया। अन्त में मानव बुद्धि से ही इन्कार किया गया तथा रेनैसां और मानवतावाद को तिलांजलि दे दी गयी। इस दार्शनिक ह्रास का—जो स्वयं केवल राजनीतिक प्रतिक्रान्ति की हताश वेदनाओं को ही परिलक्षित करता है—यह अनिवार्य परिणाम था। हमारी सभ्यता एरास्मस, रैबिले और मौन्टेन से शुरू हुई। मध्यकालीनता की पुनरावृत्ति, रक्तशुद्धि तथा जातिवाद के सिद्धांतों, धार्मिक तथा वासनारूढ़ रहस्यवाद, स्पैंगलर, ओटमार स्पान्न, फ्रायड आदि के साथ उसका अन्त होता है। व्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रथम शानदार उद्घोष हमारे काल में आकर व्यक्तिवाद की पवित्रता के नाम पर व्यक्ति की मृत्यु की घोषणा के सिवा और कुछ नहीं रह गया।

एक विश्व दृष्टिकोण के, जीवन के बारे में एक समझ के, अभाव में मानवीय व्यक्तित्व की पूर्ण तथा निर्बन्ध अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

एक ऐसे दृष्टिकोण को पाये बिना उपन्यास नये जीवन को नहीं पा सकता, मानवतावाद का पुनर्जन्म नहीं हो सकता। आज की परिस्थितियों में वह दृष्टिकोण केवल द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का दृष्टिकोण ही हो सकता है, जो कला के क्षेत्र में एक नये समाजवादी यथार्थवाद का जन्मदाता है। १८४४ में ही लिखे गए अपने ग्रंथ *होली फेमिली* में मार्क्स और एंगेल्स ने बताया था कि समाजवाद से पृथक मानवतावाद का आज कोई अर्थ नहीं है। उन्होंने लिखा था : "अगर मनुष्य अपना समूचा ज्ञान और बोध आदि संवेदन की दुनिया और अपने उन अनुभवों से प्राप्त करता है जो कि संवेदन की दुनिया में उसे होते हैं, तो इसके बाद जो सवाल रह जाता है वह यह कि अनुभवगत जगत की इस प्रकार व्यवस्था की जाय कि मानव उसमें जो सचमुच में मानवीय है, उसी का अनुभव करे, यह कि वह अपने-आप को एक मानव के रूप में देखने का अभ्यस्त हो जाय ...[1] फ्रांसीसी और अंग्रेजी समाजवाद तथा साम्य-वाद अमल के क्षेत्र में मानवतावाद और भौतिकवाद के इसी संयोग का प्रतिनिधित्व करते थे।"[2]

इस तर्क को पढ़ कर, इसमें संदेह नहीं, अनेक पाठक यह आपत्ति कर सकते हैं कि जो निष्कर्ष यहां निकाले गये हैं वे, बहुत जल्दबाजी में निकाले गये हैं और हल्के हैं। *युलीसिस* और *स्वान्स वे* में (मानव चरित्र की कल्पनात्मक सृष्टि के इस उच्चतम अर्थ में) क्या सचमुच रचनात्मक तत्व नहीं हैं? क्या वैल्स की प्रारम्भिक कृतियों में—बावजूद इसके कि वह स्वयं इसमें विनम्रतावश इन्कार करते रहे हैं—चरित्रों की रचना नहीं है? और लौरेन्स, और हक्सले भी, क्या इससे शून्य हैं?

यह सच है कि ब्लूम[3] के रूप में जॉयस ने हमें एक मानव-चरित्र दिया है। किन्तु *युलीसिस* में केवल ब्लूम ही एकमात्र चरित्र है। डाएडालस[4] में भी हाड़ और मांस का उतना ही अभाव है जितना कि कोनराद के मार्लो[5] में और डबलिन के वे निवासी जो एक दिन के इस ओडेसी में नजर आते हैं केवल लेखक के परिचितों के दायरे में से लिए गये लोगों की छविमात्र हैं। उनका वर्णन अच्छा है, विश्लेषण भी बारीकी से किया गया है, किन्तु वे सजीव चरित्र नहीं मालूम होते।

ल्यय ब्लूम को ले लीजिए। क्या वह सचमुच एक मानव का चित्र है? शायद वह नब्बे प्रतिशत मानव का चित्र है, कलाकार की रचना नहीं, वरन् फोटोग्राफ लगता है, किन्तु लेखक जिसका हमें विश्वास दिलाना चाहता है, अवश्य ही वह वह नहीं है—यथार्थ बीसवीं सदी के तमाम "साधारण मानवों" का प्रतीक। बोवार और पेकुचे भी फ्रांसीसी ब्लूमों के यथार्थवादी फोटो के रूप में प्रेषित किये गये थे, और ब्लूम से कुछ और अधिक बनने में लगभग सफल हो चले थे—वे उस "छोटे आदमी" का वीरत्वपूर्ण प्रतिरूप बनते-बनते रह गये थे, जिसके बारे में हम आजकल इतनी चर्चा सुनते है। आधुनिक मनोविज्ञान के द्वारा मानव की उपचेतना की खोज से फ्लौबर्ट सर्वथा अनभिज्ञ थे। जॉयस उससे परिचित थे, और यह सोचे बिना नहीं रहा जा सकता कि यह जॉयस के लिए सर्वथा लाभप्रद नहीं सिद्ध हुआ। फ्लौबर्ट के साथ—हालांकि काल ने उसे फ्रायड के नये आत्म-दर्शन से वंचित रखा—कम-से-कम इतना तो था कि उन्होंने रैबिले को पढा था, उनको समझा और उनमें आनन्द का अनुभव किया था। जॉयस तो केवल जेसुटों से घृणा करते थे।

इसी प्रकार प्राउस्ट भी, मेरी समझ में, जेम्स जॉयस से अधिक सफल नहीं हुए। यह सच है कि वह पुरुषों और स्त्रियों को अधिक अच्छी तरह समझते हैं, किन्तु पेरिस की बैठकों के ये दुनिया से थके-ऊबे प्रेत अभी केवल छाया मात्र ही है। कुछ आलोचकों ने राय प्रकट की है कि प्राउस्ट को उपन्यासकार मानना ही गलत है, वे तो निबंधकार हैं, आज के मौन्टेन हैं। अगर मौन्टेन से उनकी तुलना को नजरन्दाज कर दिया जाय तो इस राय में कुछ सचाई है। प्राउस्ट को महान उपन्यासकारों की पांत के स्थान नहीं दिया जा सकता क्योंकि उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण गुण का अभाव है—उन्होंने जीवन को इतनी गहराई के साथ नहीं पकड़ा है कि वे पात्रों को खुद अपना एक पूर्ण जीवन व्यतीत करने की शक्ति प्रदान कर सकें, ऐसा जीवन जिसमें आप उनसे कोई भी प्रश्न पूछ सकें और वे उत्तर देने पर बाध्य हों।

वल्स लारेंस और हक्सले का स्तर निम्नतर है। किप्स मि पाली[1] तथा अन्य पात्र बहुत कुछ स्वयं अपने रचयिता के आदर्श प्रतिरूप हैं और उनमें अगर कुछ करुणाभाव मिलता भी है तो वह खुद उनका अपना उतना नहीं जितना कि लेखक का है। हक्सले भी मुझे बहुत कुछ वैल्स के समान मालूम होते हैं। विचारों के प्रति उनमें भी वही जोश है जो उनकी पुस्तकों को ऐसी शक्ति प्रदान करता है, जो उन्हें केवल अपने पात्रों से ही नहीं मिल सकती। इसी प्रकार विज्ञान में भी वह वैसी ही दिलचस्पी रखते हैं और उन्हीं की भांति सामयिक दुनिया के कठोर तथ्यों के बारे में किसी सन्तोषप्रद नतीजे पर पहुंचने में समर्थ नहीं हो पाते। वास्तव में हक्सले की भांति अगर वैल्स भी ग्रामर स्कूल तथा साउथ केन्सिंगटन के बजाय एटन तथा आक्सफोर्ड में शिक्षा प्राप्त कर सकते तो, निस्सन्देह दोनों में कोई अन्तर न रहता!

लारेन्स को तो उपन्यासकार कहलाने का मानो अधिकार ही नहीं है। कारण कि *पुत्र और प्रेमी* तथा *इन्द्रधनुष* के शानदार प्रारम्भ के बाद उन्होंने उपन्यास लेखन से पूर्णतया हाथ खींच लिया और उनके स्थान पर ऐसी कथा-कहानियां लिखने लगे, जो विचित्र, सुन्दर, और रहस्य-मय गद्य कविताएं हैं। इनमें हाड़-मांस के पुरुषों और स्त्रियों का नहीं, बल्कि मनोदशाओं का चित्रण हुआ है। उदाहरणार्थ, *इन्द्रधनुष* की तुलना उसके बाद लिखी हुई अवांछनीय कृति *प्रेमासक्त स्त्रियों* से कीजिए। देखकर विश्वास नहीं होता कि बाद वाले उपन्यास की खोखली आकृतियों का पहले वाले उपन्यास की अनुराग-उमंग भरी बहनों से कोई दूर का भी नाता हो सकता है। और *इन्द्रधनुष* में प्रेम और विवाह का विषय भी—लेविन और किट्टी के विवाह में ताल्सतोय ने उसी विषय के साथ जैसा निर्वाह किया है, उसके मुकाबले में कितना फीका और कितना जीवन-हीन प्रतीत होता है! *इन्द्रधनुष* लिखने के बाद लारेन्स के साथ कोई ऐसी बात हुई जिसने उनकी रचनात्मक क्षमता को पूर्णतया नष्ट कर दिया। आधुनिक उपन्यासकार के लिए लेखन का महत्व, मेरी समझ में, आदिम जगत के बारे में उनकी मसीहाई बकवास में नहीं बल्कि इस बात में है कि अंग्रेजी देहात और अंग्रेजी धरती के सौंदर्य की सराहना

करने वाला वह आखिरी लेखक था। किन्तु अंग्रेजी देहात और अंग्रेजी धरती के साथ गहरा लगाव रखना भी उसके लिए ही सम्भव है जो यह देखने की क्षमता रखता है कि यह धरती उन्मुक्त नहीं है, कि हर अंग्रेज की विरासत को हृदयहीन और अज्ञान में डूबे जमींदारों का एक छोटा सा दल मनमाने तौर से विकृत तथा नष्ट कर रहा है। हार्डी में यह सब देखने की क्षमता थी, लारेन्स में नहीं थी। इसलिए यद्यपि लारेन्स बेहतर अंग्रेजी लिखते थे, फिर भी हार्डी का दिया हुआ अंग्रेजी देहात का चित्र ही अधिक प्रभावशाली है।

अंग्रेज उपन्यासकार का केन्द्रीय काम यह है कि मानव को उपन्यास में वह फिर उसके अपने स्थान पर स्थापित करे, मानव का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करे, सामयिक मानव के व्यक्तित्व की हर अवस्था को समझे तथा उसे कल्पनात्मक रूप में मूर्त्त करे। मानव की चेतना का विस्तार हो गया है, पूंजीवादी समाज द्वारा लगाये गये बन्धनों-बाधाओं को तोड़कर उन्मुक्त होने के लिए वह व्यग्र है, आधुनिक समाज की उन तमाम अद्भुत सुविधाओं का प्रयोग करने के लिए वह बेचैन है जो स्थल और वायु द्वारा द्रुत संचार के विकास ने, सिनेमा, बेतार के तार और टेलीविजन के विकास ने, कुत्सित और आत्मा को गिराने वाले श्रम से मुक्त घरों में रहने की सम्भावना ने, प्रदान की है। ये सब चीजें अभी उसकी पहुंच से बाहर हैं। केवल कुछ गिने-चुने लोग पूंजीवादी दुनिया के मालिक, आधुनिक जीवन के इन अद्भुत आविष्कारों का उपयोग कर सकते हैं, और ये लोग इनका उपयोग करते हैं — मानव की आत्मा को और विकसित करने के लिए नहीं, बल्कि उसका पूर्ण विनाश करने के लिए। फिर भी करीब-करीब हर पुरुष और स्त्री में — चाहे वह भारतीय हो या चीनी, अंग्रेज हो या फ्रांसीसी — यह चेतना वर्तमान है कि जीवन के सुख को अभी भी गहरा और विस्तृत बनाया जा सकता है। यह चेतना अमल का, एक नयी दुनिया बनाने के प्रयास का, रूप धारण कर रही है। मानव-मुक्ति का एक नया युग आरम्भ हो रहा है।

तब, यह पूछा जा सकता है कि, किस प्रकार के स्त्री-पुरुषों का हम अपनी पुस्तकों में वर्णन करें? कर्मरत मानवों को हम किस रूप में देखें?

पथ प्रदर्शन के लिए हम किसका सहारा लें? नये यथार्थवाद का काम जिसकी हम रचना करना चाहते हैं वहीं से शुरू होगा जहां कि बुर्जुआ यथार्थवाद ने उसे छोड़ा है। इस नये यथार्थवाद का काम मानव को केवल आलोचक के रूप में, या मानव को एक ऐसे समाज के साथ आशाविहीन युद्ध में जुटा हुआ ही दिखाना नहीं रह जायगा, जिसमें कि एक व्यक्ति के रूप में वह फिट नहीं हो पाता, बल्कि उसे अमल द्वारा अपनी परिस्थितियों को बदलते हुए मानव को, जीवन पर काबू पाते हुए मानव को, चित्रित करना होगा, ऐसे मानव को चित्रित करना होगा जो इतिहास की प्रगति के साथ कदम मिलाकर चलता है और अपने भाग्य का खुद मालिक बनने की क्षमता से युक्त है। इसका मतलब यह कि उपन्यास में वीरत्व का, और वीरत्व के साथ-साथ उसके महाकाव्यगत गुणों का भी पुनरागमन होना चाहिए। शेक्सपीयर के पात्रों के बारे में लिखते हुए हैज़लिट[1] ने चौसर के पात्रों से उनकी तुलना की है और इस तुलना के दौरान में हमें इस बात की साफ समझ दी है कि जीवन को यथार्थवादी दृष्टि से देखने वाले उपन्यासकार को मानव का चित्रण किस प्रकार करना चाहिए :

"चौसर के पात्र एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं, किन्तु उनमें अपने-आप में बहुत ही कम विविधता पायी जाती है, वे बहुत कुछ एक ही श्रेणी के लगते हैं। वे सुसंगत किन्तु एकरूप हैं। आरम्भ से लेकर अन्त तक हमें उनके बारे में कुछ पता नहीं चलता। उन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में नहीं दिखाया गया है, न ही नयी-नयी परिस्थितियों में उनके दबे हुए गुणों को उभार कर दिखाया गया है। वे मानो छवि-चित्र या नख-शिख के अध्ययन हों। उनकी अपनी अलग-अलग आकृतियां हैं, जिनका वर्णन अत्यंत सचाई एवं कल्पनातीत पूर्णता के साथ हुआ है, किन्तु उनके हाव-भाव एक ही से हैं जो कभी बदलते नहीं। शैक्सपीयर के पात्र ऐतिहासिक विभूतियां हैं, उतने ही सही और सच्चे, किन्तु उन्हें अमल के क्षेत्र में उतारा गया है जहां दूसरों के साथ संघर्ष में, टक्कर और तुलना के समूचे प्रभाव को लिए हुए, प्रकाश और छाया की तमाम बारीकियों के साथ, उनके हर रग और मांसपेशी को उभार कर दिखाया गया है। चौसर के पात्र वर्णनात्मक हैं, शैक्सपीयर के नाटकीय और मिल्टन के

महाकाव्यात्मक। अर्थात् यह कि चौसर अपनी कहानी का केवल उतना ही अंश प्रकट करते थे जितना कि वे प्रकट करना चाहते थे, जितना कि उनके उद्देश्य विशेष के लिए आवश्यक होता था। अपने पात्रों की ओर से वह स्वयं ही उत्तर देते थे। शेक्सपीयर में वे मंच पर खड़े कर दिये जाते हैं, दुनिया भर के सवाल उनसे पूछे जा सकते हैं और वे अपने उत्तर स्वयं देने पर बाध्य होते हैं। चौसर में चरित्र का सारतत्व स्थिर है। शेक्सपीयर में ये तत्व निरतर संघटित और विघटित होते रहते हैं। अन्य मूल पिण्डों के सम्पर्क में आने पर उनके प्रति आकर्षण या विकर्षण की एक के बाद दूसरी क्रिया के कारण सम्पूर्ण पिण्ड का प्रत्येक कण उबलता-उफनता रहता है। जब तक प्रयोग जारी रहता है, हम उसके नतीजों को भांप नहीं पाते, यह नही जान पाते कि अपनी नयी परिस्थितियों में पात्र कौनसी करवट लेगा।"

चरित्र के बारे में यही वह दृष्टिकोण है जो कि उपन्यासों से सर्वथा लुप्त हो चुका है, जिसे क्रान्तिकारी उपन्यासकार को फिर से स्थापित करना होगा। उसे वास्तविकता से डरना नहीं है, पूर्ण मानव का चित्रण करने से कतराना नहीं है। उसे अब उसी काम को उठाना है जिससे बुर्जुआ वर्ग के उपन्यासकार मुह मोड चुके हैं। वह काम है अपनी कल्पनात्मक शक्ति से प्रतिनिधि मानव की, हमारे युग के नायक की, रचना करना, और इस प्रकार, जैसा कि स्तालिन ने कहा था, "मानवात्मा का अभियन्ता" बन कर अपने को सार्थक सिद्ध करना।

नौ

समाजवादी यथार्थवाद

उपन्यास के सैद्धान्तिक धरातल पर विचार करते समय फील्डिंग उसके महाकाव्यात्मक तथा ऐतिहासिक चरित्र पर हमेशा जोर देते थे। वह जोर देकर कहते थे कि मानव का पूर्ण चित्र तभी खींचा जा सकता है जबकि उसे कर्मरत दिखाया जाय। उपन्यासकार का काम केवल इतिवृत्त लिखना भर नहीं है — *टौम जोन्स* के एक भूमिकागत अध्याय में उन्होंने लिखा — बल्कि इतिहास की रचना करना है। इसका अर्थ यह कि उसकी कृति "एक समाचार पत्र के सदृश्य नहीं होनी चाहिए जिसमें चाहे कोई समाचार हो या न हो, सदा की भांति समान संख्या में शब्द भरे होते हैं।" इतिवृत्त लेखक से भिन्न उपन्यासकार को "उन लेखकों" की पद्धति से "काम लेना चाहिए, जिनका लक्ष्य देशों की क्रान्तियों का उद्‌घाटन करना होता है।" इसका अर्थ यह कि उसे निरे वर्णन या आत्मगत विश्लेषण से ही नहीं, बल्कि परिवर्तन से, कार्य-कारण सम्बंध से, संकट और द्वन्द्व से सरोकार रखना चाहिए।

एक दूसरे अध्याय में, और भी अधिक नपे-तुले ढंग से उपन्यासकार की भूमिका की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया है कि उसमें "हमारी पहुंच और ज्ञान के अन्तर्गत सभी चीजों के भीतर प्रवेश करने तथा उनकी मूल भिन्नताओं को पहचानने की" क्षमता होनी चाहिए। उपन्यासकार के इन गुणों को उन्होंने "आविष्कार और परख" की संज्ञा दी है और साथ ही इस बात से इन्कार किया है कि आविष्कार का अर्थ केवल किसी घटना या परिस्थिति की रचना करने की क्षमता है। "आविष्कार का असली मतलब (और यही इसका शाब्दिक अर्थ

है) खोज या पता लगाना ही है; या यदि विस्तार से उसकी व्याख्या की जाय तो वह अपने चिन्तन की समस्त वस्तुओं के वास्तविक सार को तेजी से तथा समझदारी के साथ पकड़ना है। किन्तु यह, मेरी समझ में, तभी हो सकता है जबकि परखने की शक्ति भी साथ में हो। कारण कि बिना दो वस्तुओं के भेद की परख किए यह कहना कि उनके वास्तविक सार को खोज लिया गया है, मुझे कल्पनातीत प्रतीत होता है।"

यह बहुत ही बढ़िया सलाह है। उपन्यास लेखन के बारे में किसी भी समय, किसी भी लेखनी से निकली बढिया-से-बढ़िया सलाह से किसी भी मायने में कम नहीं है, और इसके रचयिता ने, *टौम जोन्स* के जिस अध्याय में यह बात कही है, उसके शीर्षक के रूप में अकारण ही यह नहीं लिखा है कि "उन लोगों के बारे में जो इस जैसे इतिहासों को अधिकार के साथ लिख सकते हैं, और उन लोगों के बारे में जो नहीं लिख सकते।" अधिकारप्राप्त उपन्यासकार या इतिहासकार—जैसा कि फील्डिंग उसे मानते हैं—के अन्य गुणों में से एक है अध्ययनशीलता, और उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि होमर और मिल्टन—महाकाव्यों के रचयिता जिन्हें वे अपना गुरू स्वीकार करते हैं—"अपने समय के समूचे ज्ञान के अधिकारी थे।" अध्ययनशीलता के बाद जिस गुण की उपन्यासकार को आवश्यकता है वह है "सभी श्रेणियों और स्तरों के लोगों के साथ अपनत्व स्थापित करने" की क्षमता।

अपने इन कर्तव्यों के बारे में फील्डिंग के मत को उपन्यासकार जब फिर से अपना लेगा, तो एक नये यथार्थवाद का जन्म होगा। हां, एक नये यथार्थवाद की स्थापना होगी। कारण इसका साफ है। आज, वस्तुओं के सारतत्व की खोज, उनके तात्विक भेदों को देख पाने की क्षमता तथा सभी स्तर के लोगों से अपनत्व स्थापित करने की क्षमता—इन सब के परिणामस्वरूप जो उपन्यास सामने आएगा वह फील्डिंग या डिकेन्स की पुनरावृत्ति मात्र नहीं होगा। आज तात्विक भेदों के भीतर प्रवेश करने का अर्थ है उन अन्तर्विरोधों को खोल कर रखना जो मानव कृत्यों को उत्प्रेरित करते हैं। इनमें मानव के चरित्र में निहित आन्तरिक अन्तर्विरोध भी शामिल हैं और वे बाह्य असंगतियां भी जिनके

साथ वे अविच्छिन्न रूप से जुड़े हैं। आज हम सभी स्तरों के लोगों से तब तक अपनत्व नहीं स्थापित कर सकते, जब तक कि हम यह न समझें कि फील्डिंग के समय से लोगों के पारस्परिक सम्बंध किस प्रकार बदल चुके हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक विज्ञान ने भारी परिमाण में मानव-चरित्र सम्बंधी महत्वपूर्ण सामग्री का संचय किया है। खासतौर से वह सामग्री जो मानव के गहरे, उपचेतन, तत्वों से सम्बंध रखती है, और जो हर उपन्यासकार के ध्यान देने योग्य है। किन्तु क्षण भर के लिए भी इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि मनोवैज्ञानिक तथ्यों के इन संकलनों से, अपने-आप में, तमाम मानवीय क्रिया-कलापों या मानवीय विचारों और भावनाओं को समझा जा सकता है। फ्रायड, हैवलौक एलिस या पावलोव का समूचा कृतित्व भी इस बात की अनुमति नहीं देता कि उपन्यासकार मनोवैज्ञानिक के हाथों में अपना काम सौंप कर सतोष कर ले। मार्क्सवादी निश्चय ही मनोवैज्ञानिक के इस दावे को नहीं मानते कि मानव-चिन्तन की तमाम प्रक्रियाओं या मानव मन के तमाम परिवर्तनों की कुंजी मातृ-रति ग्रन्थि (ओडिपस काम्प्लैक्स) या मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के शस्त्रागार में ग्रन्थियों की दुर्जेय सेना में से किसी अन्य में खोजी जा सकती है। इस तरह के निरे आत्मगत कारणों से इन प्रक्रियाओं और परिवर्तनों की व्याख्या नहीं की जा सकती। मानसिक जीवन के बारे में फ्रायड के निरे जैविकीय दृष्टि के द्वारा, या पावलोव और प्रतिक्षेपवादियों के निरे यान्त्रिक दृष्टि के द्वारा मानव को—जैसा कि फील्डिंग चाहते थे—उसके व्यक्तिगत "क्रान्तियों" की पृष्ठभूमि में चित्रित नहीं किया जा सकता, मानव व्यक्तित्व की कल्पनात्मक पुनःरचना के लिए उसके भीतर सच्चे मायनों में नहीं पैठा जा सकता। निस्सन्देह, आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने मानव-सम्बंधी हमारे ज्ञान में भारी वृद्धि की है, और उनकी देन से इनकार करके आज का उपन्यासकार अपने अज्ञान का ही नहीं, बल्कि मूर्खता का भी परिचय देगा। किन्तु वे व्यक्ति को समग्र रूप में—एक सामाजिक प्राणि के रूप में—देखने में पूर्णतया असमर्थ रहे हैं। उन्होंने जीवन के बारे में उस

झूठ दृष्टिकोण के लिए आधार प्रदान किया है जिसके कारण प्राउस्ट और जॉयस में कला का एकमात्र लक्ष्य मानव-व्यक्तित्व की रचना करने के बजाय मानव व्यक्तित्व का विघटन करना बन गया।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण — बावजूद इस बात के कि इसके बल पर मानव-व्यक्तित्व की गुप्त गहराइयों को प्रतिभाशाली तथा साहसपूर्ण ढग से कुरेदा-टटोला गया है — कभी यह नही समझ सका कि कोई व्यक्ति सामाजिक समग्रता का केवल एक अंश मात्र है, और यह कि इस समग्रता के अधिनियम, संक्षेत्र-काच (प्रिज्म) मे से गुजरनेवाली प्रकाश-किरणो की भाति व्यक्ति के मन रूपी यंत्र में विघटित और वक्रित होकर, हर व्यक्ति की प्रकृति को बदलते और नियंत्रित करते हैं। आज मानव हमारी समाज-व्यवस्था के भरभरा कर ढह जाने के साथ उत्पन्न होने वाली बाह्य वस्तुगत विभीषिकाओं के खिलाफ, फासिज्म के खिलाफ, युद्ध के खिलाफ, बेकारी के और कृषि के ह्रास के खिलाफ, मशीन के प्रभुत्व के खिलाफ, लडने पर बाध्य है। साथ ही उसे अपने मास्तिष्क के अन्दर इन सब चीजों के मनोगत प्रतिबिम्ब के खिलाफ भी लडना है। उसे लड़ना है दुनिया को बदलने के लिए, सभ्यता को बचाने के लिए। और साथ ही उसे मानव-आत्मा में पूंजीवादी अराजकता को खत्म करने के लिए भी लडना है।

इस दोहरे सघर्ष में ही, जिसमें प्रत्येक पक्ष बारी-बारी से एक-दूसरे को प्रभावित करता और एक-दूसरे से प्रभावित होता है — अन्त-र्मुखी और बहिर्मुखी यथार्थवाद के बीच के पुराने तथा कृत्रिम विभाजन का अन्त होगा। तब उस पुराने यथातथ्यवादी यथार्थ का लेश नही रहेगा, अन्तहीन विश्लेषण तथा अन्तश्चेतना के उपन्यास नहीं लिखे जाएंगे, बल्कि एक नये यथार्थवाद का उदय होगा जिसमें इन दोनों के बीच समुचित सम्बंध तथा तारतम्य रहेगा। आधुनिक यथार्थवादी, जोला और मोपांसा के उत्तराधिकारी, निश्चय ही इस बात का अनुभव करते हैं कि उनके गुरुओं की पद्धति अब काम नहीं देती, वह अपर्याप्त है। किन्तु द्वन्द्वात्मकता के अभाव मे, एक ऐसे दर्शन के अभाव में जो उन्हें दुनिया

को देखने और समझने में सचमुच सहायता देता, वे गलत रास्ते पर चल पड़े और उस यथातथ्यवाद को टेक देने के लिए उन्होंने चरचराते तथा कृत्रिम प्रतीकवाद का सहारा लिया। जूल्स रोमें[1] तथा सिलीन[2] के उन अन्तहीन, शक्तिशाली, किन्तु असन्तोषजनक उपन्यासों की यही सब से गम्भीर कमजोरी है।

इन दोनों में तालमेल कैसे बैठाया जाए, बुर्जुआ यथार्थवाद के भीतर इस पुराने विभाजन को कैसे तोड़ा जाए? इसके लिए सर्वप्रथम ऐतिहासिक दृष्टिकोण को पुनर्स्थापित करना होगा, जो कि अंग्रेजी क्लासिकी उपन्यास का आधार था। यहां इस बात पर जोर देने की जरूरत है कि इसका अर्थ केवल कथानक तथा वर्णन की कमी को पूरा करना ही नहीं है, कारण कि हमें जीवित मानव को लेकर चलना है, न कि केवल उन बाह्य परिस्थितियों को जिनमें कि वह रहता है। कतिपय समाजवादी उपन्यासकारों ने यही गलती की है। वे अपनी समूची प्रतिभा और शक्ति किसी एक हड़ताल, सामाजिक आन्दोलन, समाजवाद के निर्माण, क्रान्ति या गृह-युद्ध का चित्रण करने में खर्च कर देते हैं और यह नहीं सोचते कि सर्वोच्च महत्व की चीज सामाजिक पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि उस सामाजिक पृष्ठभूमि में स्वयं अपना पूर्ण विकास प्राप्त करने वाला मानव है। महाकाव्य का मानव एक ऐसा मानव होना चाहिए जिसमें स्वयं उसके तथा उसकी व्यावहारिक गतिविधि के क्षेत्र के बीच कोई विभाजन नहीं होता। वह जीता है और जीवन को बदलता है। मानव आत्म-सृष्टि करता है।

न्याय के नाते हमें यह स्वीकार करना चाहिए — और ऐसा करना अत्यंत सुसंगत आत्म-आलोचना करना होगा — कि न तो सोवियत उपन्यास और न पश्चिमी देशों के क्रान्तिकारी लेखकों के उपन्यास गिने-चुने अपवादों को छोड़कर, अभी तक इसे पूर्णतया व्यक्त कर पाए हैं। ऐसा न कर पाने के उचित-से-उचित कारण बताए जा सकते हैं। सबसे पहले खुद घटनाओं को ही लीजिए — रूसी गृह-युद्ध, समाजवादी उद्योग का निर्माण, किसानों के जीवन में क्रान्ति, शोषण के खिलाफ संघर्ष और फासिज्म से मजदूर वर्ग की रक्षा — ये सब चीजें इतनी

तथा वीरतापूर्ण हैं कि लेखक को लगता है कि उनका केवल लेखनी-बद्ध कर देने से ही जबरदस्त प्रभाव पड़ेगा। निस्संदेह इसका भी बहुधा भारी अनुभूतिमूलक महत्व होता है, किन्तु यह अनुभूतिमूलक महत्व केवल प्रथम कोटि की पत्रकारिता के क्षेत्र की वस्तु है। इसके द्वारा लेखक मानव के बारे में हमारे ज्ञान में वृद्धि नहीं करते, अथवा हमारी चेतना और संवेदनशीलता को वस्तुतः विस्तृत नहीं बनाते।

ऐतिहासिक घटना—एंगेल्स ने अपने उस पत्र में लिखा था जिसे मैं इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में उद्धृत कर चुका हूं—और कुछ भले ही हो किन्तु १+१=२ का सीधा जोड़, कार्य और कारण का एक सीधा सम्बंध, नहीं है। "इतिहास इस तरह अपना निर्माण करता है कि अन्तिम परिणाम हमेशा अनेक व्यक्तिगत इच्छा-शक्तियों के द्वन्द्व से पैदा होता है, और इन इच्छा-शक्तियों में से भी प्रत्येक जीवन की अनगिनत विशेष परिस्थितियों के द्वारा निर्मित होती है। इस प्रकार परस्पर काट करती अनगिनत ताकतें, शक्तियों के समानान्तर चतुर्भुजों की अनन्त शृंखलाएं, एक परिणाम को, ऐतिहासिक घटना को, जन्म देती हैं।"[1]

एंगेल्स और मार्क्स, दोनों ही शैक्सपीयर को ऐसा एकमात्र रचयिता मानते थे जिसने मानव व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देने की समस्या को सर्वोच्च ढंग से हल किया था। शैक्सपीयर के पात्र मार्क्सवादी लेखकों के लिए इस बात का आदर्श प्रस्तुत करते हैं कि एक ही साथ एक टाइप तथा एक व्यक्ति के रूप में, समुदाय के प्रतिनिधि तथा एक अलग व्यक्तित्व के रूप में, मानव का चित्रण कैसे किया जाना चाहिए। एंगेल्स ने अपने दिलचस्प पत्रों में, जो कि उन्होंने लसाल को उसके ऐतिहासिक नाटक *फ्रान्ज वौन सिकिन्गेन* की आलोचना करते हुए लिखे थे, बताया है कि इस नाटक का मुख्य दोष यह है कि लसाल ने शैक्सपीयर के "यथार्थवाद" की जगह शिलर की नाटक-पद्धति को अपनाना अधिक पसंद किया है। एंगेल्स ने लिखा है : "प्रचलित मूर्खतापूर्ण व्यक्तिवाद को रद्द करके तुमने बहुत ही ठीक किया। तुच्छ दार्शनिकता बघारने के सिवा उसमें और कुछ नहीं है, वह महान परम्परा के उत्तराधिकारी साहित्य के ह्रास

का सुनिश्चित लक्षण है। फिर भी मेरी समझ में, किसी व्यक्तित्व की विशेषता केवल इसी बात से नहीं प्रकट होती कि वह क्या करता है, बल्कि इससे भी प्रकट होती है कि वह कार्य कैसे करता है, और इस पहलू से—मुझे लगता है कि—तुम्हारे नाटक के सैद्धान्तिक विषय को क्षति नहीं पहुंचती यदि विविध पात्रों का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता से, उनकी भिन्नता और उनके पारस्परिक विरोध को दिखाते हुए, किया गया होता। हमारे काल में पूर्वजों का चरित्र-चित्रण पहले ही अपर्याप्त है और इस दिशा मे, मेरी समझ में, नाटक के विकास के इतिहास में शैक्सपीयर के महत्व पर और अधिक ध्यान देना अच्छा होगा।"[१]

शेक्सपीयर के पात्र-निर्वाह के बारे मे हैज़लिट के मत के साथ मार्क्स और ऐंगेल्स अवश्य ही सहमत होते कि उसके "तत्व निरन्तर संघटित और विघटित होते रहते हैं। अन्य मूल पिण्डों के सम्पर्क मे आने पर उनके प्रति आकर्षण या विकर्षण की एक के बाद दूसरी क्रिया के कारण सम्पूर्ण पिण्ड का प्रत्येक कण उबलता-उफनता रहता है। जब तक प्रयोग जारी है, हम उसके नतीजों को भांप नही पाते, यह नहीं जान पाते कि अपनी नयी परिस्थितियों में पात्र कौन सी करवट लेगा।" अप्रत्याशित के ठीक इसी गुण की ओर, जो एक साथ ऐतिहासिक घटना की आन्तरिक संगति से तथा खुद पात्र से भी मेल खाता हो, ऐंगेल्स का इशारा था जब उन्होंने यह लिखा था कि व्यक्तिगत इच्छा-शक्तियों के द्वन्द्व से जो चीज पैदा होती है वह एक "ऐसी चीज होती है जिसकी किसी ने भी इच्छा नहीं की थी।"

यथार्थवाद के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के सम्बध में अब तक जो कुछ मैंने कहा है उससे यह सहज ही समझ में आ जायेगा कि इसका उस प्रचलित भ्रम से जरा भी वास्ता नहीं है कि क्रान्तिकारी या सर्वहारा साहित्य भोंडे ढंग से छिपाकर पेश किये गये राजनीतिक प्रचार से अधिक कुछ नहीं होता। मार्क्स और ऐंगेल्स का यह सुस्पष्ट मत था कि कोई भी लेखक अपने समय के वर्ग-संघर्षों से बेगाना बन कर नहीं लिख सकता, और यह कि सभी लेखक—जाने में या अनजाने में—इन संघर्षों में कोई न कोई पक्ष लेते और उसे अपनी कृतियों में व्यक्त करते हैं। यह

ग्रात विश्व साहित्य के महान सृजनात्मक कालों में खासतौर से नजर आती हैं। किन्तु साहित्य के उस रूप को, जिसमें लेखक मानवों के जीवित कृत्यों की जगह अपने विचारों को ठूसता है, उन्होंने सदा ही अत्यन्त निन्दनीय माना है। १८५१ में ही, *न्यू यार्क ट्रिब्यून* में ऐंगेल्स ने अपने एक लेख में १८३० से लेकर १८४८ तक जर्मनी के साहित्यिक आन्दोलन की अत्यंत कड़ी आलोचना की थी। उन्होंने लिखा था: "इस काल के प्राय: सभी लेखक एक प्रकार के भोंडे विधानवाद का, या इससे भी ज्यादा भोंडे गणतंत्रवाद का प्रचार करते थे। उनकी, और खासतौर से घटिया किस्म के साहित्यिकों की, अपनी कृतियों में कौशल के अभाव को छिपाने के लिए ऐसे राजनीतिक संकेतों का सहारा लेने की आदत बनती जा रही थी जो बरबस ध्यान खींचने वाले हों। कविता, उपन्यास, आलोचनाए, नाटक, हर साहित्यिक कृति उस तथाकथित "उद्देश्य-परकता" में—अर्थात सरकार-विरोधी भावना के कम-व-बेश दक्ष प्रदर्शन में—डूबी हुई थी।"[१]

इसी प्रकार बालजाक पर मिस हार्कनैस को करीब चालीस साल बाद लिखे गये अपने पत्र में उन्होंने और भी साफ शब्दों में अपना मत व्यक्त किया। "यह बिल्कुल न समझना," उन्होंने लिखा: "कि मैं तुम्हें लेखक के सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों को गौरवान्वित करने के लिए एक नकली समाजवादी उपन्यास—एक 'टेन्डेन्ज रोमन'[२] मार्का उपन्यास, जैसा कि हम जर्मन कहते हैं—न लिखने के लिए दोष देना चाहता हूं। नहीं, यह मेरा तनिक भी अभिप्राय नहीं है। लेखक के विचार जितना अधिक प्रच्छन्न रहें, कलाकृति के लिए यह उतना ही अच्छा है। जिस यथार्थवाद की ओर मेरा संकेत है, वह तो लेखक के विचारों के बावजूद भी फूट पड़ सकता है।"[3] मार्क्स और ऐंगेल्स जिस चीज पर वास्तव में जोर देते थे वह यह कि कलाकृति लेखक के विश्व दृष्टिकोण के अनुकूल होनी चाहिए, कारण कि केवल वह दृष्टिकोण ही उसे कलात्मक एकजुटता प्रदान कर सकता है। किन्तु लेखक को कभी भी अपने विचारों को थोपना न चाहिए। यह न मालूम हो कि दृष्टिकोण का प्रचार किया जा रहा है, परिस्थितियों और खुद पात्रों के द्वारा वह प्रकट

रूप में व्यक्त हो। यही सच्ची उद्देश्यपरकता है, ऐसी उद्देश्यपरकता जो सभी महान कलाकृतियों को सारगर्भित बनाती है और जिसे—जैसा कि ऐंगेल्स ने एक अन्य भावी समाजवादी उपन्यास-लेखिका, कार्ल की मां मिन्ना कौट्स्की को बताया था—एस्काइलस और अरिस्तोफेनेस में, तथा दान्ते और सर्वेण्टीज में देखा जा सकता है, समसामयिक रूसी और नौर्वे के उपन्यासकारों में वह वर्तमान है जिन्होंने "शानदार उपन्यासों की रचना की है, और ये उपन्यास सब-के-सब उद्देश्यपरक हैं। किन्तु मेरी राय में उद्देश्यपरकता का उदय बिना उस पर विशेष जोर दिये परिस्थिति तथा कर्म में से अपने-आप होना चाहिए, और यह कि लेखक इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि जिन सामाजिक द्वन्द्वों का वह चित्रण करता है, उनका कोई बनाबनाया ऐतिहासिक हल भी वह पाठकों को दे।"[1]

इस विचार को इसी पत्र में और आगे विकसित करते हुए उन्होंने बताया कि आधुनिक परिस्थितियों में लेखक के पाठक अधिकांशतः बुर्जुआ वर्ग से निकलेंगे, और यह कि "इसलिए मेरी राय में वास्तविक सामाजिक सम्बंधों का वर्णन कर, उनके बारे में सापेक्ष भ्रमों को नष्ट कर, बुर्जुआ जगत की आशावादिता को उलट-पुलट कर, वर्तमान समाज व्यवस्था की चिरन्तनता में सन्देह के बीज बोकर, समाजवादी उद्देश्यपरक उपन्यास अपना ध्येय पूर्णतया प्राप्त कर लेता है, यद्यपि ऐसा करते समय लेखक कोई सुनिश्चित हल नहीं प्रस्तुत करता, और कभी-कभी तो इस या उस पक्ष का समर्थन तक नहीं करता।"[2]

लेखक का काम उपदेश झाड़ना नहीं, बल्कि जीवन का एक वास्तविक, ऐतिहासिक, चित्र प्रस्तुत करना है। पुरुषों और स्त्रियों की जगह कठपुतलियों को खड़ा करना, हाड़ और मांस की जगह लगे-बंधे विचारों से काम लेना, सन्देहों, पुराने नाते-रिश्तों, रीति-रिवाजों और लगावों से ग्रस्त वास्तविक लोगों की जगह "नायकों" तथा "खल-नायकों" की बारात सजाना अत्यंत सुलभ है, किन्तु ऐसा करना उपन्यास लिखना नहीं है। संभाषण बेकार हैं यदि हम जीवन की उन तमाम प्रक्रियाओं को नहीं समझते जो कि संभाषणों के पीछे छिपी हैं। निश्चय ही पात्रों के अपने

राजनीतिक विचार हृ सकने हैं और होन चाहिए भा किन्तु शत यह है कि वे पात्रों के अपने ही विचार हों, लेखक के विचार नहीं। कभी-कभी यह भी हो सकता है कि किसी पात्र के विचारों में और लेखक के विचारों में कोई अन्तर न हो, किन्तु ऐसी स्थिति में भी उन्हें पात्र की ही आवाज में प्रकट होना चाहिए। इससे यह परिणाम भी निकलता है कि उस पात्र की अपनी निजी आवाज, उसका अपना व्यक्तिगत इतिहास होना चाहिए।

क्रान्तिकारी लेखक पार्टी लेखक होता है, उसका दृष्टिकोण उस वर्ग का दृष्टिकोण होता है जो एक नयी समाज व्यवस्था के निर्माण के लिए संघर्ष कर रहा है, इसलिए यह और भी जरूरी है कि उसकी कल्पना अधिकाधिक विस्तार में उड़ानें भर सकती हो, उसकी रचनात्मक शक्ति अत्यंत पैनी हो। वह अपने दलगत उद्देश्य को पूरा करता है एक नये साहित्य की रचना में योग देकर—ऐसे साहित्य की रचना में योग देकर जो ह्रासकालीन बुर्जुआ वर्ग के अराजकतापूर्ण व्यक्तिवाद से मुक्त हो। यह काम वह आज के किसी एक या दूसरे सवाल पर पार्टी के नारों को उद्धृत करके नहीं, बल्कि अपने दृष्टिकोण की मांग के अनुसार दुनिया का वास्तविक चित्र पेश करके ही कर सकता है। वह उस चित्र को तब तक सच्चा नहीं बना सकता जब तक कि वह स्वयं एक सच्चा मार्क्सवादी, परिष्कृत दार्शनिक दृष्टिकोण से लैस एक द्वन्द्वशास्त्री नहीं बनता। अथवा, यदि फील्डिंग के शब्दों में कहना चाहें तो, जब तक कि वह अपने समय के ज्ञान में पांडित्य हासिल करने का वास्तविक प्रयास नहीं करता।

कलाकार की इस व्याख्या का अर्थ यह है कि जीवन सम्बंधी उसके ज्ञान-क्षेत्र से कुछ भी बहिष्कृत नहीं है। सर्वहारा साहित्य[१] अभी बहुत ही अल्प आयु है, सोवियत संघ से बाहर उसकी आयु दस साल से भी कम है, और उस पर बहुधा यह आरोप लगाया जाता है कि वह—कम-से-कम पूंजीवादी देशों में—केवल खास किस्म के लोगों का, और इन लोगों के भी कुछ गिने-चुने पहलुओं का, अधिकतर चित्रण करता है। हड़ताल के नेता, पूंजीवादी "बौस," नये विश्वास की खोज करते बुद्धि-जीवी—और बस, नये लेखक इससे आगे जाने का साहस नहीं करते,

और इन पात्रों को भी हाड़-मास से युक्त जीवित आदमियों के रूप में चित्रित करने में बहुत ही कम मात्रा में सफल होते हैं। एक हद तक यह आरोप सही है, हालांकि आरोप करने वालों ने महाकाव्य के गुणों से युक्त मालरो[1] की कहानियों को, राल्फ बेट्स[2] के दो उपन्यासों तथा जौन डौस पैसोस[3] और एर्स्काइन काल्डवैल[4] की कृतियों को भुला दिया है। फिर भी क्रान्तिकारी उपन्यासकार का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसमें हर मानव चरित्र, हर भाव, व्यक्तित्वों का प्रत्येक द्वन्द्व आ जाता है—कुछ भी उससे बाहर नहीं है। सच तो यह है कि केवल उससे ही हम अपने युग के नायक के चित्रण की आशा कर सकते हैं, उसकी लेखनी से ही आधुनिक जीवन का पूर्ण चित्र निकल सकता है, कारण कि उस जीवन की सचाई को देखने की क्षमता केवल उसमें ही पाई जाती है। यह सही है कि क्रान्तिकारी लेखकों के ऐसे उपन्यासों की संख्या बहुत कम है जो उन दोषों से मुक्त हों जिनकी मार्क्स तथा एंगेल्स आलोचना कर चुके हैं। इससे पहले कि नया साहित्य अपने कर्तव्य को पूरा करने में समर्थ हो, अभी बहुत कुछ करना बाकी है, और यह बात तो सच है ही कि महान उपन्यास पाने से पहले महान उपन्यासकारों का होना जरूरी है। इसके प्रतिकूल सन्देहवादियों को यह याद दिलाना अच्छा होगा कि आज की दुनिया में विचारों के इस भयानक संघर्ष में बुर्जुआ वर्ग के श्रेष्ठतम लेखकों में से अधिकांश तेजी से वामपक्ष की ओर चले आ रहे हैं, और यह कि इस झुकाव के फलस्वरूप जाने-माने क्रान्तिकारी लेखकों से उनका सम्पर्क स्थापित हो रहा है। इस सम्पर्क के फलस्वरूप यह आशा करना असंगत न होगा कि प्रतिभा का वह उवर्रण होगा, जो हम सभी चाहते हैं, कारण कि इस निबंध से यह बात काफी स्पष्ट हो गयी होगी कि क्रान्तिकारी के लिए अतीत की विरासत में जो कुछ भी प्राणवान और आशापूर्ण है, वह भी स्वीकार्य है, और भविष्य के निर्माण के लिए वर्तमान में जो कुछ भी उपयोगी है, उसे भी वह अंगीकार करता है।

दस

सजीव मानव

जीवन के अपने नये चित्र में किस तरह के मानव को आप दिखाएंगे? पाठक इस स्थल पर यह प्रश्न करना चाह सकते हैं। वे पूछ सकते हैं—उस हठीले, मनचले, झगड़ालू और रागात्मक जीव को आप अपनी पुस्तक के पन्नों में कैसे उतारेंगे? मानव जो अपने अन्दर और बाहर संघर्ष में जुटा है, मानव जो मुसीबतें सहता है, प्रेम और घृणा करता है, अपनी निधि की रक्षा के लिए लड़ता है, मानव जो क्रान्तिकारी है—कैसे आप उसका निर्वाह करेंगे?

सवाल जितने सीधे-सच्चे हैं, उनके उत्तर उतने ही कठिन हैं। आइए, इनमें से एक को—क्रान्तिकारी को, और विशेष रूप से मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी को—जरा निकट से देखें। हालांकि यह जरूरी नहीं है कि प्रत्येक क्रान्तिकारी उपन्यास में क्रान्तिकारियों का, या मजदूर वर्ग के जीवन तक का, चित्रण होना ही होगा, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि अन्ततोगत्वा इस तरह के उपन्यासों का भविष्य उनकी इस क्षमता पर निर्भर है कि वे एक प्रतिनिधि के रूप में और एक व्यक्तिगत मानव के रूप में क्रान्तिकारी का कलापूर्ण चित्र देने में सफल होते हैं या नहीं। हमें स्वीकार करना चाहिए कि अब तक इसमें सफलता नहीं मिली है। क्रान्ति सम्बंधी उपन्यासों में सबसे कमजोर चित्रण अगर किसी का दिखायी देता है तो वह क्रान्तिकारियों का। इन उपन्यासों में शोलोखोव, मालरो और बेट्स जैसे लेखकों के लिखे हुए जो सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं, उनके बारे में भी यह बात सच है। शोलोखोव के कम्युनिस्ट नायकों में स्फूर्ति है, शक्ति है, इच्छा की दृढ़ता है, वे जीते-जागते और विश्वसनीय हैं, फिर

भी वे सुगठित, सुडौल, चलते-फिरते मानवों की जगह सपाट आकृतियां अधिक लगते हैं। मालरो और बेट्स के पात्र बहुधा कम्युनिस्टों के रूप में तो विश्वसनीय लगते हैं, किन्तु मानवों के रूप में नहीं। पेशेवर क्रान्तिकारी के (उस व्यक्ति के जिसका समूचा जीवन क्रान्तिकारी संगठन और नेतृत्व के लिए अर्पित है) मनोभाव ऐसे नहीं होते जैसे कि मालरो और बेट्स अपने नायकों में दिखाते हैं।

निस्संदेह, इस सिलसिले में, यह याद रखना आवश्यक है कि किसी क्रान्तिकारी ध्येय की सेवा में जीवन अर्पण करने वाले व्यक्ति के रूप में क्रान्तिकारी का चरित्र, एक ऐसा नया चरित्र है जिसे पूंजीवादी समाज ने खास तौर से उन्नीसवीं शताब्दी में पैदा किया है। वह विक्टर ह्यूगो की कृतियों में प्रकट होता है; फ्लौबर्ट भी उसके अस्तित्व को स्वीकार करता है, किन्तु उसे उसके निकृष्टतम रूप में—१८४८ के निम्न मध्य-वर्गीय राजनीतिज्ञ के रूप में देखता है, एक ऐसे प्रतिनिधि चरित्र के रूप में जिसका, मार्क्स और ऐंगेल्स ने, १८४८ की क्रान्ति-सम्बंधी अपनी कृतियों में घातक सचाई के साथ विश्लेषण किया था। और विचित्र बात यह कि मेरेडिथ का ध्यान भी उसकी ओर गया और उसने इटली के क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी *विट्टोरिया* तथा *सान्द्रा बेलिनी* के रूप में उसका चित्र खींचने की चेष्टा की।

दोस्तोवस्की और तुर्गनेव ने, जिन्हें रूस के अराजकवादी आन्दोलन के प्रति एकबारगी आकर्षण भी हुआ और घृणा भी, बाकुनिन के मित्र और कुटिल प्रतिभा नेचाईव के विचित्र घिनौने चरित्र को अपने उपन्यास *संत्रस्त* और *धुंआ* में उठाया और उसकी छवि के द्वारा रूस के समूचे प्रगतिशील आन्दोलन को, अनुचित ढंग से, परिहास का लक्ष्य बनाने की चेष्टा की। इसके काफी समय बाद, हमारे अपने काल में, कोनराद ने भी अपने उपन्यास *पश्चिम की नजरों में* नेचाईव को फिर उसी उद्देश्य से उठाया, हालांकि कोनराद का राजनीतिक लक्ष्य उसके महानतर अग्रजों से भिन्न था।

इन सभी उपन्यासकारों में एक विशेषता समान रूप में मिलती है। वह यह कि इन्होंने अपने क्रान्तिकारियों को मध्यम वर्ग में से, विगत

शताब्दी के राष्ट्रवादी लोकतांत्रिक या अराजकवादी आंदोलनों में से लिया है। आलोचनात्मक दृष्टि से वे उसकी छवि का निर्माण करते हैं —समाज के विरुद्ध राजनीतिक विद्रोह में जुटे इस व्यक्ति के प्रति कभी घृणा का अनुभव करते हुए, कभी उसकी कुछ विशेषताओं के प्रति आकर्षित होते हुए। जब हम उनके बारे में सोचते है तो यह स्वीकार करना पडता है कि मार्क्स और एंगेल्स ने—जो स्वयं क्रान्तिकारी थे—इस प्रकार के क्रान्तिकारी पर कहीं अधिक सख्त किन्तु सन्तोषजनक आक्रमण किया था, और उनका वह आक्रमण अधिक सन्तोषजनक इसलिए था कि उन्होंने हमारे आज के वास्तविक क्रान्तिकारी के साथ, पूंजीवादी समाज के विरुद्ध लड़ते हुए मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी के साथ उसके सम्बंध को पहचाना था। उनकी आलोचना नकारात्मक नहीं थी, वह ऐसी दो विभूतियों की सक्रिय आलोचना थी जो मानवता को, उसके इतिहास के सबसे महान कार्य को सम्पन्न करने के योग्य बनाने के लिए अस्त्रों से लैस कर रहे थे।

इन तमाम बातों के बावजूद मजदूर वर्ग का क्रान्तिकारी उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य में फिर भी प्रकट हुआ, और शान के साथ प्रकट हुआ। मार्क रुदरफोर्ड के उपन्यास *टैनर्स लेन में क्रान्ति* का नायक जकारिया कोलमैन, छापेखाने का मजदूर, इतना जानदार है कि उसे अमर कहा जा सकता है। खुद उपन्यास का जहां तक सम्बंध है, उसमें भारी दोष हैं—सच तो यह है कि उसमें लगभग सभी सम्भव दोष मौजूद हैं—किन्तु उसके चरित्र-चित्रण—जकारिया, जां कैलौ, दोनों पौलीनो के चरित्र—की सच्चाई और प्रबल शक्ति, तथा उसका गम्भीर गद्य जो इन जोशभरे और मुसीबतों में फंसे लोकतन्त्रवादियों को इतनी पूर्णता के साथ व्यक्त करता है, इस उपन्यास को जीवित रखेंगे।

जकारिया "स्वभाव से कवि था; मूलतः कवि, क्योंकि वह हर उस चीज से प्यार करता था जो उसे घिसी पिटी बातों से ऊपर उठाती थी। ईसाइयाह, मिल्टन, तूफान, क्रान्ति, अदम्य अनुराग—ये सब उसकी आत्मा के सखा थे।" उसकी कल्पना की कविता और उसके जीवन के गद्य के बीच उसकी जिन्दगी में कोई खाई नहीं थी। गरीबी, पहला

दुःखद विवाह, उत्पीड़न की कटुता, कारावास, धार्मिक संशय---जकारिया में ये सब जीवन को बदलने की एक अदम्य इच्छा-शक्ति का, उसके क्रान्ति-गीत का रूप धारण करते हैं, पौलीन के साथ उसके दूसरे विवाह में पल भर के लिए जिसकी सांसरिक परितुष्टि होती है।

जीवन में गद्य और कविता का यह मिलन उसे अपने प्रति सच्चा रहने की प्रेरणा देता है, जिससे कि अपने जीवन के अन्त में यह वृद्ध लोकतंत्रवादी टैनर लेन के उस लौह मजदूर से यह कहने की ताब रखता है: "मैं विद्रोह में विश्वास करता हूं ..विद्रोह न्याय में मानव के विश्वास को सुदृढ़ बनाता है . विद्रोह दूसरों के विश्वास को भी दृढ़ बनाता है। जब गरीबों का एक दल मिल बैठ कर घोषणा करता है कि स्थिति यहां तक बिगड़ चुकी है कि या तो वे अपने दुश्मनों का काम तमाम कर देंगे, या खुद खत्म हो जायेंगे, तब दुनिया सोचने के लिए बाध्य होती है कि आखिर न्याय और अन्याय में कोई फर्क होना ही चाहिए!"

लौंग एकर या श्रू ब्रेन छापेखाने का क्रान्तिकारी मजदूर आज अपने-आप को दूसरे ढंग से व्यक्त करेगा, किन्तु जकारिया कोलमैन तथा उस जैसे अन्य हजारों मजदूर अगर पहले रास्ता न बना गये होते तो उसका यह रूप न होता। कोलमैन की सादगी, उसका यह निश्छल विश्वास कि बुराई पर भलाई की विजय होकर रहेगी, कभी-कभी हमें बड़े दयनीय मालूम होते हैं जब हम देखते हैं कि कितनी आसानी से उनका दुरुपयोग किया जाता है, किन्तु यह सब होने पर भी उसकी शक्ति, उसकी काव्य-मयता, अपने वर्ग में उसका विश्वास इस समय भी एक ऐसा स्रोत बना हुआ है, जिससे आज का क्रान्तिकारी शक्ति संचय कर सकता है। उपन्यास के समूचे दौरान में कोलमैन का विश्वास कभी नहीं बदलता, किन्तु वह स्वयं बदलता है, वह जीता है, मार खाता है, लेकिन आत्म-समर्पण नहीं करता, और जीवन के साथ उसके संघर्ष में उसके चरित्र का विकास होता है।

किन्तु रुदरफोर्ड की कृति से भी महान एक अन्य कृति वह है जिसे हम इस शताब्दी का सच्चा क्रान्तिकारी महाकाव्य कह सकते हैं। निश्चय ही यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, इसका विषय स्पेन के उत्पीड़कों के

विरुद्ध फ्लेमिश जनता का मुक्ति युद्ध है और अनेक स्थलों पर तो यह लोकसाहित्य के निकट अधिक मालूम होता है, इतिहास के कम। इस उपन्यास का नाम है *तिल उलेनस्पाइगल* और इसका लेखक चार्ल्स द कौस्टर भली भांति जानता था कि उसका उपन्यास हमारे काल के लिए भी एक क्रान्तिकारी उपन्यास है। अपनी भूमिका में, जिसे स्वर्गीय सर एडमण्ड गौस ने अंग्रेज पाठकों की नफासत का ध्यान रख कर अंग्रेजी संस्करण से निकाल दिया, चार्ल्स द कौस्टर अपने उल्लूचश्म (आउल ग्लास) के आधुनिक उपयोगों पर जोर देते हैं और यह कहने में जरा भी नहीं हिचकिचाते कि हमारे अपने समय में भी उसी थैली के चट्टे-बट्टे—अन्य स्पेनी आक्रमणकारी और उत्पीड़क—मौजूद हैं जिनसे हमें लड़ना है और जिन्हें परास्त करना है। यहां भी क्रान्ति की कविता का जीवन के गद्य के साथ मेल दिखाई देता है, किन्तु इस अन्तर के साथ कि कौस्टर की कविता जकारिया कोलमैन के समान पुराने टेस्टामेंट से नहीं, बल्कि फ्लैण्ड्र्स की लोक गाथाओं से अनुप्राणित थी।

कौस्टर ने सच्चे अर्थ में केवल एक आधुनिक महाकाव्य की ही रचना नहीं की, बल्कि एक ऐसी चेतना और मनोवैज्ञानिक समझ का भी परिचय दिया जो उनके समय के लिए कहीं आगे बढ़ी हुई थी, इतनी आगे कि फ्रायड के हमारे शिष्यों में से एक भी उस तक नहीं पहुंच सका। और इसका भी ठोस कारण था। उनकी मनोवैज्ञानिक समझ जीवन के निरीक्षण का परिणाम थी, उन्होंने उसे पाठ्य-पुस्तकों से उधार नहीं लिया था। यह पुस्तक, जिसमें धरती और आम लोगों के जीवन की कविता, अनगढ़ स्वस्थ हास्य, हार्दिक संवेदनशीलता, सच्चा प्रेम, साहस और भक्ति का धनिकों और सत्ताधारियों के प्रति घृणा तथा ढोंग और धार्मिक पाखण्ड से नफरत के साथ सम्मिश्रण है, उत्पीड़न के विरुद्ध मानव के विद्रोह की आत्मा को—उसके सार-तत्व को—व्यक्त करती है। यह एक विश्व-पुस्तक है। कब्र को तोड़ कर छींकता हुआ और बालों से रेत को झाड़ता हुआ उठ खड़ा होने वाला तिल उस नयी दुनिया की प्राप्ति के निमित्त लड़ने वाले साधारण मानव के पुनर्जी उठने का प्रतीक है, जिसमें मानव के दोहरे मूल्य न होंगे, बल्कि केवल वह

स्वय होगा—उन्मुक्त और जीवन का स्वामी। उसे कब्र में से उठता देख नगरपति तथा मुखिया के—पाखण्डियों की दुनिया के इन मनहूस प्रतिनिधियों के—होश गुम हो जाते हैं, पादरी को वह गले से दबोच लेता है जिसने भिखारी उलेनस्पाइगल की मृत्यु पर भगवान का गुणगान किया था।

"'यम के दूत,' तिल ने कहा : 'तुमने मुझ सोये हुए को जीते-जी धरती में दफना दिया। नेली कहां है ? क्या तुम उसे भी कहीं दफना आए हो ? आखिर तुमने अपने को समझा क्या है ?'

"पादरी चिल्ला उठा :

"'महा भिखारी फिर इस दुनिया में लौट आया। ऐ खुदा, मुझ पर रहम कर !'

"और वह वहां से भाग गया—जैसे शिकारी कुत्तों को देख कर हिरण भागता है।

"नेली उलेनस्पाइगल के निकट आ गई।

"'मुझे चुम्बन दो, मेरी रानी,' उसने कहा : 'क्या कोई,' वह बोला, 'मां फ्लैण्डर्स के हृदय नेली और उसकी आत्मा उलेनस्पाइगल को दफना सकता है ? वह भी, सो तो सकती है, मर नहीं सकती। नहीं, कभी नहीं। आओ नेली, चलो आओ।'

"और वह उसे साथ लेकर आगे बढ़ चला। वह अपना छठा गीत गा रहा था, किन्तु यह कोई नहीं जानता कि उसने अपना अन्तिम—सब से अन्तिम—गीत कहां गया।"

वह अन्तिम गीत अभी गाया नहीं गया है, किन्तु हम जानते हैं कि उसका सार क्या है।

"और दलदल के अगिया-बैतालों ने कहा :

"'हम आग हैं, अब तक जितना आंसू बहाया गया है, जनता ने जितनी मुसीबतें झेली हैं, हम उसका प्रतिशोध हैं; हम प्रतिशोध हैं उन श्रीमन्तों के, जिन्होंने अपनी जमीन पर मानव-जीवों का शिकार खेला है; हम निष्फल युद्धों के, कैदखानों में बहे खून के, जिंदा जलाए गए पुरुषों और जीवित दफनाए गए स्त्रियों और बच्चों के प्रतिशोध हैं; हम बेड़ियों

में जकड़े हुए और रक्त रिसते अतीत का प्रतिशोध हैं। हम आग हैं; हम उनकी आत्माएं हैं जो अब इस संसार में नहीं रहे!'

"इन शब्दों के साथ ही सातों (दुर्व्यसन) लकड़ी के बुत बन गए, उलेनस्पाइगल ने उनमें आग लगा दी, वे जल कर राख हो गए, खून की एक नदी बह चली और राख में से सात अन्य आकार प्रकट हुए। पहले ने कहा :

"'मेरा नाम था गर्व; महान आत्मा मुझे कहा जाता है।'

"इस ढंग से अन्य ने भी अपना परिचय दिया और उलेनस्पाइगल तथा नेली ने देखा कि जहां लिप्सा थी वहां अब किफायतश्यारी मौजूद है, गुस्से का स्थान प्रफुल्लता ने ले लिया है, चटोर-पेटूपन की जगह सहज भूख का, ईर्षा की जगह होड़ का और कहिली की जगह कवियो और द्रष्टाओं के उल्लास का उदय हुआ है। और अपनी बकरी पर बैठी वासना ने रूप धारण कर लिया है एक सुन्दर स्त्री का जिसका नाम था प्रेम।

"और दलदल के अगिया-बैताल घेरा बनाकर उनके चारों ओर खुशी से नाचने लगे।

"तभी उलेनस्पाइगल तथा नेली ने हजारों अदृश पुरुषों और स्त्रियो की आवाजे सुनी, संगीतमय और हंसती हुई आवाजें, जो खड़तालों की सी ध्वनि में गा रही थीं :

"जब जल-थल पर राज करेंगे,
ये रूप बदलने वाले सात।
लोगों, लखो निडर हो नभ को
स्वर्निम युग का हुआ प्रभात!"

ये दोनों पुस्तके, *टैनर्स लेन में क्रान्ति* और *उलेनस्पाइगल*, इसलिए इतनी शक्तिशाली और प्राणवान हैं कि वे राष्ट्रीय भावना में, इंग्लैण्ड और बेल्जियम की जनता की भावना में, पगी हैं। कोलमैन इंग्लैंड के गरीब लोगों के तमाम संघर्षों का मूर्त्त रूप है, सीधे लड्डाइटों से उसका नाता है, सत्रहवीं शताब्दी के प्यूरिटनों से लेकर अट्ठारहवी

शताब्दी के वेस्लेयान के खान-मजदूरों[1] तथा शुरू के चार्टिस्टों तक की मंजिल उसने तय की है। वह एक ऐसा प्रोटेस्टेंट है जिसे हमारे शासकों ने कभी स्वीकार नहीं किया, और उसका प्रोटेस्टेंटवाद आज भी धार्मिक लबादे से मुक्त होकर, आधुनिक मजदूर आंदोलन के रूप में जीवित है। तिल में रोबिन हुड और कोलमैन — दोनों का सम्मिश्रण है, वह धरती है और आत्मा है, एक तगड़ा भिखारी है और धार्मिक उत्पीड़न के खिलाफ मानव की आत्मा की आवाज है। वह लोक साहित्य का जीवित रूप है, हमारे रक्त में गर्मी लाता है तथा उसकी रवानी को तेज बनाता है।

सामयिक लेखक साधारण मानव के बारे में उतने सहज भाव से नहीं लिख पाता जितने सहज भाव से द कौस्टर या मार्क रुदरफोर्ड लिखते थे। मजदूर वर्ग के पुरुष या स्त्री के चित्रण का कार्य उसे परेशानी में डाल देता है। इसका कारण केवल यही नहीं है कि मजदूर वर्ग के लोगों के मुह में जबान नहीं है। उनमे अनेक मूक है, किन्तु समग्र रूप मे उन्हे मानवमात्र से अधिक मूक नहीं कहा जा सकता। अमरीकी लेखकों के एक पन्थ ने, जिसमें हेमिग्वे सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है, एक हृदयहीन, किन्तु सीधे-सादे और गूंगे टाइप के मजदूर की रचना की है। वह मुसीबतो की भट्टी में तपा है, और हेमिग्वे की प्रतिभा ने उसे सशक्त, सादी और फुटकल शब्द उच्चारण कर सकने वाली गूगी वाणी प्रदान की है। इस वाणी के साथ वह बिना शिकायत किए (इसलिए कि अनजाने में) मुक्केबाज, सांडों से युद्ध करने वाले, बन्दूकबाज, भोजन परोसने वाले, अस्तबल के नौकर या सैनिक के रूप में जो दुःखद जीवन उसकी प्रतीक्षा कर रहा है, उसे स्वीकार करने के लिए निकल पड़ता है। अमरीकी उपन्यासकारों के इस मजदूर-चरित्र को विण्डहम लेविस ने "गूगा पशु" की संज्ञा दी है। जीवन की उस कुत्सा तथा गंदगी के सामने जो इस हद तक उन्हें निरन्तर घेरे रहती है, निस्सन्देह वे बहुत ही निष्क्रिय पदार्थ हैं।

क्या यह मजदूर का सच्चा चित्र है? निश्चय ही नहीं। सातवें और आठवें दशक में लन्दन का फुटकल मजदूर भी — जो कि अत्यंत दुःखी

प्राणी था—इस तसवीर म मुश्किल से ही फिट किया जा सकता है। एक गूंगे और प्रतिरोध-शून्य जन समुदाय के रूप में मजदूर वर्ग का चित्रण करने वाली इस प्रवृत्ति का, जो कि कुछ समाजवादी उपन्यासकारो मे और साथ ही अमरीका के आधुनिक व्यक्तिवादियों मे पाई जाती है, ऐंगेल्स जोरों से विरोध करते थे। मिस हार्कनेस के नाम अपने पत्र मे, जिसमे से पहले भी उद्धरण दिया जा चुका है, इस रवैये की निन्दा करते हुए उन्होंने लिखा था :

"यथार्थवाद का, मेरी समझ मे, यह तकाजा है कि विवरण की सचाई के अलावा प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि चरित्रों का भी सच्चा चित्र खींचा जाए। तुम्हारे चरित्र, अपनी सीमाओं के अन्दर, काफी प्रतिनिधि तो है; किन्तु उन परिस्थितियों के बारे में यही बात नही कही जा सकती जिनमें कि वे हरकत करते हैं और जो उन्हे अमल के लिए बाध्य करती हैं। *शहरी लड़की* (मिस हार्कनैस के उपन्यास का नाम—रैल्फ फौक्स) में मजदूर वर्ग का एक निष्क्रिय जन समुदाय के रूप में चित्रण हुआ है जो अपनी सहायता स्वयं करने की क्षमता नही रखता, यहां तक कि अपनी सहायता करने की इच्छा भी उसमे नजर नही आती। इस घातक गरीबी से उबरने के सारे प्रयास बाहर से, ऊपर से होते हैं। सेइन्ट-साइमन के शब्दों मे वह 'सबसे अधिक गरीब, सबसे अधिक पीड़ित और सबसे अधिक संख्या वाला' वर्ग है। रौबर्ट ओवन ने उसे 'सबसे गरीब, सबसे गिरा हुआ वर्ग,' कहा है—रैल्फ फौक्स)। मजदूर वर्ग का यह वर्णन १८००–१८१० के लिए, सेइन्ट-साइमन या रौबर्ट ओवन के समय के लिए, भले ही सच्चा हो, किन्तु इसे १८८७ के लिए सच्चा नही माना जा सकता, विशेष रूप से एक ऐसा आदमी तो इसे कभी सच्चा नही मान सकता जिसे लड़ाकू सर्वहारा के संघर्षों में लगभग पचास साल तक हिस्सा लेने का गौरव प्राप्त है और जिसने हमेशा इस सिद्धान्त को माना है कि मेहनतकश वर्ग की मुक्ति स्वयं उसके अमल के द्वारा होनी चाहिए। अपने वातावरण के उत्पीडन के विरुद्ध मजदूर वर्ग का क्रान्तिकारी प्रतिरोध, मानवीय अधिकारों के लिए उसके सरगर्म प्रयास—वे चेतन हों चाहे अर्द्धचेतन—इतिहास का

हिस्सा बन चुके है और वे यथार्थवाद के क्षेत्र में स्थान पाने का दावा कर सकते हैं।"[1]

मजदूर वर्ग के बारे मे यह गलत दृष्टिकोण, जिसके लिए ऐंगेल्स ने मिस होर्कनेस को उलाहना दिया था, आज अधिकांश बुद्धिजीवियों ने, और विशेष रूप से कथा-साहित्य के लेखकों ने, अपना रखा है। इतना ही नहीं, बल्कि वे उसका दामन और भी जोरों से पकड़े हुए है, कारण कि एक ओर तो वे बडे पैमाने पर उत्पादन के रूप में प्रकट होने वाले अत्यधिक यंत्रीकरण की उस बढ़ती का अनुभव करते हैं जिसने मजदूर की निजी पहलकदमी को नष्ट कर उसे मशीन का एक पुर्जा मात्र बना दिया है, दूसरी ओर फासिज्म के खौफ का शिकार होकर वे मजदूर को दोष देने लगते है। उनकी दृष्टि में मजदूरों की मशीन-तुल्य आज्ञाकारिता ही ऐसी सामूहिक गुलामी को सम्भव बनाती है। इस प्रकार उनकी शिकायतें फ्लोबर्ट की शिकायतों की ही गूंज हैं, जो जन साधारण को इस बात के लिए दोषी ठहराता था कि उसने (सार्वभौमिक मताधिकार के द्वारा) लुई नैपोलियन बोनापार्ट की तानाशाही की स्थापना में सहायता की।

मजदूर वर्ग के जीवन की सचाई से इसका दूर का भी वास्ता नही है। हड़तालों के आंकड़ों तथा उनके कारणों की संक्षिप्त सूची पर सरसरी नजर डालने से ही यह धारणा मिथ्या सिद्ध हो जाती है। सत्य यह है कि जन साधारण को मशीन बनाने के प्रयासों के विरुद्ध एकमात्र मजदूर वर्ग ही है जो संघर्ष करता है, एकमात्र मजदूर वर्ग ने ही मशीन या मानव के हमले के विरुद्ध संघर्ष का सारा बोझ अपने कंधों पर उठाया है। एक दिन भी ऐसा नहीं बीतता जब, प्रत्येक फैक्टरी में—चाहे वह छोटी हो या बड़ी—कोई-न-कोई अधिक या कम गम्भीर घटना न घटती हो। फोरमैन को कोसने-गाली देने जैसे इक्के-दुक्के, हल्के और व्यक्तिगत विरोध हो या अधिक जोरदार सामूहिक कार्रवाई, लड़ाई कभी नही रुकती।

एल्मर राइस[2] तथा "अभिव्यक्तिवादी" (ऐक्सप्रेशनिस्ट) पन्थ के अन्य लेखकों के नाटकों, हक्सले की *वीर नयी दुनिया*, इस तरह

की अन्य दर्जनों पुस्तकों, नाटकों और फिल्मो ने यंत्रचलित मानव — जो अज्ञान में डूबा, निरा शून्य, कोल्हू के बैल के समान है — के विकास की धारणा का पोषण किया है। यह सत्य का अत्यंत विकृत रूप है युग के वास्तविक मानवीय संघर्षों से बुद्धिजीवी के अलगाव का, जिस यन्त्रीकरण से वह इतना डरता है, उसके विरुद्ध लड़ने वाली किसी शक्ति को न देख पाने के कारण उसकी निराशा का, परिणाम है। फिर भी हर हड़ताल, बल्कि यू कहना चाहिए कि कारखाने के जीवन का प्रत्येक दिन, व्यक्तिगत पहलकदमी, सूझबूझ, साहस और चरित्र-बल को, मानव के शरीर और मस्तिष्क को गुलामी के शिकंजे में जकड़ने की इस कोशिश के खिलाफ, वातावरण के यांत्रिक दबाव के खिलाफ उसके विद्रोह के अंग के रूप में विकसित करता है। निश्चय ही इस बात को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता कि कारखाने में मानव को दास बनाने की इस कोशिश के साथ-साथ लोगों के मस्तिष्क पर एक और भी ज्यादा खतरनाक तथा कहीं अधिक बड़ा हमला किया जा रहा है। वस्तुगत दृष्टि से, सभ्य जीवन के स्थापित मूल्यो के आधार पर किसी समाचार पत्र को पढ़ना, फिल्म देखना, किसी नाटक या उपन्यास की आलोचना करना, हमारे लिए विरल हो गया है। अगर हम इन मूल्यों की कसौटी पर परख कर देखें तो इस निर्णय पर पहुंचे बिना नहीं रहा जा सकता कि हमारे युग का बड़े-पैमाने में उत्पादित बौद्धिक जीवन का अधिकांश भाग ऐसे पागल लोगों की बहक की उपज है जो हर प्रकार की मानसिक तथा नैतिक विकृति से ग्रस्त हैं।

शिक्षा-प्रणाली, जिसे पूंजीवाद ने दृढ़ता से अपने चंगुल में दबोच रखा है, स्त्री-पुरुषों के लिए उस घातक हमले से अपना बचाव करना और भी कठिन बना देती है, जो कि उनकी चेतना-इन्द्रियों के रास्ते उनके मस्तिष्कों पर हो रहा है। भ्रष्टाचार का, आध्यात्मिक भ्राष्टाचार का, व्यापक प्रसार है और वह इस मानसिक खोखलेपन के विनाशकारी प्रभावों के खिलाफ हमारे सामूहिक प्रयास के मार्ग में भयानक बाधा डालता है। किन्तु मजदूर वर्ग पर, इस मायने में भी, निष्क्रियता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। निराशा से पस्त बुद्धिजीवियों के मुकाबिले

भ्रष्टाचार के इस अत्यन्त कुत्सित रूप के खिलाफ वही कहीं अधिक दृढ़ता से संघर्ष कर रहा है। यदि ऐसा नहीं है तो फिर स्वशिक्षा के हजारों केन्द्रों, चलते-फिरते क्लबों, सिनेमा और नाटक सोसाइटियों, सदस्यों की भारी संख्या से युक्त वामपक्षीय पुस्तक-क्लबों का और क्या मतलब है? यदि बुद्धिजीवी भी इस प्रतिरोध संगठन में समूचे हृदय से शामिल हो जांय तो उन्हें इतना कोसने-चिल्लाने की आवश्यकता न पड़े (अनेक, और ये उनके लिए गौरव की बात है, इसमें शामिल हो भी गए हैं)। मूल कठिनाई यह है कि खुद बुद्धिजीवी साफतौर से यह नहीं समझ सका है कि जिस भ्रष्टाचार से सही मानों में वह इतना भयभीत है, वह किसी नैतिक रोग का नहीं, बल्कि ह्रासग्रस्त समाज व्यवस्था का परिणाम है। इसमें दोष अपने-आप में न तो मशीन का है, और न ही सिनेमा का, बल्कि दोष है व्यक्तिगत स्वामित्व का, जो मशीन और सिनेमा, दोनों पर समान रूप में कायम है।

फैक्ट्रियों में बड़े पैमाने पर उत्पादन की प्रणाली की विभीषिकाओं के खिलाफ यह प्रतिरोध अन्ततोगत्वा फैक्ट्रियों में ही सीमित नहीं रह सकता। उसका फैक्ट्री के बाहर आना अनिवार्य है, और वह बाहर आ भी रहा है। इसका सर्वोच्च रूप युद्ध के खिलाफ, फासिज्म और हर स्वरूप की राजनीतिक प्रतिगामिता के खिलाफ प्रतिरोध में प्रकट होता है, मानवीय संस्कृति के सचेत संरक्षण का वह रूप धारण करता है, वह जनता की महान वीरतापूर्ण कार्रवाइयों को जन्म देता है और नये नायक, नये सांचे के स्त्री-पुरुषों की रचना करता है। इस मत से शायद ही किसी का विरोध हो कि हमारे काल में नैतिक गौरव और साहस की एक ऐसी मिसाल मौजूद है जिसे मानवीय इतिहास की महानतम मिसालों के समकक्ष रखा जा सकता है। हमारा आशय लीपजिग की फासिस्त अदालत द्वारा लगाये गये अभियोग के खिलाफ दिमित्रोव के अपने उत्तर से है। और दिमित्रोव के व्यक्तित्व का निर्माण, इन्हीं संघर्षों के दौरान में हुआ, जिनका ऊपर वर्णन कर चुका हूं। बल्गारिया के इस छापाखाने के मजदूर का मानसिक और नैतिक विकास अपने साथी मजदूरों को ट्रेड यूनियनों में एकजूट करने के काम के साथ आरम्भ हुआ,

इसके बाद १९१२ से लेकर १९१८ तक युद्ध के, और फिर, १९२३ में, फासिज्म के, जिसने गैरकानूनी ढंग से देश की लोकतांत्रिक सरकार का तख्ता उलट दिया था, खिलाफ संघर्ष में मजदूर-वर्ग का उसने नेतृत्व किया, और अन्त में समूची मानवता तथा उसकी संस्कृति के रक्षक के रूप में फासिस्त बर्बरता के ताण्डव के खिलाफ लीपजिग की अदालत में वह खड़ा हुआ। कह सकते हैं कि सुकरात की भांति उसका समूचा जीवन मानो अपने इसी बयान की तैयारी में बीता था।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रीशताग अग्निकाण्ड की यह कहानी हमारे युग का एक महाकाव्य है, जिसे मूर्त्त कर कोई भी कलाकार अपनी लेखनी को सार्थक कर सकता है। वह वातावरण अविस्मरणीय है: हिटलर के सत्तापहरण[1] से ठीक पहले का बर्लिन, बाजारों और बीयरघरों में पागलपन का एक ज्वार-सा छाया हुआ, वे जिन्हें अपने हथियार संभालने चाहिएं थे अभी भी मन-ही-मन दोहरा रहे थे कि खतरे की ऐसी कोई बात नहीं है; वे जिनकी जानों पर खतरा मंडरा रहा था, यह समझ कर कि एकता से इन्कार करके लोकतन्त्र ने दुर्ग शत्रु के हाथों में सौंप दिया दिया है, अब गुप्त रूप से संघर्ष जारी रखने की तैयारियों में जुटे थे; और धनिकों के क्लबों में, मन्त्रालयों में, समाचार पत्रों के दफ्तरों में, सैनिक हेडक्वार्टर में, निरंतर साजिश का बाजार गर्म था, अपने-अपने गुट का पक्ष मजबूत करने के लिए सौदेबाजी चल रही थी, जर्मनी के लोकतंत्र को नेस्तनाबूत करने के लिए तैयारियां जारी थी।

इस सब के बीच ठस-दिमाग, विकार-ग्रस्त और आगजनी का शौकीन वान डेर लूब्ब—समाज के प्रति बेमानी घृणा से दहकता और चेतना की उस खतरनाक सीमा-रेखा पर पहुंचा हुआ जो उन दिनों के वातावरण में इतनी फिट बैठती थी—बर्लिन के बाह्य छोरों में मटरगश्ती करता है—शयनघरों में जहां सींग समाता है सो जाता है, राष्ट्रीय-समाजवादी बर्दी पहने कोई तलछटिया मिल जाता है तो बढ़-चढ़कर उससे बातें बनाता है। शायद वह अभी भी पागल है, हालांकि वे पुलिस के जासूस, तूफानी दस्ते के लौंडेबाज सैनिक, स्थानीय नाजी अफसर, जिनसे उसकी मुठभेड़ होती है यह नहीं देख पाते। आगजनी की अपनी

तुच्छ हरकतें करने के लिए, रात को वह बाहर निकलता है, उन लपटों को देखकर चटखारे लेता है जिन्हें लोग आसानी से बुझा लेते हैं, और नाजी समाचार पत्रों के भड़कावा भरे प्रचार की रौ में बहकर अपने-आप को एक महान अग्नि-काण्ड के हीरो के रूप में देखता है। क्या ही मजा आए अगर उस रीशटाग को जलाकर खाक कर दिया जाय, जिसमें दुनिया-भर के बातूनी जमा होते हैं और गरीब को उसके दुश्मनों के हाथ बेंच देते हैं। नाजी जासूस उसके पागल-प्रलाप की एक-दूसरे से चर्चा करते हैं और बात अपने ठिकाने पर पहुंच जाती है। इसके बाद मंच तैयार कर दिया जाता है, नाजी पुराण के अभीष्ट संत बार्थोलोमियो[1] के लिए संकेतस्वरूप लपटें लपलपाने लगती हैं।

शैतानी चक्र के इस भंवर में तीन भले आदमी दुर्भाग्यवश फंस जाते हैं। ये हैं बल्गारी कम्युनिस्ट शरणार्थी। उनकी गिरफ्तारी हिटलर को मनचीता मौका प्रदान करती है। बल्कान के तीन ऐसे "बर्बर" व्यक्ति उसके हाथ लग जाते हैं, जिन्हें वह अपनी आगजनी के लिए जवाबदेह ठहरा सकेगा और दुनिया को वह सचमुच विश्वास दिला सकेगा कि इससे भी कहीं बड़ी आग से सभ्यता को बचाने के लिए उसका अवतरण हुआ है। इसके बाद, टॉर्गलर नाम का एक भीरु, संतुलित दिमाग का, बाइज्जत, ठेठ निम्न मध्य वर्गीय जर्मन इस अभियोग को सुन कर एकदम स्तम्भित रह जाता है कि रीशटाग को जलाने के पागल कृत्य से उसका, एक ऐसे आदमी का जिसने कम्युनिस्ट डिपुटियों के नेता की हैसियत से रीशटाग के अधिवेशनों में इतना महत्वपूर्ण काम किया है—कोई सम्बध हो सकता है। वह इस हद तक विचलित हो उठता है कि खुद अपनी असन्दिग्ध निर्दोषता से इस अभियोग को झूठा सिद्ध करने के लिए अपने-आप को पुलिस के हाथों में सौंप देता है। वह सोचता है : हो सकता है कि जर्मन अदालतें पूर्णतया तटस्थ न हों, यह भी हो सकता है कि पुलिस बर्बता से मुक्त न हो, किन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि एकदम पागल हो।

जेल में इन चार आदमियों को दिन-रात जंजीरों से जकड़ कर रखा जाता है। तीन बल्गारियनों में से दो जर्मन भाषा नहीं समझते। उन्हें एक-दूसरे से अलग रखा गया है। उन्हें बाहर की दुनिया की कोई

खबर नही मिलती। वे केवल इतना जानते हैं कि एक कल्पनातीत और सर्वथा असम्भव अभियोग के लिए उन्हें एक भयानक तथा लज्जाजनक मौत के खतरे का सामना करना पड़ रहा है। उन्हें मारा-पीटा जाता है, पढ़ने के लिए कोई चीज नहीं दी जाती, और कुछ समय के लिए उन्हे अन्धेरी सी कोठरी में तथा जंजीरों में जकड़ कर रखा गया है। मौत से वे नहीं डरते, मौत और यंत्रणा, दोनों का ही अपने देश की जेलों में वे सामना कर चुके हैं। किन्तु वहां कम-से-कम वे इतना तो जानते ही थे कि बाहर उनके अपने साथी मौजूद हैं, जो उनकी लडाई को जारी रखे हैं। यहा तो ऐसा लगता है जैसे उन्हें पागलपन के एक ऐसे अन्धे कुएं में डाल दिया गया हो, जहां केवल जल्लाद की कुल्हाडी की भयानक चमक ही अन्धेरे मे एकमात्र रौशनी है। उनमें से एक, इस तसवीर से त्रस्त होकर, सोचता है कि अगर मरना ही है तो क्यो न वह खुद अपना अन्त कर डाले ? गन्दे हाथों मरने से तो यह कही अच्छा होगा। सो वह अपनी कलाई की एक नस काट डालता है। किन्तु वह मरता नही। आत्म समर्पण से वे दोनों इन्कार करते हैं, किन्तु वे लड़ते भी नहीं। उन्हें संघर्ष का कोई रास्ता नजर नहीं आता कि किस प्रकार वे उस जीवित दुनिया से सम्पर्क स्थापित करें, जिसमें उन्हे बचाने की सामर्थ्य है।

टॉर्गलर पर शीघ्र ही अपनी गलती प्रकट हो जाती है। शिकारी अपने "बाइज्जत" शिकार के आत्माभिमान को भू-लुठित करने मे खूब रस लेते है। वे उसे बताते हैं कि तुम्हें गोली मारी जाएगी : फिर एक अन्धेरे गलियारे में से हांकते हुए उसे ले जाते हैं और उसकी गर्दन मे पीछे से पिस्तौल छुआते हैं। भय के मारे वह चीख उठता है। साधुता का वह चोला जिससे अपनी निर्दोषता की रक्षा करते वह चला था, खिसक कर नीचे जा गिरता है और वह एक अत्यन्त भयभीत मानव मात्र रह जाता है; आत्म-प्रतीष्ठा का ऊपरी भ्रम कुछ बना रहे, केवल इसकी वह कोशिश करता है, इससे अधिक और कुछ नहीं।

दिमित्रोव पर भी यह सब बीतती है। किन्तु वह दूसरों से भिन्न है। वह इस स्थिति को अपने समूचे जीवन के एक हिस्से के रूप मे

देखते है, और अपने इस जीवन में उन्होंने कभी भी आत्मसमर्पण नही किया, कभी भी अपनी स्थिति को गिराना मंजूर नही किया। वह आरम्भ से ही प्रतिवाद करते हैं। उनका समूचा मस्तिष्क केवल एक ही बात पर केन्द्रित है—दुश्मन का टाट कैसे उलटा जाय। वह जानते है कि वे बन्दी है; उनकी जिन्दगियों को शिकार बनाकर एक कत्लेआम की तैयारी की जा रही है; यदि वे टाट उलटने में विफल हो गए, तो आगजनी के बारे में एक पागल के वक्तव्य को ही दुनिया सच समझेगी और उनके वर्ग के लक्ष्य को, जो कि मानवता का भी लक्ष्य है, भयानक धक्का लगेगा।

अन्य दोनों बल्गारियन जर्मन भाषा नही जानते थे, और उन्होने उसे सीखने का प्रयत्न भी नहीं किया। दिमित्रोव जर्मन खूब अच्छी तरह जानते थे, और वह यह तुरत समझ गये कि अपनी लड़ाई में विजयी होने के लिए जर्मन भाषा को और भी अच्छी तरह से जानना जरूरी है। सो उन्होंने, हाथो और पावों में बेड़िया पहने, जर्मन व्याकरण का, गेटे की कृतियों और जर्मन इतिहास का, अध्ययन किया। उन्हे लगा कि यह भी एक कारगर अस्त्र सिद्ध होगा। उनका मस्तिष्क, सारे दिन और सारी रात, यह सोचने में व्यस्त रहता कि बाहर की दुनिया से—सबसे बढ़कर सोवियत संघ में अपने साथियों से—किस प्रकार सम्पर्क स्थापित किया जाए। अनेक विफल प्रयत्नों के बाद अन्त में उत्तरी काकेशस की पहाड़ियों मे स्थित उस नन्हें खनिज झरने का उन्हें ध्यान हो आया, जहा से स्वच्छ मौसम में बर्फ से ढंकी समूची पर्वत माला और एल्ब्रुज की सबसे ऊंची चोटी नजर आती है। कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के स्वास्थ्य-गृह में यहां रहकर उन्होंने स्वास्थ्य लाभ किया था। स्वास्थ्य-गृह का डाक्टर कम्युनिस्ट था, और कम्युनिश्ट पार्टी के अन्य कितने ही सक्रिय सदस्य आज वहां स्वास्थ्य-लाभ कर रहे होंगे, ठीक वैसे ही जैसे कि उन्होंने किया था। उन्ही के समान वे खनिज झरने के पानी मे स्नान करते होंगे, बागों के बीच से होकर हिम-आच्छादित दुर्ग-सदृश एल्ब्रुज के सामने वाली पहाड़ी पर बने पवन-मन्दिर की चढ़ाई चढते होंगे। यदि वह इस डाक्टर को, जो मास्को से इतनी दूर रहता है, एक छोटा-सा

एकदम निर्दोष पत्र भेज तो निश्चय ही संसर उसे निकल जाने देगा। ऐसा ही हुआ भी। इस प्रकार जेल से बाहर आन्दोलन बढ़ चला, ताकतें एकजूट होने लगीं, बन्दी अब अकेले न रहे।

उन्होंने शेक्सपीयर को पढ़ा, अंग्रेजी का अपना अभ्यास बढ़ाने के लिए, और इसलिए भी कि कवि में वह एक ऐसी चीज का—जीवन की एक अद्भुत पकड़ का—अनुभव करते जिससे उनके मस्तिष्क में एक स्फूर्ति सी दौड़ जाती, एक नयी शक्ति का उन्हें अनुभव होता—लगता जैसे खुद अपने जीवन की उनकी पकड़ पहले से ज्यादा पुष्ट हो गई है। हैमलेट के ये शब्द उनके हृदय में अंकित हो गये : "खुद अपने प्रति सच्चे रहो तो अनिवार्यतः यह होगा, जैसे दिन के बाद रात का होना अनिवार्य है, कि फिर तुम किसी भी व्यक्ति से दगा न करोगे।" सच्चे रहो, खुद अपने जीवन के प्रति, अपने कम्युनिस्ट विश्वासों के प्रति सच्चे रहो—उनका रोम-रोम यही कहता था, यही उनके जीवन का पथ था। मृत्यु का विचार उन्हें अधिक त्रस्त न करता। सम्भावित मृत्यु के बारे में नहीं, वह सोचते थे विजय पाने की फौरी आवश्यकता के बारे में, अपने दुश्मनों का पासा पलटने के बारे में, अपने मुकदमे को एक ऐसा हथियार बनाने के बारे में जिससे फासिज्म को कहीं मुह छिपाने की जगह न मिले, उसके घुटने सदा के लिए टूट जाएं। पागलपन के वातावरण का उन पर कोई प्रभाव न पड़ा, कारण कि वह स्वयं इतने अधिक सचेत थे कि उन्हें मालूम था कि वह असफल नहीं हो सकते।

कहानी में हास्य भी तो चाहिए न ? सो उसकी भी कोई कमी नहीं है, हालांकि वह अपेक्षाकृत भयानक और पागलपन से भरा हास्य है; पुलिस अफसरों और नाजी नेताओं की व्यस्त चहल-पहल, जो झूठे सबूतों की अपनी बेतुकी इमारत का निर्माण कर रहे हैं और फूहड़ मकान-मालकिनियों, चोर-उचक्कों, सभी किस्म के पागलों, ह्रासग्रस्त मध्यम वर्ग के सारे भ्रष्ट सफेदपोशों, जुर्म और मानसिक रुग्णता के सीमा-प्रदेश के तमाम अजूबों को पकड़-पकड़ कर जुटा रहे हैं ताकि इन चार व्यक्तियों को दण्डित किया जा सके; गोएबल्स और गोरिंग के बेसिर-पैर के बयान

और अपनी हाजिर जवाबी तथा तेज बुद्धि से उनकी चिंदियां बिखेरने वाला छापेखाने का मजदूर बन्दी, विद्वान जज की निन्दनीय जी-हुजूरी—बड़े-से-बड़े हास्याभिनेता के लिए यहां पर्याप्त सामग्री मौजूद है। और यदि आपको पागलों के भोज का वातावरण पसन्द है तो इस मुकदमे के गवाह निश्चय ही आपकी इस इच्छा को भी पूरा कर देंगे।

और इस समूचे दौरान में वान डेर लूब्ब की आकृति बराबर मौजूद रहती है। अकेला वही एक ऐसा आदमी है जो सत्य को प्रकट कर सकता था—झुका हुआ, भारी भरकम, मूक, मानव के पतन की साकार प्रतिमा, मानव जो सब कुछ खो चुका है, आत्मा नाम की चीज जिसके पास नहीं है; इस मेफिस्टोफीलियाई[1] नाटक का "अभागा फॉस्ट।"[2]

यह नाटक इतना अधिक कर्कश और इतना अधिक मर्दाना है कि कोमल हृदय वाले पाठकों को अखर सकता है। सो कुछ प्रेम भी चाहिए—क्यों, ठीक है न? जेल में दिमित्रोव को अपनी पत्नी के मरने का समाचार मिलता है। वह सर्बिया की मजदूर लड़की थी, ट्रेड यूनियन में काम करती थी, कविताएं लिखती थी और उसके जीवन तथा संघर्षों की साथिन थी। खबर सुनकर उन्होंने अपनी मां को एक पत्र लिखा। इस पत्र के एक वाक्य से हम उनकी भावनाओं का कुछ अनुमान कर सकते हैं। उनकी पत्नी, ल्युबा भी—उन्होंने लिखा—हीरोइन है, "हमारी अविस्मरणीय ल्युबा।" फिर एक अन्य स्त्री का—उनकी झुर्रियों से भरे चेहरे वाली वृद्ध किसान मां का, प्रेम है, जिसने अपने सभी बेटे क्रान्ति को भेंट कर दिये थे, जिनमें से दो मर चुके थे। बाइबल की भाषा में वह सोचती है। उसका बेटा ज्योर्ज दिमित्रोव उसके लिए साक्षात "सन्त पॉल" है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आधुनिक उपन्यासकार ऐसी सामग्री से सन्तुष्ट नहीं होगा जो रोचक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का कुछ भी अवसर प्रदान न करे। इसके लिए, दिमित्रोव की वह मकान-मालकिन कैसी रहेगी जिसने अपने मोहक किरायेदार के साथ अपनी सगाई का ऐलान करते हुए अद्भुत जर्मन कार्ड छपा रखे थे, हालांकि उसकी

कोई सगाई नहीं हुई थी ? मध्यवर्ग की इस जर्मन महिला के लिए वह उसका दुर्लभ आदर्श, भावना लोक का मंगेतर था।

उपन्यास की विषय-वस्तु के रूप में इस घटना की सम्भावनाओं के बारे में इतना अधिक लिखने पर आपका यह पूछना सर्वथा न्याय-संगत है कि आखिर इस लम्बी बहक का प्रस्तुत पुस्तक के विषय से क्या सम्बंध है ? शायद इसका उद्देश्य यह दिखाना है कि हमारे आधुनिक जीवन में ऐसी अनेक असाधारण घटनाएं हैं जो कल्पनात्मक व्यवहार की अपेक्षा रखती हैं, ऐसे विषय हैं जिनमें अद्भुत के साथ वीरता का, क्रूरता के साथ मानव की शान्त आत्मा का, कमीनेपन के साथ सच्ची मित्रता या लगाव का, पागल की बड़बड़ाहट के साथ मानसिक साहस से उत्पन्न भुलसा देने वाले व्यंग्य का समावेश है। और इन सब के बीच से प्रकट होता है एक व्यक्तित्व, जिसका अध्ययन अनिवार्यत: हमारे अनुभव तथा मानव के बारे में हमारे ज्ञान का विस्तार करेगा, हमारी अपनी शक्तियो मे हमारे विश्वास को पुष्ट और जीवन के बारे मे हमारी समझ तथा पकड़ को गहरा बनाएगा।

कारण कि यह समझना गलत होगा कि लीपजिग के उस संघर्ष के लिए दमित्रोव मां के पेट से ही लैस होकर आया था। उनका जीवन अपने आप पर काबू पाने और अपने को नये सांचे में ढालने का एक सुदीर्घ प्रयास था और इसी के साथ-साथ, अपने बल्कान देश के अर्द्ध-सामन्ती पूंजीवाद के खिलाफ एक युद्ध था। हम में से वे लोग जिन्होंने १६२३[1] में बल्गारियन विद्रोह की विफलता के बाद उन्हें देखा है, जानते हैं कि आगामी वर्षों में किन मानसिक ज्वालाओं के बीच से उन्हें गुजरना पडा। लम्बे अर्से तक उन्होंने अपने-आप से युद्ध किया, निर्मम आत्म-आलोचना के दौर से वह गुजरे। वह विफलता इस बात की सूचक थी कि उनमें कच्चापन मौजूद था, अभी इस योग्य वह नहीं हुए थे कि लोगों का विजयी नेतृत्व कर सकें। उन्होंने इस विफलता के भारी बोझ को—विद्रोह मे जो जानें गवाईं गयी, उनके प्रति तथा अपने ध्येय के अस्थाई खण्डन के प्रति अपनी जिम्मेवारी के एहसास को—कठोर बनकर बर्दाश्त किया, विफलता के कारणों का उन्होंने पता लगाया।

मालूम हुआ कि तंग संकीर्णतावाद और बल्कान के समाजवादी आन्दोलन का अवसरवाद सारे रोग की जड़ है। अपनी कमजोरियों को दूर करने के लिए उन्होंने दिन-रात एक कर दिया, और उस समय तक जुटे रहे जब तक कि उनमें लेनिन और रूस के मजदूर वर्ग के अनुभव से पुष्ट सच्चे *बोल्शेविक* का निखार नहीं आ गया।

"मैं मानता हूं कि मेरा स्वर कड़ा और पैना है," उन्होंने जज से कहा। "मेरे जीवन का संघर्ष भी कड़ा और पैना रहा है। मेरा स्वर निर्द्वन्द्व और उन्मुक्त है। मै चीजों को उनके सही नाम से पुकारता हूं... मैं अपना, एक अभियुक्त कम्युनिस्ट का, बचाव कर रहा हू; मैं अपने राजनीतिक सम्मान की रक्षा के लिए, क्रान्तिकारी के रूप में अपने गौरव की रक्षा के लिए, यहां खड़ा हूं; मै रक्षा कर रहा हूं अपनी कम्युनिस्ट विचारधारा की, अपने आदर्शों की, अपने समूचे जीवन के सार-तत्व और महत्व की!"

मुकदमे के बाद तीनों बल्गारी बन्दी, पहली बार, एक ही कोठरी में मिले और दिमित्रोव ने सबके संघर्ष का लेखा-जोखा लेते हुए, बताया: "हम चार थे, चारों कम्युनिस्ट—चार सुसज्जित सैनिक। तॉर्गलर एक भगोड़ा है, अपनी राईफल फेंक कर युद्ध क्षेत्र से वह भाग खड़ा हुआ। तुम दोनों ने अपनी राइफलें नहीं फेंकी; अपनी जगह पर तुम डटे रहे, किन्तु तुमने गोली नहीं दागी, और शुरू से आखीर तक अकेले मुझे ही गोलीवर्षा करनी पड़ी।" उन्होंने अकेले गोलीबारी की, किन्तु उनकी बौछार इतनी सशक्त थी कि दुश्मन को दबना और अन्त में मैदान छोड़कर भागना पड़ा। लेखक के लिए वह हमेशा मानव के दुश्मनों के खिलाफ मानव की विजयी आतमा के प्रतीक रहेंगे। वही हैं सजीव मानव!

ग्यारह

गद्य की विलुप्त कला

पाठकों को यह स्मरण कराना निस्सन्देह निरर्थक ही प्रतीत होगा कि किसी व्यक्ति का कल्पनात्मक इतिहास लिखने का काम कलात्मक सृजन के अत्यंत कठिन काम में हाथ लगाना है। दिमित्रोव का चरित्र और लीपजिग के वे प्रचण्ड दिन किसी उत्साही उपन्यासकार के लिए भारी आकर्षण की चीज हो सकते हैं, किन्तु यदि वह यह समझे कि केवल व्यक्तियों और घटनाओं का रोचक वर्णन करके ही उपन्यास लिख लिया जा सकता है, तो इससे काम नहीं बनेगा। नहीं, उपन्यास केवल उसी हद तक इतिहास है जिस हद तक कि वह मानव के अस्तित्व, उसके विकास, उसके जीवन-यापन और शायद उसकी मृत्यु तक की कहानी कहता है। यथार्थ इतिहास लेखन से उसका कोई सम्बंध नहीं है, जिसमें अनुमान के लिए कोई जगह नहीं होती, जिसमें अथ से इति तक तुलना, विश्लेषण और परिलक्षित तथ्यों में ठीक-ठीक सिद्धान्त-निरूपण होता है।

दिमित्रोव की कल्पनात्मक सृष्टि के लिए प्रथम वास्तविक दिमित्रोव को अलग रखना होगा जो मास्को में रहता है और कम्युनिस्ट इण्टर्नेशनल की इमारत में जिसका दफ्तर है।[1] एक तरह से, यह समझ लीजिए कि, कोरे कागज से शुरूआत करनी होगी। तभी कल्पना के ऐसे सर्वथा नवीन दिमित्रोव की रचना की जा सकेगी जो यथार्थ दिमित्रोव से एकबारगी महान भी होगा और उससे घटकर भी—महान इस कारण कि यदि आप एक अच्छे लेखक हों तो आपकी कल्पना उसकी छवि को गौरवमय बना देगी, घट कर इस कारण कि आप उसे उसके यथार्थ हाड़-मास

वाले सजीव रूप में जैसा-का-तैसा मूर्त करने में कभी सफल नहीं हो सकेंगे—उसकी तमाम शारीरिक विशिष्टताओं को, उसके मस्तिष्क की प्रखरता को, उसके दोषों और गुणों को नहीं पकड़ सकेंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि कोरे कागज को लेकर आरम्भ करने के बावजूद एक वास्तविकता से फिर भी आपको जूझना होगा और आप जो कुछ फल प्राप्त करेंगे वह इस बात पर निर्भर करेगा कि उस वास्तविकता को परखने के लिए आपकी दृष्टि कितनी पैनी है। यदि आपकी दृष्टि पैनी, प्रखर, लगभग दिव्यदृष्टि के समान (एकदम दिव्य भी नहीं, क्योंकि दिव्य में चिन्तन का कुछ अभाव होता है) न हो, तो आप अपनी अनुभूति की दुनिया मे अपने पाठकों को कभी उस भावावेग के साथ ले जाने में सफल नही हो सकते, जिसके बिना उनकी दृष्टि में दिमित्रोव फिर से सजीव नही बन सकते। आपको अपनी अनुभूति का अन्य लोगो को बरबस अनुभव कराना है, जीवन की अपनी गोचरता को उनके लिए गोचर बनाना है, और ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि जिस वास्तविकता से आपकी प्रतिभा को जूझना है, उस पर आपको पूर्ण दक्षता प्राप्त हो।

यदि आप बहुत बड़े लेखक हैं तो, निस्सन्देह, एक ऐसी नयी दुनिया की सृष्टि करने मे आप सफल होंगे, जिसमें आपका चरित्र दिमित्रोव, काल और स्थान के बन्धनों से परे, अपना एक निजी जीवन व्यतीत करता हुआ प्रकट होगा। वह पात्र, एक अर्थ में, आपका जरा भी नही है, कारण कि उसे आपने जीवन से छीना है और अनुभूति के वेग व शक्ति से अनुप्राणित होकर कोरे कागज पर फिर से मूर्त किया है। सामग्री पर जितनी अधिक आपकी दक्षता होगी, आपकी कृति में स्थायित्व की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी और उतने ही अधिक शानदार रूप में वह जीवन को, वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करेगी।

किन्तु दिमित्रोव, चाहे आपने डौन क्विग्जोट, टौम जोन्स, एन्ना करेनीना या जूलियेन सौरेल की भांति काल के प्रभाव से मुक्त मानव चरित्र का सृजन क्यों न किया हो—मूलतः रहेगा छापेखाने का कम्युनिस्ट मजदूर ही, जिसने अकेले हमारे समय की सबसे जबर्दस्त निरंकुशशाही के खूनी शासको का मुह कुचला। वर्ग-संघर्षो और उन संघर्षों को प्रति-

बिम्बित करने वाले सैद्धान्तिक द्वन्द्वों के बीच उसका उदय हुआ होगा। ऐसे चरित्र की रचना करने के लिए, मानव की आत्मा के कुछ चिरंतन प्रतीत होने वाले गुणों के उस मूर्त रूप का उन यथार्थ ताकतों के साथ सम्बंध स्थापित करने के लिए, जिन्होंने उसके विकास और उसकी विजय को सम्भव बनाया, कुछ कलात्मक अस्त्रों से लैस होना जरूरी है।

ऊपर एक अध्याय में मैंने फ्लौबर्ट का एक कथन उद्धृत किया था जिसमें अपनी जगह पर यह ठीक ही कहा गया है कि महानतम लेखकों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने, प्रत्यक्षतः अत्यंत अडिग भाव से, अपनी कला के विशुद्ध रूपवादी पहलू की उपेक्षा की है। किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना न केवल खतरनाक ही, बल्कि मूर्खतापूर्ण भी होगा कि रूपवादी पक्ष अमहत्वपूर्ण है। वस्तुतः ये महान लेखक अपने कौशल के पूर्ण उस्ताद थे और यदि वे बहुधा सभी नियमों को तोड़ते मालूम होते भी हैं तो केवल इस कारण कि उनकी रचनात्मक प्रतिभा को ऐसे नये नियमों की दरकार थी जो उनकी कल्पना की गरिमा के उपयुक्त हों। कला के रूपवादी पक्ष की उपेक्षा करना मार्क्सवाद की आत्मा के विपरीत है। मार्क्स विषय-वस्तु और स्वरूप को एक-दूसरे से अविच्छिन्न रूप में गुंथा हुआ, जीवन के द्वन्द्वात्मक अन्तरसम्बंध से जुड़ा हुआ समझते थे। वह उपन्यासकार जो समाजवादी यथार्थवाद को अपनाता है, स्वरूप-सम्बंधी प्रश्नों को अत्यंत महत्वपूर्ण समझता है।

उदाहरण के लिए "वातावरण" के प्रश्न को लीजिए। यह पात्र और वातावरण के बीच का वह नाजुक सम्बंध है जिसे मूर्त करना इतना कठिन है और जो—यदि लेखक को अपने पात्रों की वास्तविकता को गहरा बनाना है, अपनी कृति के निर्णयात्मक क्षणों को घटनाक्रम के आवश्यकतानुकूल घनीभूत बनाना है—लेखक के लिए आवश्यक है। और देखा जाए तो अधिकांश सामाजिक उपन्यासों में, ठीक इसी गुण का सर्वथा अभाव नजर आता है। इसमें शक नहीं कि वातावरण के प्रति समाजवादी लेखक का रवैया बिल्कुल वैसा ही नहीं हो सकता जैसा कि पुराने पंथ के यथार्थवादी लेखकों का होता था, किन्तु वह उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता और अतीत के लेखकों से, तथा वर्तमान के श्रेष्ठतम

उपन्यासकारों से वातावरण की रचना के साधनों के बारे में वह बहुत कुछ सीख सकता है। उदाहरणार्थ आधुनिक लेखकों में फौकनर वातावरण की रचना करने में उस्ताद हैं, यहां तक कि आतंक, पागलपन या भय का वातावरण कभी-कभी उनकी कृतियों पर पूर्णतया हावी हो जाता है, करीब-करीब सभी पात्रों को वह दबोच लेता है। जब फौकनर आतंक पैदा करना चाहते हैं तो हवा तक भय से थरथराती हुई प्रतीत होती है और बहुधा यही उनका दोष भी है कि वह, इस मामले में, रोमाण्टिक लेखक के बुरे-से-बुरे फंदों में फंस जाते हैं।

किन्तु पात्र और वातावरण की हमारी कल्पना ऐसी नहीं है। हम इन दोनों को दो अलग, समानान्तर किन्तु असम्बद्ध, उपन्यास के घटना-क्रम के समूचे दौरान में अपने सम्बंधों में अपरिवर्तनीय, नहीं मानते। अपने आशय को और अधिक स्पष्ट करने के लिए दिमित्रोव की कहानी का मैं यहां फिर उल्लेख करूंगा। वातावरण के बिना इस उपन्यास की कल्पना तक नहीं की जा सकती। सर्वप्रथम सत्तापहरण के ठीक पहले के बर्लिन के वातावरण को लीजिए: भय और सन्देह में आधा पागल महा नगर, जिसमें कुछ प्रकट है, कुछ अप्रकट; आधुनिक नगर के जीवन की सारी ध्वनियां और रोशनियां—पहियों की खडखड़ाहट, भूमिगत गाड़ियों की गड़गड़ाहट, सड़क की रंगबिरंगी रोशनियों के भंवर और चकाचौंध—हर चीज उन्माद, आतंक और सम्भावित की बेचैन प्रतीक्षा के इस भयानक संगीत में गुंथी और डूबी हुई। इस पृष्ठभूमि में आपके पात्र सबसे पहले सामने आएंगे और सम्पूर्ण दृश्य, सम्भवत, म्युनिख-ट्रेन में दिमित्रोव के आगमन में विलय हो जाएगा—पौ फटने का समय, अपने डिब्बे की महिला-यात्री से चुपचाप बात करता हुआ दिमित्रोव, उस समाचार पत्र को खरीदना जिसमें रीशटाग अग्निकांड की खबर छपी है, और स्टेशन से बाहर निकलकर नगर में उनका प्रवेश जहां उनके दुश्मन उनकी ताक में तैयार बैठे हैं, खुद अपनी भड़काई हुई लपटों से मदहोश, अपने कृत्यों की वास्तविकता से बेखुद और बेखबर।

ऐसे नगर से कैदखाने (जो नये निजाम का प्रतीक है) में संक्रमण स्वाभाविक है। वातावरण यहां भी वही है, किन्तु अधिक घनीभूत

और उसके बीच आपका चार "कम्युनिस्ट सैनिकों" का छोटा-सा दल खड़ा है। कलाकार को यहां बहुत ही बारीकी के साथ वातावरण को बदलता हुआ दिखाना होगा, क्योंकि जिस अंधकार, क्रूरता तथा आतंक को प्रथम दृश्य से निचोड़ कर वह दूसरे दृश्य में ले आया था, उसमें—अपने दुश्मनों के विरुद्ध लड़ते हुए दिमित्रोव का व्यक्तित्व ज्यों-ज्यों उभर कर प्रभुत्व ग्रहण करने लगता है—कुछ नये तत्वों का प्रादुर्भाव होना होगा। कैद से युद्ध क्षेत्र का यह परिवर्तन उसे अपने "वातावरण" मे दिखाना होगा।

इसके बाद, सबसे अन्त में, मुकदमा; क्योंकि अदालत ही वह मंजिल है जिसमें प्रथम दृश्य वाले नगर का समूचा अजीबोगरीब निशाचर जगत कटघरे में खड़े चार सैनिकों का सामना करने के लिए प्रकट होता है। इस वातावरण में प्रत्येक सैनिक की पृथक प्रतिक्रियाएं; और फिर उनमें से एक, एकबार और अपनी इच्छाशक्ति का सिक्का वातावरण पर जमाता है, और मानव-आत्मा के इस तरह हावी होने के साथ-साथ वातावरण में प्रकाश और वायु का संचार करता है। किन्तु इस समूचे दौरान में भी उपन्यासकार को यह नही भूलना है कि विद्वान जजों, चुस्त-दुरुस्त पुलिसवालों तथा हृदयहीन वकीलों और उत्सुक पत्रकारों से लैस इस गम्भीर अदालत के नेपथ्य में जेल की कालकोठरिया हैं, जिनमें, हर पेशी के बाद, बन्दी फिर बंद कर दिए जाते हैं और जिनमें, अदालत से निकाले जाने के बाद, हर बार दिमित्रोव को धकेल दिया जाता है। अपने इस "वातावरण" को इस खूबी के साथ उसे चित्रित करना होगा कि पुस्तक का अन्त, एकदम स्वाभाविक गति से, बीथोवन की नवीं सिम्फोनी[1] की भांति सबल और सशक्त हो। मानव को मुक्त करनेवाली अवाजों से जीवन का वह विजयी संगीत प्रवाहित हो कि अदालत तथा जेल की दीवारें भरभरा कर गिर पड़े।

फ्रान्सीसी निबन्धकार अलेन ने *ललितकला के सिद्धान्त* शीर्षक अपनी पुस्तक में एक स्थल पर उपन्यास में *वर्णनात्मक* लेखन के स्थान का बहुत ही सही उल्लेख किया है: "गद्य की दो पद्धतिया हैं जिन्हें विचारात्मक और वर्णनात्मक कहा जा सकता है। उन्हीं के

आधार पर वस्तुएं अपना अस्तित्व कायम रखती है और भावनाएं आकार ग्रहण करती हैं। संक्षेप में, वर्णन को सहारा मिलना चाहिए, और उपन्यासकार की कला यह है कि वह अपने हृदयपटों और घरों को विचारों से शून्य न रहने दे; साथ ही उसे अपनी भावनाओं और घटना-क्रमों के लिए आवश्यकता से अधिक बड़ी इमारतों का भी सहारा न लेना चाहिए। इस दृष्टि से बालजाक के वर्णन काफी सारगर्भित हैं, किन्तु बहुत अधिक नहीं। इन वर्णनों के बारे में सबसे पहली बात तो यह ध्यान में रखने की है कि उनके सभी हिस्से विचारों के द्वारा जुड़े हुए होते हैं; गद्य की इमारत इसी प्रकार चुनी जाती है। देखकर ऐसा मालूम होगा मानो वहां विचार हर जगह घर कर लेना चाहता है; जब कि कविता में यही काम लय के द्वारा सम्पन्न होता है, कारण कि लय विभिन्न अंशों को सम्बद्ध रखती है। इसका मतलब यह कि वर्णन का प्रत्येक अंश अपने-आप में युक्ति-संगत होना चाहिए, ताकि विचार का सूत्र इन अंशों को एक-दूसरे से जोड़ सके। और इस सिलसिले में केवल रूप का सतही परिचय देने वाले अन्य कतिपय साहित्यिक चित्रों से—जैसे *सलाम्बो* में कार्थेज के चित्र से—बालजाक या स्टैण्ढाल के वर्णनात्मक विश्लेषण की तुलना करना उपयोगी होगा। गद्य की प्रत्येक इमारत में, प्रथमतः, विचार सीमेंट-चूने का काम करता है। इसी प्रकार गतिशील छवि-चित्र एक दूसरे से बंधे या किसी एक केन्द्रबिन्दु के चारों ओर केन्द्रित रहते हैं। यहां यह कहा जा सकता है कि विचार ही शरीर और पदार्थ का निर्माण करता है। यदि पाठक प्रतिरोध करता है तो उस समय जब विचार उसे हवा में तैरते प्रतीत होते हैं जो वस्तुतः कुछ नहीं पकड़ पाते। मानना पड़ेगा कि आलेन्कोन या वेरियर जैसे नगरों का सजीव चित्र देने में स्टैण्ढाल या बालजाक को कोई भी भूगोल-लेखक मात नहीं कर पाया है।

"यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन वर्णनों में आरम्भ में कल्पना का कोई प्रवेश नहीं होता; वे कुछ रूखे मालूम होते हैं; उनमें आपको केवल निष्कर्ष ही मिलते हैं। बाद में ही, कथा-प्रवाह के दौरान में, चीजें दिखाई देती हैं—इस तरह नहीं कि उनका नुमाइशी प्रदर्शन

किया जा रहा हो बल्कि वे कमरत मानव के चारा ओर एकत्र होते प्रकट होते और विलीन होते हुए दिखाई देते हैं।"

स्त्रियों और पुरुषों के बारे में अपने विचार लेखक शब्दों के द्वारा व्यक्त करता है। शब्द ही उसकी कच्ची सामग्री है। वह सोचता जाता है और लिखता जाता है, और उसके विचारों का तर्कबद्ध सिलसिला व्यवस्थित कथोपकथन और वाक्यों के रूप में प्रकट होता है। शैली, गद्य की लय, तथा गुलकारियों आदि के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। मैं उसमें और वृद्धि नहीं करना चाहता, सिवा यह कहने के—और शायद यह भी एक जानी-पुरानी बात ही है—कि ऐसी कोई जीवित शैली नहीं है जिसमें शब्द और विचार की अनुकूलता का अभाव हो, और यह कि रोमाण्टिक विचार के लिए रोमाण्टिक शैली की तथा यथार्थवादी विचार के लिए, सीधे-सादे "गद्य" विचार के लिए, एक सीधी-सादी यथार्थवादी शैली की दरकार होती है। जबरदस्ती किसी शैली की रचना करने के प्रयत्न से या विचार की जगह अलंकारिता से काम लेने से अधिक झुंझलाहट पैदा करने वाली चीज और कोई नहीं हो सकती। किन्तु, दुर्भाग्यवश, यह मानना पड़ेगा कि ऐसे समय जब विचार कठिन, दुखद या अरुचिकर हो जाता है, तब बनावटी शैली के प्राधान्य प्राप्त करने की संभावना भी ज्यादा रहती है। जीवनी-लेखन की एक आधुनिक "कला" में इस सच्चाई की (अमरीकी विधान की धाराओं की भांति जिसे हम स्वयंसिद्ध समझते हैं) जितनी बढ़िया मिसाल मिलती है, वैसी कहीं और नहीं मिल सकती। यह कला विचारतत्व से एकदम शून्य, शुरू से अन्त तक बनावटी, और इसीलिए बेहूदगी की चरम सीमा तक "शैली की चमत्कारिता" में डूबी हुई है।

अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा जखीरा हर जाति की लोक-भाषा में मौजूद है। न ही इस भाषा को आज तक किसी ने मरते सुना है, यो संशोधन उसमें बराबर होता रहता है। आप यह बखूबी कह सकते हैं कि महानतम लेखकों के बारे में यह कहना कठिन होता है कि उन्होंने मुहाविरेदार भाषा को सचमुच गढ़ा है या मुहाविरेदार भाषा का उपयोग

मात्र किया है। फिर भी, चौसर से शैक्सपीयर और फिर शॉ तक हमारे महानतम लेखकों ने मुख्यतः इसी लोकप्रिय, करीब-करीब मुहाविरेदार भाषा को ही अपनाया है। शास्त्रीय आलोचकों तथा साहित्य के इतिहासकारों ने इस धारणा को लगभग आम बना दिया है कि बाइबल का अंग्रेजी संस्करण ही हमारे लगभग समूचे गद्य साहित्य का प्रेरणास्रोत रहा है। किन्तु, जहां तक मुझे मालूम है, अब तक इस तथ्य का किसी ने अध्ययन नहीं किया कि बाइबल का यह संस्करण किस हद तक केवल एलिजाबेथ युग की प्रचलित अंग्रेजी लोक-भाषा में ही लिखा गया है। इसमें संदेह नहीं कि बाइबल की भाषा आज दिन भी बहुत कुछ आम लोगों की भाषा के पद पर आसीन है, और मिल्टन तथा *पिलग्रिम्स प्रोग्रैस* के साथ मिलकर वह इतने बड़े पैमाने पर उनकी साहित्यिक विरासत बन गयी है कि जिसकी हमारे देश के उच्च वर्ग कभी दावा नहीं कर सकते।

भाषण और अभिव्यक्ति की यह समृद्धि हमारे देश में अब पहले जैसी नहीं रही, किन्तु उसमें कुछ तो अमरीका के संसर्ग में और कुछ जीवन के अनुभव से नये प्राणों का संचार हो रहा है, इसमें भी सन्देह नहीं। हमारे आधुनिक लेखन का यह पीलापन और रक्तशून्यता बहुत कुछ इस तथ्य के कारण है कि कतिपय बुद्धिजीवियों ने अपने आपको नवजीवन के इस चिरन्तन स्रोत से जानबूझ कर इस हद तक अलग कर लिया है कि वस्तुतः प्राणवान भाषा लिखने वाले गिनेचुने आधुनिक लेखकों में एक किपलिंग (अन्य कारणवश उनके बारे में हमारी राय चाहे कुछ भी हो) का ही यहां उल्लेख किया जा सकता है। किपलिंग इंग्लैण्ड और अमरीका की लोकभाषा में पगे थे, और उसके नवीनतम तथा अत्यंत आधुनिक रूपों को—उन रूपों को जिनकी शक्ति-चालित मशीनों के विकास के इर्दगिर्द पनपती नयी लोकप्रिय दंतकथाओं में अभिव्यक्ति हो रही थी—अपनाने में जरा भी नहीं झिझकते थे। अच्छा गद्य लिखने की कला चीजों को उनके सही नाम से पुकारने की विलुप्त कला है, एक ऐसी शक्ति है जिसने कटघरे

में खड़े दिमित्रोव की वाणी को इतना बलशाली बना दिया था। यह एक सत्य है, अडिग और अप्रिय सत्य, कि हमारे देश में अब भी ऐसी क्षमता रखनेवाले लोग अदबदा कर केवल मेहनतकश ही है, क्योंकि वे जीवन के आवश्यक अनुभव तथा शब्दों के भण्डार से सम्पन्न हैं और उसमें वृद्धि करते रहते हैं। अमरीका के कितने ही लेखक अपने देश में इस सत्य को स्वीकार कर चुके हैं, और इसका यह परिणाम है कि तथा-कथित "पहुंचे हुए" पथ की कृतियों में, उनके तमाम दोषों के बावजूद, कुछ ऐसी चीज की रचना हुई है जो हमारे अंग्रेज लेखकों के मुकाबले में एक सजीव कला और सजीव शैली के कही अधिक निकट है।

चीजो को उनके असली नाम से पुकारने वाला अन्तिम अंग्रेज लेखक विलियम कौबेट था, जिसमें मानो यह कला कुदरती तौर पर मौजूद थी। यह अद्भुत व्यक्ति, मार्क्स के शब्दों में, "ग्रेट ब्रिटेन का सबसे पुरातन-पन्थी और सबसे उग्र व्यक्ति — पुराने इंग्लैण्ड का सबसे सच्चा अवतार और युवा इंग्लैण्ड का सबसे साहसी अग्रज था।" आशा है कि पाठक इस गद्य के, जिसकी खूबी यही थी कि वह चीजों को उनके सही नाम से पुकारना जानता था, निम्न दो उदाहरणों के उद्धरण के लिए मुझे क्षमा करेंगे। ये कौबेट के लिन्कनशायर के वर्णन से लिए गए हैं:

"अनाज और घास और बैलों और भेड़ों के इस प्रदेश में, एक छोर से दूसरे छोर तक, एक कमी है और मेरी समझ में यह एक बडी कमी है, जिसे मैं पिछले तीन सप्ताह से अनुभव कर रहा हूं। यह कमी है — *गाने वाले पक्षियों* की अनुपस्थिति। ठीक इसी ऋतु में वे सबसे अधिक गाते हैं। यहां, इस समूचे प्रदेश में, केवल चार-एक लवा पक्षियो को मैंने देखा और सुना है, अन्य किसी किस्म का एक भी गाने वाला पक्षी नजर नही आया और छोटे पक्षियों में, जो गाते नही, मुझे केवल एक *येल्लो हैमर* दिखाई दिया, और वह भी बोस्टन तथा सिबसे के बीच एक कांजी-हाउस के बाड़े पर बैठा था। ओह, सर्रे के रेतीले टीलो के बीच एक ही पेड़ पर हजारों *लिन्नेटों* का एक साथ मिलकर चहचहाना! ओह, हैम्पशायर और ससेक्स और कैण्ट की झाड़ियों और घाटियो में

पक्षियों का वह आनन्दपूर्ण कलरव ! इस बेला में (सुबह के पांच बजे) बार्न-एल्म के झुरमुट हजारों-हजार पक्षियों के गान से गूंज रहे होंगे। थ्रश पक्षी पौ फटने से कुछ पहले ही गाना शुरू कर देता है, फिर ब्लैकबर्ड अपना स्वर मिलाता है, इसके बाद लवा भी उड़ानें भरना शुरू कर देते हैं; सूर्य के संकेत पर बाकी तमाम पक्षी गाना आरम्भ कर देते हैं; और झुरमुटों से, झाड़ियों से, पेड़ों की बीच की और सबसे ऊपर की टहनियों से, अनन्त किस्म के गान सुनाई देने लगते हैं; लम्बी सूखी घासों से व्हाइट-थ्रोट या नैटल-टर्न की मीठी और मुलायम आवाज आती है, और लवा का (आंखों से ओझल गायक का) जोरदार तथा आल्हादपूर्ण गान आकाश से नीचे की ओर तिरता प्रतीत होता है।"

जब कौबेट किसी देहात का — जिसके बीच से वह गुजर रहा हो — वर्णन करता है तो धरती के आकार तथा उसके रेशों की बनावट तक का चित्र आंखों के सामने मूर्त हो उठता है, किन्तु वह अपने अंग्रेजी दृश्यपट के किसी एक हिस्से का — गाते हुए पक्षियों, लिन्कनशायर के खुले प्रदेशों, देहाती चौपाल में किसानों की पंचायत अथवा यौर्कशायर में घोड़ों के मेले का — इस चेतना के बिना कभी वर्णन नहीं करता कि ये चीजें मानव के जीवन का हिस्सा हैं और यह कि मानव के जीवन के साथ यह सम्बंध ही उन्हें उनका सौन्दर्य और सार्थकता प्रदान करता है। यही वह चीज है जो उसे हडसन और जैफरीस जैसे प्रकृति का वर्णन करने वाले लेखकों से अलग करती है। कौबेट की अंग्रेजी भाषा कौबेट के इंग्लैंड की देन है।

"हन्टिंगडनशायर के खुले देहात में सेइन्ट आइव्स के कस्बे में जब मैं गया था, तो मैं किसानों के साथ बैठा, और मानो सांध्य-प्रार्थना की तैयारी में मैंने पाइप के दम लगाये। साध्य-प्रार्थना मैंने गाड़ी के पहिये बनाने वाले एक बढ़ई की तिपाई पर सम्पन्न की। मेरे मित्र, सांग खेलने वाले मोटे-मांसल चौपायों की इस बड़ी मंडी में — जहां फेन्स से माल आता था और वैन के लिए लाद दिया जाता था — कोई निय-

मित अड्डा नहीं जमा पाये थे। अभी हम बैठे हुए थे कि एक इश्तहार मेज के चारों ओर घूम गया। यह *खेती के सामान* की बिक्री का विज्ञापन था; और खेती के औजारों की जो सूची उसमें दी हुई थी, उसमें 'आग बुझाने का एक बढ़िया इंजन, लोहे के कई फंदे और स्प्रिंगदार बन्दूकें' भी मौजूद थीं। क्यों, एक अंग्रेज *किसान* के जीवन का क्या यही चित्र है? होल्ट्रोच से बोस्टन को जाने वाली सड़क पर घूमता हुआ मैं करीब छै मील आगे निकल गया। यहां की धरती की अकूत निधियों का मैंने पहले भी अवलोकन किया है। करीब पौने छै मील तक चलने के बाद मैं एक ढाबे में पहुंचा। मैंने सोचा कि यहां कुछ नाश्ता मिल जायगा। किन्तु उस गरीब औरत के पास जो बच्चे-कच्चों के एक अच्छे-खासे काफिले से घिरी थी, मांस या रोटी का एक निवाला तक नहीं था! कुछ और आगे चल कर एक घर में, जो सराय कहलाता था, सराय के मालिक के पास मांस के नाम पर सुअर की रीढ़ के एक छोटे से टुकडे के सिवा और कुछ नहीं था; और हालांकि उस जगह काफी संख्या में घर मौजूद थे, सराय के मालिक ने बताया कि यहां के लोग इतने गरीब हो गए हैं कि आस-पास के कसाइयों ने मांस के लिए पशुओं का बध बद कर दिया है। क्रान्ति से पहले फ्रान्स की भी ठीक ऐसी ही हालत थी। उसी जगह पर खड़े-खड़े मैंने अपने चारों ओर नजर डाली और चरागाहों में दो हजार से अधिक मोटी-ताजी भेड़-बकरियों को चरते देखा। हे मेरे भगवान! आखिर कब तक, कितने दिनों तक, यह स्थिति रहेगी? कितने दिनों तक बहुतायत होते हुए भी इन लोगों को भूखों मरना पड़ेगा? और ऐसी स्थिति में, आखिर कितने दिनों तक, स्प्रिंगदार बन्दूकें, लोहे के फंदे और आग बुझाने के इंजन सम्पत्ति के रक्षक बने रहेंगे?"

मुझे भारी संशय है कि कौबेट शुद्ध कलाकार नहीं था, किन्तु जिस भाषा में वह लिखता था वह असाधारण रूप से शुद्ध गद्य मालूम होती है, जिसमें शब्द और विचार की सुखद संगति इतनी पूर्णता के साथ मौजूद है कि पाठक उंगली उठाने की बात कभी सोच तक नहीं सकता। किन्तु यह तो बीते दिनों की बात है। गद्य की यह कला हमारे

अपने युग में मरणासन्न हो रही है। कारण कि चीजों को उनके सही नाम से पुकारने के लिए आपके हृदय में उन चीजों के प्रति कोई डर नहीं होना चाहिए जिनका कि आपको वर्णन करना है। साथ ही यह भी जरूरी है कि आप अपने और उनके बीच कोई दीवार न उठने दें कौबेट गद्य को कुछ और समझता था, बी. बी. सी.[१] उसे कुछ और समझता है। कौबेट जीवन को व्यक्त करने के लिए भाषा का उपयोग करता था, बी.बी.सी. उसका उपयोग जीवन को छिपाने के लिए करता है।* सैनिक-किसान कौबेट के अंग्रेजी लहजे में हार्दिकता, अनुराग और समझदारी का पुट होता है (साथ ही उस आम अनुभूति या समझ का भी जो कि हमारे जीवन की आम चीजों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क से पैदा होती है)।

पोर्ट लैण्ड प्लेस[२] के भद्र पुरुषों की क्षीण वाणी में न भावों का पता चलता है, न अनुराग, विचार या संवेदनशीलता का। जीवन की परिचित तथा प्रिय चीजों का कोई भी प्रतिबिम्ब उसमें नहीं दिखाई देता, केवल उन हौवों और भुतनों की पतली छायाएं नजर आती हैं जिन्हें हमारे आधुनिक शासकों ने उक्त चीजों के बदले अपने दिमागों में खड़ा कर लिया है। शायद यह तुलना अनुचित है। अब और क्या कहें; हालांकि यह एक दुःखद सत्य है कि कौबेट से लेकर आज तक हमारी भाषा का विकास बी. बी. सी. के इसी रक्तशून्य, दोषरहित आदर्श की दिशा में हुआ है। यह विकास सत्य के प्रति उस भय से सीमित और कुण्ठित रहा है, जो कि हमारे वर्ग-समाज के बौद्धिक जीवन की अत्यंत उल्लेखनीय विशेषता है। यदि हमें चीजों को उनके नाम से पुकारना फिर शुरू करना है तो हमें काफी जमीन तय करनी होगी और

---

* यहां मैं खास तौर से उस असाधारण सूची का उल्लेख करना चाहूंगा जिसमें उन विषयों के नाम गिनाए गए हैं जिन पर रेडियो से कुछ नहीं कहा जा सकता। इसी सूची में वे शब्द भी हैं जिनका रेडियो से प्रयोग वर्जित है। यह सूची बी. बी. सी. के समूचे जीवन की पथ-प्रदर्शिका है। निषेधों की इसी सूची से अधिकांश समाचार-पत्रों के कार्यालयों में भी काम लिया जाता है।

साहित्य के पण्डितों से अत्यन्त मोटे युद्ध में उलझना पड़ेगा। विक्टर ह्यूगो और कीट्स के संघर्ष इसके सामने निस्सन्देह बहुत मामूली दिखाई देंगे। इसी के साथ-साथ अपनी भाषा में नये रक्त का संचार करने के लिए हमें अपनी समूची मौलिक सूझबूझ और रचनात्मक क्षमताओं से काम लेना पड़ेगा। हो सकता है कि इस दिशा में कवि सबसे अग्रणी सिद्ध हों। यदि ऐसा है तो उनका स्वागत है। आइए, हम सब मिलकर संघर्ष करें और यह विचार हमें प्रेरणा दे कि हमारी भाषा का भाग्य और उसे विकसित करने के संघर्ष में और राष्ट्रीय मुक्ति के लिए हमारे देश के संघर्ष में अतीत में सदा एक अत्यंत घनिष्ट सम्बंध रहा है।

बारह

सांस्कृतिक विरासत

लेखक और जनता के बीच एक विचित्र और पेचीदा सम्बंध है। यह केवल लेखक और पाठक का ही सम्बंध नहीं है, बल्कि इसमे कही बडी चीज है। कारण कि जनता में विभिन्न श्रेणियों, विविध हितों, अनुराग-आकांक्षाओं और विभिन्न बौद्धिक स्तर वाले सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष होते हैं। यह जनता (चाहे वह ऊपर से देखने में कितनी ही उदासीन और निष्क्रिय क्यों न लगती हो) प्रचण्ड वर्ग संघर्षों, राष्ट्रीय और जातीय पूर्वग्रहों तथा मानवता के जीवन में अपनी अनिवार्य गति से आगे बढ़ते हुए इतिहास की विरासत से आन्दोलित होती रहती है। जनता के बीच से ही लेखक अपने पात्रों को लेता है और उसके पाठक भी जनता के बीच में ही मिलते हैं। अपनी कच्ची सामग्री भी वह इसी से प्राप्त करता है और उसके आलोचक भी इसी में से पैदा होते है। महान उपन्यासो में स्रष्टा, पात्रों और पाठकों के बीच एक प्रकार की सजीव एकता होती है। जहां यह एकता नहीं होती, जहां लेखक अपनी जनता से पृथक होता है, उसकी उपेक्षा करता है या लेखक की आत्मा इस मामले में अचेत होती है, वहां रक्तशून्यता की सम्भावना भी सर्वाधिक रहती है। ऐसा मालूम होता है मानो कल्पना के रसायन में किसी महत्वपूर्ण तत्व का अभाव है जिसने लेखक के चिन्तन को खोखला या उसकी शक्तियों को पंगु बना दिया है। किन्तु, कहने की आवश्यकता नहीं कि, ऐसा हमेशा या अनिवार्य रूप में नही होता। स्टेण्ढाल की मिसाल हमारे सामने है।

हम जानते हैं कि वह, सजग और सचेत रूप में, एक ऐसी जनता के लिए लिखते थे जिसे अभी जन्म लेना था, जो यह मानते थे कि उनकी अपनी पीढ़ी के लोग न तो उन्हें समझ पाएगे, और न ही उनकी सराहना कर सकेंगे।

अपने निजी जीवन में लेखक चाहे कितना ही भीरु और ढुलमुल जीव क्यों न हो, किन्तु जहां तक उसकी कला के पात्र के रूप में जनता के साथ उसका सम्बध है, उसे हैनरी द्वितीय और तैमूरलंग का मिश्रण होना चाहिए—एक निर्मम स्वामी और विजेता, अपनी इच्छा के आगे सबको झुकाने वाला। साथ ही इसका मतलब यह भी है कि अत्यत निरकुश आततायी भी उसी हालत में असली स्वामी, इतिहास का निर्माता, बन सकता है जबकि वह इतिहास की गति को समझता हो, जबकि उन अदृश्य प्रक्रियाओं के प्रति उसमें गहरी संवेदनशीलता हो जो लोगो के जीवन को ढालती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि लेखक अपनी जनता को जाने. लोगों के साथ वह उतना ही घनिष्ट हो जितना घनिष्ठ कि एक ही मेज पर नित्य चाय पीने वाले होते है, स्त्रियों को वह अपनी महबूबा के समान और बच्चों को वह अपने ही मुन्नू-चुन्नू समझे। इतिहास के अत्यंत रंगीले आततायी भी, ऐसे लोग जो भगवान की तरह अलग-थलग रहकर मानो आसमान से शासन करते थे, रात के अंधेरे में भेष बदल कर (लोक कथाओं के अनुसार) अपनी रियाया में हमेशा विचरण करते थे। जो लेखक ऐसा नही कर सकता वह शुरू से ही अपने हांथ-पांव कटा लेता है, या अगर वह जीवन का एक गलत चित्र छपाने की बेहूदगी करने से बाज नहीं आता तो इतिहास उसे भी उसी प्रकार कूड़े के ढेर पर फेंक देता है, जैसे कि उसने असफल निरंकुश शासको को सदा फेंका है।

इस सृजनात्मक सहयोग को पूर्णतया कारगर बनाने के लिए केवल सहानुभूति ही काफी नही है। देखा जाए तो सहानुभूति के अलावा, लेखक को इतिहास के ज्ञान से भी लैस होना चाहिए, उसे इस योग्य होना चाहिए कि वह अपने राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत का उपयोग कर सके, ठीक वैसे ही जैसे कि जनता राजनीतिक विरासत को उपयो

म लाती है।* सच तो यह है कि ये दोनों एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप में गुंथी हैं। अपने सांस्कृतिक अतीत को तिलांजलि देकर कोई भी जाति इतिहास में अपनी भूमिका अदा नहीं कर सकती, वैसे ही जैसे कि राजनीतिक अतीत को छोड़ने पर वह अपनी भूमिका अदा नहीं कर सकती। वह लेखक जो अतीत की संस्कृति मे जीवित परम्परा को न लेकर सौन्दर्यानुभूति के रूप में केवल जीवन-शून्य प्रेतात्माओं की विरासत संभालता है, स्वयं अपने लक्ष्य के साथ धोखा करता है। सो यह बात भी ठीक ही है, जैसा कि मैंने इस निबन्ध में शुरू से अन्त तक जोर देकर कहा है, कि महान लेखक ऐसे व्यक्ति नहीं होते जो अपने काल के सक्रिय जीवन मे उदासीन रहते हों। शैक्सपीयर के ऐतिहासिक नाटकों में

परम्परा और विरासत के इस प्रश्न पर मि. टी. एस. इलियट ने सबोधन में कुछ दिलचस्प दलीलें दी हैं जिनसे मैं पूर्णतया सहमत नहीं हो सकता। उनका सुझाव है कि लेखक में एक इतिहास-चेतना का होना जरूरी है जो उसे लिखने के लिए बाधित कर "न केवल खुद अपनी पीढ़ी को अपनी हड्डियों में समोकर ही, बल्कि इस भावना के साथ भी कि होमर से लेकर यूरोप का समग्र साहित्य और उसके अन्तर्गत उसके अपने देश का समग्र साहित्य भी उसके साथ-साथ अस्तित्व रखता और एक सम-व्यवस्था की रचना करता है।"

यह केवल आंशिक रूप मे सत्य है। कारण कि वर्तमान से बाहर अतीत का कोई अर्थ नहीं है और प्रत्येक वर्तमान अतीत को अपनी कसौटी पर परखता है। आलोचक के लिए जो बात सबसे अधिक महत्त्व की है वह यह कि यह परख कैसे की जाती है। किन्तु मि. इलियट ने परम्परा के बारे में अपने जिस दृष्टिकोण का परिचय दिया है, वह तत्वतः निष्क्रिय है। "कोई भी कवि, किसी भी कला का कोई भी कलाकार, अकेले अपने-आप में पूर्ण रूप से सार्थक नहीं होता। उसका महत्व, उसकी सराहना, मृत कवियों और कलाओं के साथ उसके सम्बंध की सराहना है। अकेले अपने-आप मे उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता; मुकाबले और तुलना के लिए उसे मृतकों के बीच स्थापित करना होगा।"

अतीत और वर्तमान--दोनों के प्रति निश्चय ही यह एक कुत्सित व्यवहार है। यदि इन दोनों के बीच कोई जीवित सम्बंध है तो वह "मुकाबले और तुलना" का सम्बंध नहीं है। यह सच है कि हम प्रत्येक कवि को सम्पूर्ण के एक अंश के रूप में ही परखते हैं, किन्तु एक ऐसे अंश के रूप में नहीं, जिसे उसकी विरासत ने बांध कर निरा निष्क्रिय बना दिया है। कवि या उपन्यासकार मृत सम्पत्ति का

राजनीति में उनकी गहरी दिलचस्पी का प्रमाण मिलता है। मिल्टन ने, पाप और पुण्य के संघर्ष का महाकाव्य लिखने के अतिरिक्त, हमारे इतिहास की महानतम क्रान्ति में भी हिस्सा लिया था और अपनी गद्य-कृतियों मे ऐसे राजनीतिक सिद्धान्तों को विकसित किया था, जिनकी यदि हम उपेक्षा करेंगे तो नुक्सान ही उठाएंगे। फील्डिंग मजिस्ट्रेट थे—गरीबों तथा उत्पीड़ितों के रक्षक और हृदयहीन न्याय-प्रणाली के सुधारक। प्रथम और महानतम रोमाण्टिक कवि बायरन ने चाइल्ड हैरॉल्ड लिखने के अलावा लार्ड सभा में लुड्डिटों पर भाषण भी दिया था। और वर्ड्सवर्थ ने लिखा था: "मृतकों और जीवितों को एक आध्यात्मिक संपर्क एकता के सूत्र में बांधे हुए है। सभी युगों के नेक, वीर और बुद्धिमान इसमें शामिल हैं। हम इस बिरादरी से विलग होना स्वीकार नहीं करेंगे।"

उत्तराधिकारी नहीं है। वह अतीत का उपयोग करता है—न केवल खुद अतीत को ही बदलने के लिए (अपनी निजी उपलब्धियों द्वारा), बल्कि वर्तमान को भी बदलने के लिए। संस्कृति एक ऐसी चीज है जिसे हमें जीवन के अमल को गहरा बनाने के काम मे लाना है। वह केवल सौन्दर्यानुभूति में डूबने-उतराने की चीज नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि मि॰ इलियट इस बात को आंशिक रूप से समझते हैं। कारण कि अपनी भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि शैक्सपीयर के मुकाबिले में दान्ते को अधिक पसन्द करने के परिणामस्वरूप उन्हें संस्कृति को जीवन के एक ऐसे सक्रिय अंग के रूप मे देखना पड़ता है जिसमें नैतिकता, धर्म और राजनीति का भी प्रवेश है। प्रत्येक नयी कृति—"परम्परा" शीर्षक अपने लेख में लिखते हुए मि॰ इलियट ने दलील दी है—अतीत की कृतियों की समूची मौजूदा व्यवस्था को, चाहे कितने ही आंशिक रूप में क्यों न हो, बदलती है। बिल्कुल ठीक, किन्तु वे कौन सी शक्तियां हैं जो इस परिवर्तन के पीछे हैं? यह परिवर्तन किस प्रकार होता है?

हम अतीत को उसी रूप में परखते हैं जिस रूप में कि हमें जीवन उसे परखने के लिए बाध्य करता है, और हमारा यह जीवन न केवल हमारी विरासत से ही, बल्कि हमारे अपने समय के वर्ग-संघर्षों तथा आवेगों-आवेशों से भी निर्धारित होता है। प्रत्येक नयी कृति में होनेवाले परिवर्तन भी इन्हीं ताकतों से निर्धारित होते हैं। हम केवल अतीत को ही नहीं देख सकते। हमें पहले वर्तमान को देखना है, जो सदा परिवर्तन की प्रक्रिया में से गुजरता रहता है।

इग्लड की पार्लिमेंट के नाम बिना लाइसेन्स के मुद्रण की स्वतत्रता के लिए मिल्टन के भाषण के शब्द इग्लड के जीवन का अग बन चुके हैं। इस भाषण में उन्होने यह बताया था कि हमारी जाति की महानतम विरासत क्या है:

"यदि इस तमाम स्वतंत्र लेखन और स्वतंत्र भाषण का फौरी कारण जानना चाहें, तो इसके लिए आपको स्वयं अपनी सहिष्णु तथा स्वतन्त्र, और मानवीय सरकार से अधिक सच्चा कारण अन्य कोई नहीं मिलेगा, लार्ड्स-सभा और लोक-सभा के सम्मानित सदस्यो, यह वही स्वतंत्रता है जिसे स्वयं आपकी साहसपूर्ण तथा शुभ चेष्टाओं ने हमारे लिए प्राप्त किया है, वह स्वतन्त्रता है जो तमाम महान विभूतियों की पोषक है; इसी ने हमारी आत्माओं को इतना स्वच्छ और आलोकमय बना दिया है कि लगता है जैसे हम स्वर्ग में पहुंच गए हों; इसी ने तो हमारी समझ को मुक्त किया, उसे विस्तार दिया और पहले से कहीं अधिक ऊंचा उठाया। अब आप हमें कम क्षमताशाली, कम जानकार, कम लगन से सत्य की खोज करनेवाले नहीं बना सकते, जब तक कि आप स्वयं, जिन्होंने हमें ऐसा बनाया है, हमारी सच्ची स्वतंत्रता से प्रेम करना छोड़ नहीं देते और उसके संस्थापक होने से इन्कार नहीं करते। हम फिर वैसे ही अज्ञानी, पशुवत, दिखावटी और दासवृत्ति से युक्त हो जाएंगे, जैसाकि आपने हमें पाया था। लेकिन इसके लिए पहले आपको भी वैसा ही बनना पड़ेगा जैसाकि आप बन नहीं सकते—उत्पीड़क, निरंकुश और दमनकारी, जैसा कि वे लोग थे जिनसे कि आपने हमें आजाद कराया था। यदि आज हमारे हृदय अधिक विशाल हैं, हमारे विचार महानतम और एकदम खरी चीजों की खोज तथा आशा में अधिक संलग्न हैं, तो यह स्वयं आपके ही गुण का फल है जिसका हममें प्रतिपादन हुआ है। आप इसका तबतक दमन नहीं कर सकते जब तक कि आप इस निषिद्ध और निर्मम कानून को फिर से लागू नहीं करते कि पिता जब भी चाहें अपने बच्चों का काम-तमाम कर सकते हैं। और तब आपके साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर कौन खड़ा होगा, और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करेगा? निश्चय ही वह नहीं, जो राजचिन्ह और धर्म तथा डेनगेल्ट के अपने चार

श्रीमन्तों[1] के लिए हथियार उठाता है . हालांकि मैं न्यायसंगत विशेषाधिकारों की रक्षा की निन्दा नहीं करता, फिर भी यदि बात इतनी ही है तो मुझे अपनी शान्ति अधिक प्रिय है। सभी स्वतन्त्रताओं से ऊपर मैं आत्मा के अनुसार जानकारी पाने, बोलने और उन्मुक्त होकर बहस करने की स्वतन्त्रता चाहता हूं।"

देवी एथेन की भांति स्वतंत्रता इस दुनिया में पूर्णतया हथियारों से लैस होकर पैदा नहीं हुई थी। वह इतिहास की सुदीर्घ और कष्टकर प्रगति का, उसके अनेक दौरों का, अनेक क्रान्तियों और आकस्मिक परिवर्तनों का, परिणाम है। मिल्टन ने उस समय अपनी आवाज बुलन्द की थी जबकि हमारा इतिहास एक संकट का सामना कर रहा था, जब कि स्वतंत्रता ने एक भारी छलांग लगाई थी, जबकि सम्पत्ति के एक रूप की स्वार्थपरता और कट्टरता को भंग करना था, क्योंकि वह हमारी भौतिक और साथ ही बौद्धिक प्रगति को जकड़े हुए थी। "राजचिन्ह और धर्म तथा डेनगेल्ट के अपने चार श्रीमन्तों" के लिए हथियार उठाने वाले व्यक्ति की स्वार्थपरता चकनाचूर हो चुकी थी, किन्तु उसके बदले सम्पत्ति के एक अन्य स्वरूप ने, घिनौनी अहमन्यता ने, उसकी जगह ले ली थी जो अब, हमारे अपने समय में, हमारी प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध हो हो रही है, एक जंजीर की तरह जिसने हमारे मस्तिष्कों को जकड़ रखा है और स्वतंत्रता की हमारी विरासत के और आगे विकास को आतंकित कर रही है। मिल्टन के समय से एक राष्ट्र के रूप में हमारा विकास हो गया है और हमारा इंग्लैंड भी तब से बहुत कुछ बदल गया है। लेकिन अब वह समय आ गया है जबकि मिल्टन के वंशज यह मानने के लिए बाध्य हैं कि आर्थिक दासता और राष्ट्रीय ह्रास एक-दूसरे के साथ गुंथे हुए हैं, इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। यदि राष्ट्र को जीवित रहना है, तो स्वतन्त्रता को एक छलांग आगे और लगानी होगी।

इस आशंका के बावजूद कि कहीं आप मुझ पर एक ऐसा राजनीतिक सबक पढ़ाने का दोषारोपण न करने लगें जिसका, ऊपर से देखने पर, मेरे केन्द्रीय विषय से कोई वास्ता नहीं दिखाई देता, मैं पाठकों को हमारे इतिहास की दो अत्यंत दुःखद घटनाओं की याद दिलाना चाहूंगा जो

१६३६ के इसी साल में घटी हैं। मैं चाहूंगा कि पाठक देखें कि हमारे राष्ट्रीय जीवन को ये घटनाएं कितनी गहराई तक प्रभावित करेंगी। ऐसा करने पर, मेरा विश्वास है कि, उनकी समझ में आ जाएगा कि इस प्रकार की राजनीतिक घटनाओं और राष्ट्रीय दृष्टि के सारतत्व के बीच बहुत ही वास्तविक सम्बंध है, और हमारी यह राष्ट्रीय दृष्टि ही है जो लेखक की कल्पना को रंगती है।

१६३६ में ब्रिटेन की सरकार ने, जो कि हमारी जनता के भाग्य तथा हमारी राष्ट्रीय विरासत की संरक्षक है, ऐसे दो दुःखद लड़ाइयों मे अपने आपको फंसा लिया है जिनमें विदेशी साम्राज्यवादी हित ब्रिटेन के शाही हितों को आतंकित करते हैं। पहली घटना एबीसीनिया पर इटली का सैनिक आक्रमण[1] था। इसमें शुरू में ढुलमुल ढंग से कुछ विरोध करने के बाद अन्त में ब्रिटिश सरकार ने, बेशर्मी के साथ, अपनी आंखें मूंद लीं और एक मित्र देश के साथ बलात्कार होने दिया। इस प्रकार इटली की फासिस्त निरंकुशता ने पूर्वी भूमध्य सागर में भारी सत्ता स्थापित कर ली और पूर्व के साथ ब्रिटेन के यातायात मार्ग में बाधा खड़ी हो गयी। दूसरी घटना स्पेन से सम्बंध रखती है। वहां की कानूनी तथा जनतांत्रिक सरकार के विरुद्ध जनरलों और सिद्धान्तहीन फासिस्त प्रतिक्रियावादियों के एक दल ने विद्रोह करके उस देश की आजादी और हाल ही में प्राप्त स्वतंत्रता को (जर्मन और इतालवी प्रतिक्रियावाद से एक कीमत पर प्राप्त सहायता के द्वारा) खतरे में डाल दिया था। हमारी सरकार ने, इस मामले में भी, हिचकिचाहट और ढुलमुलयकीनी का परिचय देते हुए, स्वतंत्रता के पक्ष का समर्थन करने के बजाय प्रतिक्रिया की ही पीठ ठोकी। परिणाम इसका यह कि भूमध्य सागर के पश्चिमी द्वार पर हमलावर जर्मन तथा इतालवी साम्राज्यवाद ने पांव जमा लिए।

इन दोनों ही मामलों में सरकार ने संकुचित वर्ग चेतना से उत्प्रेरित होकर काम किया, जिससे वह स्वयं अपनी जनतांत्रिक जनता से दूर और विदेशी निरंकुशता के निकट जा पहुंची। उसने ऐसा काम किया जो राष्ट्रीय हितों के खिलाफ था और जो, अन्ततोगत्वा, भारी सम्पत्ति के

स्वामियों के उस छोटे वर्ग के शाही हितों के भी खिलाफ था जिसका वह प्रतिनिधित्व करती है (इसका यह अर्थ नहीं कि राष्ट्रीय हित व साम्राज्यवादी हित एक समान है—नहीं, वे कतई समान नहीं हैं)। यह सोचना असंगत नहीं कि स्पेन की घटनाएं अंग्रेजी दिमागों में ऐतिहासिक स्मृतियों को जगा दें। हमारी सेना की पताकाओं पर बर्तान्वी रक्त से सिंचित उस आईबेरियन प्रायद्वीप के कितने ही नगरों व गावों के—सलामान्का, बादाजोज, विट्टोरिया, अल्बुएरा, तालावेरा तथा अन्य के—नाम अंकित है। हमारे इतिहास की महानतम समुद्री लड़ाई केप त्राफलगर के पास लड़ी गयी थी। ब्रिटिश शस्त्रों का वह महानतम सैनिक अभियान, जो कि हमारे इतिहास का अन्तिम अभियान था, जिसमें हमने विजय और गौरव दोनों ही प्राप्त किये थे, समान अनुपात में साहस और सैनिक प्रतिभा का जिसमें हमने परिचय दिया था, एक दुस्साहसी तथा सिद्धान्तहीन निरंकुशशाही के खिलाफ स्पेनी स्वतंत्रता की स्थापना के लिए था। स्पेनी स्वयंसेवकों की पांतों में स्पेनी जैकोबिन—स्पेन के क्रान्तिकारी—हमारे साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़े थे।

कवि वर्ड्सवर्थ ने अपनी कल्पनाशील प्रतिभा की अन्तर्दृष्टि से देखा कि यह युद्ध ब्रिटेन और स्पेन दोनों के लिए राष्ट्रीय युद्ध था—इस घिनौनी और अमानवीय मान्यता के खिलाफ समूची जनता का युद्ध था कि वह राज्य भी कायम रहने का अधिकारी है जिसमें "सबके सिरों पर एक ऐसे आदमी के मस्तिष्क का प्रभुत्व है जिसका ध्येय ही इस सिद्धान्त पर अमल करना है कि राज्य की सर्वोच्च सत्ता अपना दामन बचाकर जो कुछ भी कर सकती है वह सब किया जाना चाहिए।" (*सिएट्रा कन्वैन्शन की पोथी से*)। १७९३ में फ्रांस के विरुद्ध छेड़े गये युद्ध के बारे में भी वर्ड्सवर्थ ने इसी अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया और इस युद्ध को, इससे पहले अमरीकी राज्यों की स्वतंत्रता के खिलाफ हुए युद्ध की भांति, गलत और राष्ट्रीय हितों के खिलाफ बताया था। ये युद्ध उनकी दृष्टि में उन श्रीमन्तों के संकीर्ण हितों की खातिर लड़ा गया था जिनका कि सरकार प्रतिनिधित्व करती थी।

उस समय जबकि नैपोलियन एक प्राणवान क्रान्तिकारी शक्ति के

रूप म युरोप के समूचे और छोर म ... . के बन्धनो को छिन्न-भिन्न करने वाला न रहकर इतिहास के द्वन्द्वात्मक चक्र में फंस कर उन्ही सामन्ती ताकतों का साथी और संरक्षक बन गया, अपने राष्ट्र को मुक्त करने वाला न रहकर अन्य राष्ट्रों का उत्पीड़क बन गया, तब उसके विरुद्ध युद्ध करना न्यायपूर्ण और आवश्यक हो उठा और खुद उसकी पराजय ने अनिवार्य रूप धारण कर लिया।

खुद हमारे अपने बुर्जुआ वर्ग ने भी, ट्यूडरों के समय से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक, इतिहास में प्रगतिशील भूमिका अदा की, हमारे देश की उत्पादन शक्तियों को विकसित किया, महान साहित्य और महान विज्ञान को जन्म दिया, युरोप के अन्य राष्ट्रों को प्रभावित किया और बदले में उनके प्रभाव को भी उसने ग्रहण किया। आम तौर से, उसके अपने वर्ग हितों और राष्ट्रीय हितों में समानता थी। जब यह समानता नहीं रही, जब सम्पत्ति के लोभ और श्रीमन्तों के संकीर्ण तथा भ्रष्ट शासनतंत्र के निकम्मेपन ने उन्हें अंधा बना दिया, तब राष्ट्रीय सर्वनाश के दिन आये — अमरीकी युद्ध तथा क्रान्तिकारी फ्रांस के विरुद्ध युद्ध के शुरू के वर्ष इसके साक्षी हैं। इसी बुर्जुआ-वर्ग और बुर्जुआ मस्तिष्क वाले हमारे कुलीन वर्ग के नेतृत्व में हमारे इस छोटे से द्वीप के मुट्ठी-भर लोगों ने अपने साहस और शक्ति से एक भारी साम्राज्य का निर्माण किया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने घृणित अत्याचारो का सहारा लिया, विजित देशों में ऐसे निरंकुश शासन स्थापित किए जिन्हें अपने देश में कभी भी सहन न किया जाता। और यह सब इसलिए किया गया कि विजेता अंग्रेजी मध्य वर्ग और उसके कुलीन सहयोगियों को नजराना देने के लिए आधीन राष्ट्रों को बाध्य किया जा सके। किन्तु यहां भी उन्होंने एक प्रगतिशील भूमिका का निर्वाह किया, हालांकि उस अर्थ में नहीं जिसमें कि भारत में ब्रिटिश शासन के हिमायती आजकल इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

मार्क्स ने बर्तानवी औपनिवेशिक शासन के इस क्रान्तिकारी पक्ष का अविस्मरणीय शब्दों में वर्णन किया है। उसे मैं यहां विस्तार के साथ उद्धृत करना चाहूंगा। कारण कि आगे चलकर इस बात की ओर ध्यान

दिलाना भी जरूरी होगा कि हमारे देश और पूर्व के देशों के बीच सम्बंधो मे ही हमें वे महत्वपूर्ण तत्व मिलेगे जो उस नयी कल्पना की रचना करेगे, जिसके अभाव में हम अपनी राष्ट्रीय प्रतिभा को पुनः उर्वर नही बना सकते। भारत पर बर्तानवी शासन के प्रभावों के सिलसिले में मार्क्स ने लिखा था : "अंग्रेजों की दखलंदाजी ने कताई करने वाले को लंका-शायर में और बुनाई करने वाले को बंगाल में स्थापित कर, अथवा हिंदू कताई करने वाले तथा बुनाई करनेवाले—दोनों को मिटा कर, इन छोटी अर्ध-बर्बर और अर्ध-सभ्य बिरादरियों को—उनके आर्थिक आधार को नष्ट कर—विशृंखलित कर दिया है, और इस प्रकार ऐशिया में महान-तम, और सच तो यह है कि एकमात्र *सामाजिक* क्रान्ति को जन्म दिया है..."[१]

"यह सच है कि केवल निकृष्टतम हितों से उत्प्रेरित होकर ही इंग्लैंड ने हिन्दुस्तान में इस सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया और इसे बलपूर्वक लागू करने का उसका तरीका भी मूर्खतापूर्ण था। किन्तु यहां प्रश्न यह नही है। यहां प्रश्न यह है कि एशिया की सामाजिक स्थिति में आधारभूत क्रान्ति के बिना क्या मानव-जाति अपने लक्ष्य को पूरा कर सकती है? यदि नहीं, तो इंग्लैंड ने चाहे जो भी जुर्म किये हों, उस क्रान्ति को सम्पन्न करने में उसने इतिहास के एक अचेतन साधन का काम किया।"[२]

अपने एक अन्य लेख में इसी विचार को आगे विकसित करते हुए मार्क्स ने लिखा :

"*बुर्जुआ वर्ग* चाहे जो कुछ भी करने पर बाध्य हो उससे जन-साधारण का न तो उद्धार हो सकता है और न ही उनकी सामाजिक स्थिति में कोई ठोस सुधार आ सकता है। कारण कि यह बात उत्पादन की ताकतों के विकास पर ही नहीं, वरन् जनता द्वारा उनकी प्राप्ति पर भी निर्भर करती है। किन्तु एक काम करने में उससे चूक नहीं होगी। वह यह कि इन दोनों के लिए भौतिक आधार वह तैयार कर देगा। क्या बुर्जुआ वर्ग ने कभी इससे अधिक भी किया है? क्या इसने व्यक्तियों और जनता को रक्त और कीच में से घसीटे बिना, दुःख और पतन में से घसीटे बिना, कभी भी कोई प्रगति की है?

हिन्दवासी बर्तानवी बुर्जुआ वर्ग द्वारा उनके बीच बिखेरे गए इन नये सामाजिक तत्वों का फल उस समय तक नहीं पा सकते जब तक कि खुद ब्रिटेन के मौजूदा शासक वर्गो का स्थान औद्योगिक सर्वहारा वर्ग नहीं ले लेता, या जब तक कि खुद हिन्दू इतने अधिक मजबूत नहीं हो जाते कि अंग्रेजों के जुवे को एकदम उतार फेंकें।"[१]

मार्क्स की इन भविष्यवाणियों को ध्यान में रखने पर यह समझ मे आ जाता है कि हमारी सरकार की नीति को अफ्रीका और स्पेन में क्यों मुहकी खानी पड़ी। एक ओर हमारा शासक वर्ग अपने भारतीय साम्राज्य—जिस पर कि उसकी आर्थिक शक्ति इस हद तक अवलम्बित है—को सुरक्षित रखना चाहता था। दूसरी ओर वह जर्मनी तथा इटली के फासिस्त आतंकवादियों के बीच मानव-प्रगति के दुश्मनों के प्रति अपनी स्वाभाविक सहानुभूति भी दिखाना चाहता था। इन विरोधी इच्छाओं की खींचतान में वह—जो कि दुनिया में अपनी प्रगतिशील भूमिका को बहुत पहले ही खत्म कर चुका है—कमजोर और मुजरिमाना हद तक ढुलमुल सिद्ध हुआ है, सम्पूर्ण बर्तानवी जनों के हितों से उसने विश्वासघात किया है और हमारी वर्तमान स्वतंत्रताओं और राष्ट्रीय आजादी तक को, मिल्टन के शब्दों में उन सभी गुणों को जिनका कि हमारे पूर्वजों ने हम में संचार किया, खतरे में डाल दिया है। निस्सन्देह अब वे ठीक उस स्थिति में पहुंच गए हैं, जो स्वाधीनता के शत्रु अपनाते हैं, और जिसकी मिल्टन ने घोषणा की थी। यह कि वे "उस निषिद्ध तथा निर्मम कानून को फिर से लागू करें कि पिता जब भी चाहें अपने बच्चों का काम तमाम कर सकते हैं।"

हमारे ह्रासग्रस्त शासकों का भारी भरकम साम्राज्य अन्य ताकतों की—उन ताकतों की जो खुद उनसे भी ज्यादा सिद्धान्तविहीन तथा अत्याचारी हैं, जो खुद अपनी जातीय विरासत और साथ ही समूची मानवता की सामूहिक सांस्कृतिक विरासत से इन्कार करके ह्रास के अन्तिम छोर पर पहुंच चुकी हैं—आंखों में गड़ रहा है। इस साम्राज्य की रक्षा करने के लिए हमारे शासकों को फासिज्म तथा प्रतिक्रिया के विरुद्ध जनतंत्र तथा प्रगति के साथ हाथ मिलाना होगा। किन्तु ऐसा

करने से—और उनकी यह दलील ठीक ही है—और भी निश्चयात्मक रूप से वे खतरे में पड़ जाएंगे, क्योंकि उससे उनके अपने देश की जनता उठ खड़ी होगी। इसलिए वे, डगमगाती हिचकिचाहट के साथ, ऐसी समझौतापरस्ती का दामन पकड़ते हैं, जिससे वे भारत, अफ्रीका अथवा पश्चिमी एशिया में अपनी लुटेरी सत्ता को कायम रखने के लिए किसी बर्तानवी बैंक, बीमा कम्पनी या औद्योगिक इजारेदारी के अधिकार को सुरक्षित रख सकें, चाहे ऐसा करने पर और कुछ न बचे और इससे अधिक महत्वपूर्ण मानवीय अधिकार खतरे में पड़ जाएं।

आज हमारी जनता का हित, हमारा सच्चा राष्ट्रीय हित, जनतन्त्र और राष्ट्रीय मुक्ति के उन महान आन्दोलनों की स्वतंत्रता का समर्थन करने में है जो कि अरब, अफ्रीकी तथा भारतीय जनता में नये जीवन का संसार कर रहे हैं। साम्राजी अत्याचार को कायम रखने के वर्तमान प्रयास के मुकाबले में स्वतन्त्र राष्ट्रों का गठबन्धन सभी की स्वतन्त्रताओं की—खुद हमारी भी—रक्षा के लिए कहीं अधिक शक्तिशाली अस्त्र सिद्ध होगा। यह अत्याचार एक राष्ट्र के रूप में खुद हमारी स्वतंत्रता को भी खतरे में डालता है, क्योंकि साम्राजी शासक गुट, अपने निकम्मेपन के कारण, जगन्नाथ के उस रथ से अपनी रक्षा नहीं कर सकता जिसका निर्माण उसने खुद किया है। यह जगन्नाथ का रथ अपने पहियों के नीचे उन्हें कुचल डालेगा। अपनी स्थिति को समझ कर यदि हम उन्मुक्त इग्लैंड की ओर से उन्मुक्त भारत, अफ्रीका और अरबिस्तान की ओर मित्रता का हाथ नहीं बढ़ाते तो वह हमें भी कुचल डालेगा।

एक राजनीतिक प्रश्न पर इतने विस्तार के साथ मैंने क्यों लिखा? कारण यह कि इस प्रश्न के समुचित हल के साथ कलात्मक रचना का वह प्रश्न जुड़ा है जो कि मेरे इस निबन्ध का विषय है। एक जाति के रूप में हमारे भाग्य का आज निर्णय हो रहा है। हमारा यह सौभाग्य है कि हमने इतिहास के एक ऐसे दौर में जन्म लिया है जो व्यक्तिगत रूप में हममें से प्रत्येक से अपना निजी निर्णय करने की मांग करता है। हैमलेट यह सोच कर विलाप कर सकता था कि उसका जन्म ऐसे संधि-काल में क्यों हुआ और हम भी इससे अधिक शान्तिपूर्ण काल की इच्छा

कर सकते है, किन्तु अपना निर्णय करने के प्रश्न से न तो हैमलैट का पीछा छुटा था और न हम ही उससे बच सकते हैं। हम मृतकों के साथ उसी आध्यात्मिक बिरादरी का एक अंग हैं जिसका कि वर्ड्सवर्थ ने जिक्र किया था। हम अलग नहीं खड़े रह सकते, और अपने कर्म से अपनी कल्पना का हम विस्तार करेंगे, कारण कि हमें अपनी चिरपोषित आकाक्षाओं-उमंगों के प्रति सच्चा रहना है।

मेरी इस निबन्ध रचना के दौरान में लन्दन में आस्ट्रेलिया के एक प्रसिद्ध नाटककार, आर्थर इनोज्लर का यहूदी-विरोध पर एक नाटक खेला जा रहा है। मि. डेस्मण्ड मैकार्थी[1] ने अपनी सूक्ष्म समालोचना में कहा है कि यह नाटक एक पुराने फैशन का नाटक है, इसके अलावा इसका लेखक भी अब इस दुनिया में नहीं है। किन्तु इसकी विषय-वस्तु आज भी खूब जीवित है, लेखक के जीवन-काल की तुलना में कहीं अधिक जीवित है और यह नाटक — जैसा कि मि. मैकार्थी ने कौतुक-पूर्ण ढंग से किन्तु सच ही कहा — पुराने फैशन का केवल इसलिए है कि "इसकी गठन ठीक वैसी ही है जैसी कि इस ढंग के नाटक की होनी चाहिए। आजकल ऐसे नाटक विरले ही लिखे जाते हैं, कारण कि जो नाटककार अपने धंधे के माहिर हैं वे खुद जीवन के बारे में कुछ सोच सकने मे असमर्थ हैं और इसलिए उचित ही वे ऐसे नाटक लिखने की कोशिश नही करते जो लोगों को सोचने का मौका दें।"

कलाकार नहीं जानता कि वह जीवन के बारे में क्या सोचे। किन्तु जब तक कलाकार जीवन के बारे में कुछ सोचने का साहस नहीं करता तब तक वह जीवन की रचना भी नहीं कर सकता। असहत्वपूर्ण लोगो का एक छोटा-सा चित्र वह बना सकता है या किसी निर्दोष-सी भावना को लेकर बहुत ही सफाई से बाल की खाल निकाल सकता है, किन्तु बिना विचार के वह जीवन की रचना नहीं कर सकता। "मैं सोचता हूं, इसलिए मेरा अस्तित्व है," यह बात कला के लिए भी सार्थक है और जीवन के लिए भी। फ्रांसीसी निबंधकार अलेन ने बहुत ही समझदारी के साथ बताया है कि समसामयिक मनोविज्ञान का मुख्य दोष यह है कि पागलों और रोगियों में उसका जरूरत से ज्यादा विश्वास है। यह भी

जीवन से आम भय का, मानवता की बिरादरी से बाहर रहने के प्रयास का, एक हिस्सा है। "हमें इस बिरादरी से अलग नहीं किया जा सकता," यह वर्ड्सवर्थ का निष्कर्ष था, "और इसीलिए हम आशावान हैं।" आशा अकेले इसी शर्त पर लौट सकती है कि हम बिरादरी से अलग न हों।

आधुनिक उपन्यासकार, आधुनिक मनोविज्ञान की प्राथमिक गलती में फसकर, पागलों और रोगियों में अपनी कल्पना के लिए आधार खोजता है। आशा का, अथवा आशा का आधार खोजने के साहस का, उसमें अभाव है। यह मि. एवलिन वौघ के बारे में भी उतना ही सच है, जितना कि अल्डस हक्सले के बारे में। इस आधार को स्वीकार करने के परिणामस्वरूप मि. वौघ रोमन-गिरजे के रहस्यमय-निराशावाद की शरण में जा पहुंचे हैं और मि. हक्सले इसी आधार को मानकर एक नकारात्मक शान्तिवादी अराजकता का प्रचार करते हैं जिसमें किसी भी प्रकार की क्रियाशीलता के लिए जगह नहीं होती और जो व्यवहार में मि. वौघ की दुनिया और उसके पापों से सन्यास लेने की धारणा से विशेष भेद नहीं रखती। "भले और नेक हाथों में," वर्ड्सवर्थ का खयाल था, "तलवार घृणा का सबसे स्पष्ट समझ में आने वाला प्रतीक है।" किन्तु अल्डस हक्सले हैं कि नेक और बद में तमीज नहीं कर पाते, कारण कि ऐसा कर सकने के लिए जीवन के बारे में एक ऐसे दृष्टिकोण की जरूरत है जो पागलों और रोगियों पर आधारित न हो। फलतः वह खुद बुराई से भी ज्यादा घृणा के प्रतीक से घृणा करते हैं।

जिस पौष्टिक द्रव्य के अभाव में हमारी आधुनिक कल्पना क्षीण हो रही थी, उसे आज रूसी क्रान्ति ने प्रदान किया है। वह घोषणा करती है कि मानव द्वारा मानव के उत्पीड़न और शोषण के बिना, उन्मुक्त और समान जातियों के मित्रतापूर्ण सहयोग के आधार पर, मानव के जीवन का संगठन किया जा सकता है। यही वह चीज है जिसमें सोवियत साहित्य का—बावजूद इसके कि वह अभी इतना नया और अपरिपक्व है—महत्व निहित है। वह हमें बताता है कि अपनी शक्ति के अक्षय स्रोतों से किस प्रकार हम ताजा बल प्राप्त कर सकते हैं। शक्ति का वह स्रोत्र है हमारी *स्वतन्त्रता*, जो उस गुण से उत्पन्न हुई है जिसका हमारे

पूर्वजों ने हममें प्रतिपादन किया था। यह मानव को वैसा बनाने की स्वतन्त्रता है जैसा कि उसे होना चाहिए—"परिस्थितियों का एकछत्र स्वामी," जैसा कि मार्क्स ने कहा था।

वर्ड्सवर्थ उस निर्बाध शक्ति से परिचित थे जिसने उनके काल में कल्पना को बल प्रदान किया था। इस शक्ति का स्रोत फ्रान्स की क्रान्ति थी। "ऊषा की उस वेला में जीवित रहना एक महान् अनुभव था," उन्होंने कहा था, और ऊषा की उस बेला की महानता ने उनकी आंखों को 'गीति काव्यों' की नयी दृष्टि प्रदान की। बाद में, संघर्षों से पूर्ण बोझिल वर्षों ने वर्ड्सवर्थ की इस दृष्टि को कुछ धुंधला कर दिया। किन्तु स्पेन में राष्ट्रीय क्रान्ति के उत्थान के साथ और इस क्रान्ति से अंग्रेज जनता के हृदयों में भावनाओं का जो ज्वार उठा, उसके साथ, उनकी दृष्टि पुन: जीवित हो उठी। इससे अनुप्रेरित होकर वर्ड्सवर्थ ने अंग्रेजी गद्य की एक अमूल्य निधि—*ट्रैक्ट ऑन दि कन्वेंशन आफ सिण्ट्रा*—की रचना की। यह ट्रैक्ट काव्यात्मक कल्पना के वास्तविक आधार का, मानव की कल्पना और मानव के जीवन के बीच सच्चे सम्बंध का, उद्‌घाटन कर देता है:

"उत्पीड़न ने, जो कि खुद अपना अंधा तथा पूर्वनिश्चित शत्रु है, स्पेन पर इस एक वरदान की वर्षा की है—अपमान-लांछनों की प्रचण्डता ने, जिनका कि वह शिकार रहा है, प्रेम और घृणा के एक पात्र की—आशंकाओं और आशाओं के एक पात्र की रचना कर दी है—जो मानव-आत्मा की बड़ी-से-बड़ी आकांक्षाओं के (यदि ऐसा सम्भव हो सके तो) अनुकूल है। वह हृदय, जो इस लक्ष्य की सेवा में जुटा है, यदि क्षीण होता है तो ऐसा अपनी निजी कमजोरी के कारण ही होता है, बाहरी पोषण के अभाव के कारण नहीं। किन्तु पुस्तकों ने इस विश्वास का प्रचार किया है और वाक्‌चतुर लोगों में भी एक बुद्धिमत्तापूर्ण कथन के रूप में यह प्रचलित है कि अनेक लोगों के हृदय कमजोर होते हैं, कि उनका क्षय होता *ही* है; और यह कि जरूरत के वक्त ये मुश्किल से ही डटे रह सकते हैं। मेरा अनुरोध है उनसे जो इस भ्रम को संजोकर रखे हैं कि जरा अपने पीछे मुड़कर और अगल-बगल नजर डालकर अनुभव

की साक्षी प्राप्त करें। अब इससे, ठीक से देखा जाए तो न केवल इस भ्रम को कोई टेक नहीं मिलेगी, बल्कि सिद्ध होगा कि सचाई ठीक इससे विपरीत है। सभी युगों का इतिहास; एक के बाद दूसरी उथल-पुथल; वैदेशिक या घरेलू युद्ध, छुटपुट या सांस लेने का भी अवकाश न छोड़ने वाले, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, युद्ध — क्यों और किसलिए ? फिर भी साहस के साथ, अडिग धीरज के साथ, आत्म-बलिदान और जोश के साथ, क्रूरता के साथ — जो स्वयं अपनी भयानक नग्नता से क्रूर आदमी को आगे ढकेलती है और अधिक भले लोगों को आकर्षित करने के लिए एक ऐसी झीनी छाया से अपने-आपको ढक लेती है जो उसे पवित्रता प्रदान करती प्रतीत होती है — ये युद्ध लड़े जाते हैं; गुटों का बेमानी ताना-बाना और साजिश-दर-साजिश — उत्तरी रोशनियों की भांति उनका ओझल होना, और फिर प्रकट होकर एक-दूसरे को बींधने लगना; हलचल — सार्वजनिक भी और व्यक्तियों के हृदयों को झंझोड़नेवाली भी; लम्बे विरह का ताप जो प्रेमी को जलाता है; थपेड़े — रेगिस्तानी आंधियों के थपेड़ों के समान, जो जुआरी के मस्तिष्क के भीतर उसके अपने रचे हुए भयानक शून्य में बारहों महीने सनसनाते रहते हैं; धीरे-धीरे किन्तु हर घड़ी तेज होती हुई फिसलनी भूख जो कंजूस का कभी पीछा नहीं छोड़ती; वेदनामय और हृदय को विदीर्ण करने वाले शोक का उत्पीड़न; प्रेत के समान लज्जा का हावी रहना; प्रतिशोध की न बुझने वाली आग; जीवन को रंगने वाली आकांक्षा; ये अन्तर्मुखी जिन्दगियां, और हर नगर तथा गांव में आए दिन की प्रत्यक्ष तथा परिचित घटनाएं; नगर की सड़कों तथा नाट्यशालाओं की दीवारों के भीतर जन-समूहों का धैर्यपूर्ण कौतूहल और छूत के समान फैलने वाले हर्षोद्गार; जलूस या देहाती नृत्य; शिकार या घुड़दौड़; बाढ़ या अगलग्गी; सौभाग्य की अप्रत्याशित न्योछावर या किसी जागीरदार के मूर्ख उत्तराधिकारी के आगमन पर रंगरलियों और घटियों की झंकार; ... ये सब अकाट्य साक्षी हैं इस बात के कि लोगो के राग-अनुराग (मेरा मतलब लोगों के हृदय में उनकी संवेदनशीलता की आत्मा से है) — सभी झगड़ों में, सभी मुकाबिलों में, सभी खोजो मे, सभी रंगरलियों में, सभी कार्यों में जिनमें या तो मनुष्य स्वयं व्यस्त

रहते हैं या जो उनपर लाद दिये जाते हैं—प्रस्तुत उद्देश्य से कहीं अधिक ऊपर उठ जाते हैं। मानवता का सच्चा दुःख इस बात में नहीं है कि मानव मस्तिष्क विफल हो जाता है; बल्कि इस बात मे है कि कर्म और जीवन की गति तथा उनके तकाजे मानव की आकांक्षाओं की गरिमा तथा गहराई से बहुत ही कम मेल खाते हैं; और इसीलिए, जो सहज ही क्षीण नहीं हो पाता, वह इतनी आसानी से अलग हटा दिया जाता है, और उसका दुरुपयोग किया जाता है।"

कल्पना और जीवन के पारस्परिक सम्बंध के बारे में वर्ड्सवर्थ का यह दृष्टिकोण उस दृष्टिकोण के ठीक विपरीत है जिसका मि. मैकार्थी ने इनीज्लर की अपनी आलोचना में व्यक्त किया था और जो आधुनिक लेखकों मे इतनी व्यापकता के साथ प्रचलित है। वर्ड्सवर्थ का यह दृष्टिकोण एक क्रान्तिकारी तथा वीरत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। कारण कि इसकी जड़ें इस विश्वास में जमी हैं कि मानव "परिस्थितियों का एकछत्र स्वामी" है और यह कि मानव की आकांक्षाओं की गरिमा तथा गहराई केवल कर्म की वैतरणी पार करने के बाद ही सार्थक हो सकती है। इतिहास में, प्रत्येक व्यक्ति के निजी तथा मानव जाति के सामूहिक इतिहास में, ऐसे अवसर विरले ही आते हैं जब जीवन के तकाजों में और मानव की आकांक्षाओं की गरिमा तथा गहराई में पूर्ण मेल हो। हमारे सम्मुख आज ऐसा ही एक अवसर प्रस्तुत है जबकि समूची दुनिया के वर्ग-द्वन्द्व ने "प्रेम और घृणा के एक पात्र की, आशंकाओं और आशाओं के एक पात्र की, रचना कर दी है—जो मानव-आत्मा की बड़ी-से-बड़ी आकांक्षाओं के (यदि ऐसा सम्भव हो सके तो) अनुकूल है। इसे समझने की जिस उपन्यासकार में क्षमता होगी, एक दिव्य विभूति की भांति वह अपने समय की सीमाओं से ऊपर उठ जायगा, आधुनिक सभ्यता के महाकाव्य का वह सृजन करेगा और हमारे अंग्रेजी साहित्य की परम्परा का सच्चे मानी में उत्तराधिकारी कहलाएगा।

फ्रान्स में हमारे बन्धु-जनतंत्र के जीवन का जिन्होंने निकट से अनुसरण किया है, उन्हें यह बताने की जरूरत नहीं कि जनतांत्रिक भावना के राजनीतिक पुनर्जागरण के समानान्तर वहां के बौद्धिक जीवन में एक

आंदोलन चल रहा है। फ्रान्स की जनता अपनी राष्ट्रीय आजादी और अपनी समूची बहुमूल्य राष्ट्रीय विरासत को खतरे म पड़ा देख अपनी स्वतन्त्रताओं को कायम रखने तथा अपने देश को स्वाधीन, सुदृढ़ और खुशहाल बनाने के लिए एक सामूहिक मोर्चे में एकजूट हो गयी है। यह आन्दोलन मेहनतकश जनता की सामूहिक एकता की गठन से शुरू होकर क्रमश: फैलता और बढ़ता हुआ प्रत्येक वर्ग के उन सभी लोगो को अपने भीतर समेट रहा है जो अपने श्रम पर जीते हैं। इसी के साथ-साथ फ्रांसीसी साहित्य के अत्यंत विविध तत्वों को—खासतौर से उपन्यास-कारों को—एकजूट करने में उसने सफलता प्राप्त की है। कम्युनिस्ट मालरो, अराजकवादी सेलीन, उदारपंथी जूलरोमें, समाजवादी ब्लौच,[1] सर्वोच्च व्यक्तिवादी जीद—सबने एक समान आधार पा लिया है। वे एक बार फिर अपनी जनता की बिरादरी में शामिल हो गये हैं और उसकी मदद ने फांसीसी साहित्य की महान् परम्परा मे नयी जान डालना उनके लिए सम्भव बना दिया है। उन्हें अब कलाकार के प्रति उस भारी लान्छन को सहने की आवश्यकता नहीं जो कि मि. डैसमण्ड मैकार्थी ने बर्तानवी नाटककारों पर लगाया था, यह कि वे यह नहीं जानते कि जीवन के बारे में क्या कुछ सोचें।

उपन्यास में नयी जान डालने के लिए जिस आधुनिक तथा क्रान्ति-कारी कल्पना को मैं आवश्यक समझता हूं, उसमें एक तत्व और होना चाहिए। वह तत्व है रंग, कल्पना की उड़ान, और व्यंग की दृष्टि। रैने-सा के बाद से इनका करीब-करीब लोप हो चुका है। तब पूर्व से हमने इन्हे प्राप्त किया था। जादू भरे पूर्व की खोज ने, चीन के महान रेगिस्तानो को पार करने वाले कारवानों ने, इंग्लैंड और पुर्तगाल के नाविकों द्वारा विश्व की परिक्रमाओं ने, उस काल में सभ्यताओं के बीच जो सम्पर्क स्थापित किया, उससे लोगों के मस्तिष्क सचमुच में अनुप्राणित हो उठे। वह तत्व जिसकी ओर यहां मैं संकेत करना चाहता हूं, शायद सर्वेण्टीज मे सबसे अधिक उज्ज्वल रूप में दिखाई देता है, किन्तु आप उसे शेक्सपीयर में भी देख सकते हैं।

आज एशिया अपनी लम्बी नींद से जाग रहा है, और कल्पना का

यह पोषण हमें अब पुनः प्राप्त होगा। एशिया की प्राचीन और ऐतिहासिक जातियों की अक्षय जीवन-शक्ति अब क्रान्तिकारी उभार ग्रहण कर रही है। भावुक लोग पूर्व में 'पश्चिमी' विचारों के—अर्थात आधुनिक विज्ञान और उत्पादन के साधनों के—प्रतिपादन को कोसते हैं। उन्हें कोसने की आवश्यकता नही। एशिया की जातियां, जो आंशिक रूप में अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर चुकी हैं, एक बार इन पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेंगी तो दास भाव से हमारी अपनी कमजोरियों की नकल करना छोड़ देंगी। जीवन के बारे में नया दृष्टिकोण बनाने में उनका सहयोग तब आवश्यक होगा, और वह उस दृष्टिकोण का कुछ कम महत्वपूर्ण अंश सिद्ध नही होगा। एशिया की जातियों का मैं इसलिए उल्लेख करता हू, क्योंकि उनकी सभ्यता दुनिया में सबसे पुरानी और सबसे मजबूत है। साथ ही हमें यह भी नजरन्दाज नहीं करना चाहिए कि उन्मुक्त मानवता की इस कल्पना को सशक्त बनाने में अफ्रीका तथा अमरीका की हिन्द-स्पेनी जातियों की शक्ति के प्रायः अछूते भण्डार भी योग देंगे।

दुनिया आज बुरी तरह विभाजित है। किन्तु एकता की ताकतें भी क्रियाशील हैं, और यह एक ऐसी बात है जिसे नये युग के उपन्यासकार को हमेशा अपने दिमाग में सर्वप्रथम स्थान देना चाहिए। एकता की इस प्रक्रिया का भारत सम्बंधी अपने लेखों में मार्क्स ने बहुत ही अच्छा वर्णन किया है। इन लेखों में से मैं पहले भी उदाहरण दे चुका हूं और अब फिर, इस निबंध का अन्त करते समय, इससे अच्छी बात और क्या होगी कि मार्क्स का एक अन्य उदाहरण यहां दूं जिसमें उन्होंने पूर्व और पश्चिम के सम्बंधों का विश्लेषण किया है :

"एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में पूंजी के अस्तित्व के लिए पूंजी का केन्द्रीकरण आवश्यक है। विश्व की मंडियों पर इस केन्द्रीकरण का विनाशकारी प्रभाव, राजनीतिक अर्थतंत्र के उन सन्निहित मूल कानूनो को प्रकट करता है जो हर सभ्य नगर में, अत्यंत भीमाकार परिमाणो मे, आजकल क्रियाशील हैं। इतिहास के इस बुर्जुआ काल को नयी दुनिया के भौतिक आधार का निर्माण करना है—एक ओर मानवजाति की पारस्परिक निर्भरता पर आधारित सार्वभौमिक आदान-प्रदान और इस

आदान-प्रदान के साधन; और दूसरी ओर मानव की उत्पादक ताकतों का विकास और प्राकृतिक प्रसाधनों पर वैज्ञानिक प्रभुत्व के लिए भौतिक कायापलट। बुर्जुआ उद्योग और व्यापार नयी दुनिया की इन भौतिक उत्पादन की परिस्थितियों की उसी प्रकार रचना करता है जैसे कि पृथ्वी के गर्भ में हुई क्रान्तियों ने धरती की सतह की रचना की है। जब एक महान सामाजिक क्रान्ति बुर्जुआ युग की देनों पर — विश्व की मण्डी और उत्पादन की आधुनिक ताकतों पर — अपना प्रभुत्व कायम कर लेगी और उन्हें अत्यंत उन्नत जातियों के सामूहिक नियंत्रण के मातहत सौंप देगी, केवल उसी समय मानव प्रगति हिन्दुओं की उस देवी के समान नहीं रहेगी जो केवल बलि किये हुए प्राणी की खोपडी से ही अमृतपान करती है।"[1]

हेनरी बारबूस

कुछ ही सप्ताह पहले की बात है जब मैंने हेनरी बारबूस को पेरिस में हुई विश्व लेखकों की कांग्रेस[1] की मंच पर देखा था: प्रेरणा के स्रोत, नेतृत्व करते हुए, हृदय में एक नये संसार के लक्ष्य के प्रति भक्ति की जोत जगाये !

दुबला-पतला शरीर, क्षीण ढांचा। शुभ्र मस्तिष्क। गालों की हड्डियां उभरी हुई। आंखें भीतर की ओर गहरी धंसी; किन्तु अनुप्राणित, जिनमें दुर्बल शरीर के बावजूद थकान की छाया तक नहीं। जिसने भी उन्हें देखा, प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

खचाखच भरे और उत्सुकता से दम साधे उस हाल में जैसे ही वह बोलने के लिए खड़े हुए, उनके अभिनन्दन में जोरों से करतल ध्वनि गूंज उठी। इस गूंज ने उन्हें अपने में समेट लिया। उसकी प्रेम की गरमाई से एक क्षण के लिए वह विचलित से हो उठे।

ऐसा लगता था मानो यह आदमी और समूची जनता एक,हो गये हों।

फ्रान्स के मजदूर और क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी हेनरी बारबूस को हृदय से चाहते थे — वह उनके प्यारे थे। इस प्रेम का कारण था उनके लक्ष्य के प्रति, समूची दुनिया के मजदूरों के लक्ष्य के प्रति, साम्यवाद के लक्ष्य के प्रति, बारबूस की गहरी और अडिग लगन।

एक बार फिर, केवल तीन सप्ताह बाद, मैंने उन्हें दुबारा देखा। और यह उनका अन्तिम दर्शन था। लेकिन सम्भवतः यह उनके जीवन का सबसे महान दिवस था। वह एक टैक्सी में खड़े थे। उनका लम्बा, कुछ-कुछ झुका हुआ शरीर एक विशाल लाल झंडे की परतों में घुलमिल

रहा था। पेरिस की जनता के एक महानतम प्रदर्शन की, एक ऐसे प्रदर्शन की जो कि क्रान्तियों के इस नगर के लिए भी अभूतपूर्व था, वह अगुवाई कर रहे थे।

यह चौदह जुलाई[1] का दिन था, दुनिया को बदल देने वाली १७८९ की महान क्रान्ति की वर्षगांठ का दिन। जन-मोर्चा आगे बढ़ रहा था। लगभग पांच लाख स्त्री और पुरुष, उन अधिकारों की रक्षा के लिए कमर कसे आगे बढ़ रहे थे जिन्हें उस क्रान्ति ने जीता था। उनकी मांग थी—मेहनतकशों को रोटी दो, काम दो, शान्ति दो। वे उन फासिस्त लुटेरों को निहत्था करना चाहते थे जो सभ्यता को आतंकित कर रहे थे।

उस महान जन-आन्दोलन की सफलता का श्रेय जितना अधिक हैनरी बारबूस को है उतना अन्य किसी को नहीं। और उस आन्दोलन का प्रभाव, आज भी समूची दुनिया में अनुभव किया जा सकता है। यह हैनरी बारबूस ही थे जिन्होंने युद्ध तथा फासिज्म के विरुद्ध एकता के लिए ऐम्स्टर्डम-प्लेयेल आन्दोलन[2] की नींव डाली और चौदह जुलाई १९३५ को सम्भव बनाया। जन मोर्चे की महान विजय भी उनकी ही विजय थी।

हैनरी बारबूस का स्मरण सदा इसी रूप में किया जाना चाहिए—फ्रान्स के शानदार मजदूरों के प्रेम से आलोकित, तथा उनकी क्रान्तिकारी जीत से सदा अनुप्राणित। तो भी उनके जर्जर शरीर और जमाने की चोट खाये चेहरे को देखकर यह कभी नहीं भुलाया जा सकता था कि कितना भयानक और कितना कठिन संघर्ष उन्हें जीवन में करना पड़ा। उनका जन्म १८७३ में हुआ था, और फ्रान्सीसी बुद्धिजीवियों की युद्ध-पूर्व की पीढ़ी के सांचे में वह ढले थे। उनकी किम्कर्तव्यविमूढ़ता, और उनकी निराशावादी सौन्दर्य-भावना, उन्हें उन्हीं से मिली थी।

कवि और उपन्यासकार, एक फैशनेबुल पत्रिका के तरुण साहित्यिक सम्पादक! जन साधारण से न तो उनका कोई सम्पर्क था, न उसके प्रति सहानुभूति। तब भी उनमें एक चीज थी। यह चीज थी, गहरी सम्वेदनशीलता और मानव जीवन की विडम्बना के प्रति क्षोभ।

जैसा कि लेनिन ने कहा था, वह एकदम अनजान थे, स्वयं अपने विचारों तथा अंधविश्वास से दबे हुए—मध्यम वर्ग के एक शान्तिप्रिय,

विनम्र कानून पसन्द सदस्य थे एक हत्याकांड ने हैनरी बारबूस की कायापलट कर दी। यह हत्याकांड था साम्राज्यवादी युद्ध का हत्याकांड। अगर एक बार फिर लेनिन के ही शब्दों को इस्तेमाल करें तो हम कहेंगे कि वह एक अत्यंत दृढ़ प्रतिभाशाली तथा न्यायप्रिय व्यक्ति बन गये।

उनकी पुस्तक *ले फ्यू* (आग की लपटों में) युद्ध के विरुद्ध पहली आवाज थी। यह एक ऐसी आवाज थी जिससे पता चलता था कि इस पुस्तक का लेखक खाइयों के नारकीय जीवन से गुजरा है और उसने सभी कुछ अन्त तक देखा है।

आग की लपटों में एक ऐसी पुस्तक है जो चौकस, किन्तु कुछ-कुछ अनिश्चित ढंगों से, तो भी पूरी स्पष्टता और असंदिग्धता से, केवल एक ही सबक देती है; वह यह कि युद्ध के पाप का अन्त तभी हो सकता है जबकि हर देश के उन अपराधियों के खिलाफ एक जीवनान्त युद्ध छेड़ दिया जाए जो जन समुदायों को बलि का बकरा बना रहे हैं।

१६१७ में, स्वयं एक सैनिक—एक अफसर—द्वारा ऐसी पुस्तक का लिखा जाना व्यक्तिगत और सामाजिक साहस का उल्लेखनीय कृत्य था। लेनिन ने सदा जोर देकर कहा था कि हैनरी बारबूस की पुस्तक *आग की लपटों में* और उसकी अगली कड़ी *आलोक* पश्चिमी देशों की जनता में क्रान्तिकारी भावना के संचार की ज्वलंत उदाहरण थीं।

तब से बारबूस के सामने केवल एक ही लक्ष्य रहा है: कम्युनिज्म के लिए क्रान्तिकारी संघर्ष का लक्ष्य। युद्ध के कारण उनका स्वास्थ्य ध्वस्त हो गया था। निजी जीवन उनका ऐसा था कि सुख पास नहीं फटकता था। लेकिन वह थे कि अपने-आपको और अपनी प्रतिभा को पूर्णतया मजदूर वर्ग की सेवा में होम दिया। उनका महान उपन्यास *जंजीरें*, बावजूद इसके कि उसे पूर्णतया सफल प्रयास नहीं कहा जा सकता, युगों-युगों से मानव को दासता की जंजीरों में जकड़ने के क्रम का चित्रण करता है। इसके पन्ने हर देश में जनता के उत्पीड़कों तथा आततायियों के प्रति मानव की घृणा की दहकती कहानियों से भरे हैं। उत्पीड़ितों के प्रति उनके महान प्रेम और शोषकों के प्रति उनकी घृणा के वे साक्षी हैं।

फ्रान्स में जोला जैसे महान लेखक को, सौन्दर्यवादियों और बुद्धि-जीवियों ने जिसे रद्दी की टोकरी में फेंक दिया था, फिर से अपने पद पर स्थापित करने का काम सबसे पहले जिन लोगों ने किया, उनमें हैनरी बारबूस भी थे। साथ ही पहले 'क्लार्ते'[1] और बाद में 'मौन्दे'[2] के संपादक की हैसियत से, फ्रान्स के बुद्धिजीवियों के आन्दोलन में उन्होंने क्रमशः एक सुदृढ़ वामपक्ष का निर्माण किया।

उनकी अन्तिम पुस्तक, जो कुछ ही दिनों में इंग्लैंड में प्रकाशित होने वाली है, स्तालिन की जीवनी है। यह पुस्तक दुनिया के मजदूरों के नेता तथा सोवियत संघ में एक स्वतंत्र, समाजवादी समाज के सफल निर्माण के प्रति एक महान लेखक की श्रद्धांजलि है।

मृत्यु से पहले वह लेनिन के पत्रों का टिप्पणियों-सहित एक संस्करण तैयार करने में जुटे हुए थे। इसके साथ ही वह एक महान उपन्यास भी लिख रहे थे जिसका उद्देश्य उन परिवर्तनों को प्रतिबिम्बित करना था जो कि आज सभी मानवीय सम्बंधों में हो रहे हैं।

बारबूस का नाम समूची दुनिया में फैला हुआ है। शायद ही कोई भाषा हो जिसमें उनकी कृतियां अनूदित न हुई हों। उन लाखों-लाख लोगों के लिए भी, जिन्होंने कभी उन्हें देखा नहीं, जो उनके देश तक को नहीं जानते हैं, वह सभ्यता की आहत आत्मा के प्रतीक थे, वह पूंजी के दानवों और उनके पिट्ठुओं के प्रति विरोध और विक्षोभ की साकार प्रतिमा थे।

वह एक ऐसे मानव थे जिन्होंने कटु संघर्षों के दौरान में अपने-आप को नये सांचे में ढाला, एक ऐसे सांचे में जिससे कि वह उस बहुलक्षी जनता की आवाज बन सके, जो पूंजीवादी क्रूरता तथा मानवीय सम्बंधों के पूंजीवादी भ्रष्टीकरण से सदा के लिए मुक्त एक नये और उन्मुक्त समाज के लिए संघर्ष कर रही है।

बारबूस, जिनकी महान पुस्तक *आग की लपटों में* शत्रु के मुंह पर दागी गयी गोली थी और जो अभी अपने को अकेला अनुभव करते थे, मोर्चे पर लड़ते हुए मरे। संघर्षों ने यद्यपि उन्हें निःसत्व कर दिया था,

ता भी वह विजय की ओर प्रयाण करती अनगिनत सेना के एक प्रिय नता बन चुके थे।

ऐसे समय में जबकि एक नया विश्वयुद्ध सिर पर मडरा है, क्रान्ति के वीर हैनरी बारबूस से हम विदा लेते हैं और उनका अभिनन्दन करते हैं।

डेली वर्कर, ३१ अगस्त, १९३५।

साहित्य और राजनीति*

मैक्सिम गोर्की का निधन — जो कि, मैं समझता हूं इस बात से सभी सहमत होंगे, हमारे युग के महानतम कहानी-उपन्यास लेखकों में से थे— इतनी गहरी क्षति है कि उसे उनके अपने देश सोवियत संघ की सीमाओ से बाहर दूर-दूर तक अनुभव किया गया है। गोर्की स्वयं इतने महान साहस, इतनी गहरी सादगी और इतनी सच्ची ईमानदारी के आदमी थे कि उन्हें न केवल उनके अपने देश के लोग ही, बल्कि दुनिया भर के सभी देशों के लोगों का — उन सभी लोगों का जो गोर्की की भांति मानवता के लिए समान संघर्ष में जुटे हुए हैं — प्यार प्राप्त हुआ।

पिछले महीनों के भीतर इंग्लैंड में हमारे तीन या चार लेखकों का — और शायद एक या दो *महान* लेखकों का — निधन हुआ है। उनके सम्मान में सभाओं का कोई आयोजन नहीं किया गया। किन्तु आज रात हम एक ऐसे आदमी को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं जो दूसरे देश मे पैदा हुआ है और हमारे लिए विदेशी है। स्वयं अपने देश की सीमाओ से बाहर यह इतना प्यारा बन सका, इसका कारण यह था कि उसने अपनी कृतियों में भारी सचाई के साथ, दुनिया के सभी हिस्सों की शोषित जनता की वेदना को, उनकी आशा-आकांक्षाओं और विजय पाने की उनकी इच्छा-शक्ति को, व्यक्त किया था। ऐसे कम ही लोग हैं जिन्होने मानवीय नीचता के विरुद्ध उतनी लगन और उतने साहस से संघर्ष किया, जितना गोर्की ने। ऐसे लोग कठिनाई से ही ढूंढे मिलेंगे जिन्होंने गोर्की

---

* जून १९३६ में कौनवे हाल, लन्दन में मैक्सिम गोर्की की स्मृति में हुई एक सभा में दिया गया भाषण। — सं०

की भांति, इतनी स्पष्टता से इस सत्य को देखा कि मानवीय नीचता की जडे हमारी सभ्यता के साम्पत्तिक ढांचे में जमी हैं।

अपने अन्तिम सार्वजनिक भाषण में, जिसकी सर्वश्री ह्युबर्ट ग्रिफिथ और रैल्फ बेट्स[1] ने आज की सभा में अभी चर्चा भी की है, सोवियत लेखक संघ की पहली कांग्रेस का उद्‌घाटन करते हुए गोर्की ने कहा था:

"न्यायाधीश की हैसियत से हम फैसला देते हैं इस दुनिया के बारे में जिसे नष्ट होना ही होना है, और मानव की हैसियत से हम ऊंचा उठाते हैं असली मानवता को, क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग की मानवता को, उन लोगों की मानवता को जिन्हें इतिहास ने समूची दुनिया को उन सबसे मुक्त करने के लिए आमंत्रित किया है जो ईर्ष्या, धनलिप्सा तथा उन सब बुराइयों में फंसे हैं जो सदियों से अपने श्रम पर जीने वाले लोगो को विकृत करती आ रही हैं।

"हम शत्रु हैं सम्पत्ति के—जो कि पूंजीवादी दुनिया की नीच और भयानक अधिष्ठात्री है! हम शत्रु है—समूचे पाशविक व्यक्तिवाद के, जो कि उसका घोषित धर्म है।"[2]

गोर्की का जीवन आज हमें महान और महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। कारण कि उनका जीवन इस अधिष्ठात्री को देवत्व के पद से हटाने के प्रयास के साथ घने रूप से सम्बद्ध था। गोर्की का जीवन, रूस के मजदूर वर्ग के एक वर्ग के रूप में उदय के साथ सम्बद्ध था। गोर्की का जीवन रूसी मजदूर वर्ग के अतीत के साथ बहुत घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध था—उस काल के साथ जो विश्व के इतिहास में अनूठा था, जिस काल में उस वर्ग ने ऊपर उठकर आजादी प्राप्त की, उत्पादन के साधनों में व्यक्तिगत सम्पत्ति को खत्म करने के आधार पर एक नये समाज की रचना की, एक ऐसे समाज की जो वर्गविहीन था और जिसमें पहली बार मानव के रूप में मानव ने अपनी कीमत पहचानी।

गोर्की का जीवन रूस की तीन क्रान्तियों के साथ सम्बद्ध था: १९०५ की क्रान्ति, १९१७ की फरवरी क्रान्ति और १९१७ की अक्तूबर क्रान्ति के साथ। आज की सभा में कई वक्ताओं ने इस बात का जिक्र किया है कि गोर्की लेनिन और स्तालिन के सच्चे और घनिष्ट मित्र थे।

उनकी ही भांति उन्होंने भी जेल और जलावतनी की यातनाएं भोगी। अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भ से ही गोर्की बोल्शेविकों के समर्थक थे। गोर्की स्वयं एक आवारा, फैक्टरी मजदूर और रेल-मजदूर का जीवन बिता चुके थे और रूसी मजदूर वर्ग के जीवन में भाग ले चुके थे। अराजकता से भरे एक दौर के बाद गोर्की को बोल्शेविकों में और लेनिन के व्यक्तित्व में, एक ऐसी दृढ़ता, सादगी और अजेय विश्वास की झाकी मिली जिससे उन्हें विश्वास हुआ कि वे जार के साम्राज्य का तख्ता पलटने जा रहे हैं। और लेनिन सम्बंधी अपने संस्मरणों में गोर्की ने इन गुणों का सार-तत्व प्रस्तुत किया है और उनका वर्णन किया है। गोर्की सदा यह अनुभव करते थे कि ये ही वे गुण हैं जो रूसी राष्ट्र की काया-पलट करेंगे।

अब आइए एक ऐसी समस्या को लें जिसमें हम सबकी गहरी दिलचस्पी है। समस्या है यह : यह कैसे हुआ कि गोर्की. जो रूसी समाज के निम्नतम स्तर से आये थे, रूसी साहित्य क्षेत्र में एकाएक इतने प्रसिद्ध हो गये ? मेरी समझ में इस रहस्य का पता लगाया जा सकता है—यदि हम उस काल के रूसी समाज तथा साहित्य पर दृष्टि डालने का प्रयत्न करें। चैखव को लीजिए। उन दिनों रूस के वह महानतम लेखक थे। वह १८८० के काल की भयानक निराशा में से उभरे थे। यह वह समय था जब बुद्धिजीवियों को अपना कोई भविष्य नहीं दिखाई देता था; जब यह मालूम होता था मानो रूसी समाज की श्रेष्ठतम शक्तियां जारशाही के विरुद्ध व्यर्थ संघर्ष की वेदी पर चढ़ा दी गयी हैं—और चैखव का साहित्य इसी भावना से सराबोर है। तोल्स्तोय भी—गोर्की के प्रसिद्धि प्राप्त करते-करते—ईसाई मत के पूर्ण नकारवाद को अपना चुके थे। किन्तु निराशा के इस वातावरण में गोर्की ने एक नयी ताजगी का संचार किया, समूची रूसी जनता के लिए वह आशा का एक नया सन्देश लाये। और इसी कारण—रूसी राष्ट्र के जीवन में एक नयी शक्ति के रूप में प्रकट होने के कारण—वह रूस के एक कोने से दूसरे कोने तक एकाएक प्रसिद्ध हो गये। उनकी समूची शैली में आप इसका अनुभव कर सकते हैं।

लेखन की कला और टैकनीक की दृष्टि से गोर्की के बारे में यहां

किसी ने कुछ नहीं कहा। अंग्रेजी अनुवादों में गोर्की का बहुत कुछ खो गया है, किन्तु रूसी लेखक के रूप में गोर्की शक्ति के पुन्ज नजर आते हैं—और यह शक्ति उन लोगों की थी जिनके बीच वह रहते थे। वह हमेशा इस बात पर जोर देते थे कि आम लोगों की बोलचाल, लोक-साहित्य और जनता में प्रचलित कहानियों में भाषा का सबसे समृद्धतम खजाना मौजूद है, उनमें भाषा और साहित्य की महानतम निधियां निहित हैं। उनका समूचा साहित्य इस बात का प्रमाण है।

गोर्की ने बहुत तेजी से प्रसिद्धि प्राप्त की और रूसी साम्राज्य की साहित्य अकादमी के सदस्य चुने गये, लेकिन उतनी ही तेजी से, जार के सीधे फरमान पर, वह सदस्यता से हटा भी दिये गये। एक लेखक के दमन के इस लज्जास्पद कृत्य के विरोध मे, अपने आप को सदा के लिए गौरवान्वित करते हुए, रूस के दो अन्य महानतम लेखकों ने भी सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया। ये लेखक थे—चैखव और कोरोलैंन्को। किन्तु इससे हमारी इस शताब्दी के प्रारम्भिक दिनों के साहित्य जगत का कैसा दयनीय चित्र आंखों के सामने आता है! रूसी साहित्य के तीन महानतम प्रतिनिधियों को त्याग-पत्र देने पर बाध्य होना पड़ा (उनमें से एक को तो जबर्दस्ती हटाया गया), और इन्हीं दिनों तोल्स्तोय को पुरातनपथी गिरजे का कोप-भाजन बनना पड़ा, उन्हें धर्मच्युत किया गया और रूसी साम्राज्य के हर प्रार्थना-घर में उनके खिलाफ घिनौने फतवे पढ़े जाने लगे! इसी पृष्ठभूमि में गोर्की ने रूसी लेखकों को दिखाया कि निरंकुशता कितनी ही क्रूर और हिंसक क्यों न हो, उससे लड़ने के उपायों और साधनों का अभाव नहीं है, कि १९०५ की भयानक पराजय के बाद भी निराशा की आवश्यकता नहीं है। इसके बाद, कई वर्षों तक, गोर्की ने प्रवासी जीवन बिताया। किन्तु इस काल में भी, जबकि वह अमरीका तथा अन्य देशों में थे, वह सोशल डैमोक्रैटिक पार्टी के लिए ही काम काम करते रहे। जब वह कैप्री (इटली) में रहने गए तब भी वह निरंकुशता को उखाड़ फेंकने तथा रूसी क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करने में लगे रहे।

आपको याद होगा कि कैप्री में उन्होंने क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को ट्रेन करने के लिए एक स्कूल चलाया था। पिछले सप्ताह के अन्त में

लन्दन में लेखकों की एक कान्फ्रेंस मे एच. जी वैल्स ने अपने भाषण मे टूले स्ट्रीट के तीन दर्जियों[1] के बारे में कुछ ऐसी बातें कहीं जो अशोभनीय थीं। उन्होंने कहा कि वे ब्रिटिश साम्राज्य के भाग्य निर्णायक बन गये हैं। उनकी इस बात का इल्या एहरेनबुर्ग ने करारा जवाब दिया। उन्होंने बताया कि उन दिनों जब गोर्की कैप्री में थे तो वह अपने पास एक धातु-मजदूर, एक दर्जी और एक बढ़ई को इकट्ठा करना अपनी शान के खिलाफ नहीं समझते थे, और उन्हें इस बात का विश्वास था कि ये लोग रूसी साम्राज्य को, जो कि उन दिनों आज के ब्रिटिश साम्राज्य जैसा ही सुदृढ़ मालूम होता था, उखाड़ फेंक सकते हैं।

स्कूल चलाने के अलावा इस काल मे गोर्की और भी बहुत कुछ करते थे। वह सक्रिय क्रान्तिकारी काम भी करते थे। गोर्की के साथ लेनिन के पत्र-व्यवहार में केवल दार्शनिक समस्याओं का ही नहीं, बल्कि ऐसी व्यवहारिक समस्याओं का भी भरपूर उल्लेख मिलता है कि किस किस प्रकार गोर्की रूस में उनका अखबार पहुंचाने में बोल्शेविकों की मदद कर सकते हैं। बोल्शेविक साहित्य को ओदेस्सा पहुंचाने में गोर्की ने इटली के जहाजी मजदूर संघ से सम्पर्क स्थापित किया।

'स्पैक्टेटर' समाचार-पत्र में श्री- ई. एच. कार का लिखा गोर्की के कामों का विवरण छपा है। मैंने उसे पढ़ा है। इसमें श्री कार ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि कैप्री निवास के काल में दुर्भाग्य से गोर्की ने ऐसे राजनीतिक उपन्यास लिखने शुरू किए जिनके नाम भी अब किसी को याद नहीं है। आज की सभा में मौजूद लोगों में जो मजदूर भाई हैं, उनसे मैं पूछता हूं—क्या आप लोग *'मां'* उपन्यास का नाम भूल गये हैं? खुद रूस से बाहर ऐसे लोगों की संख्या बहुत बड़ी है जो इस पुस्तक को कभी नहीं भूल सकते। दुनिया के हर कोने में ऐसे लोग मौजूद हैं जिनकी राजनीतिक दीक्षा 'मां' उपन्यास से ही आरम्भ हुई है। इस पुस्तक की एक और अनूठी विशेषता यह है कि इसने एक अन्य कला-कृति को—'मां' नामक फिल्म को—जन्म दिया है।

राजनीति का मसला गोर्की के नाम से अलग नहीं किया जा सकता। मंगलवार के *'टाइम्स'* पत्र में ब्रिटिश लेखकों के प्रश्न पर एक अग्रलेख

छपा था। *टाइम्स* पत्र बहुधा हमारा सम्मान नहीं करता है। इस बार का अग्रलेख भी ब्रिटिश लेखकों के एक हिस्से को झिड़कने के लिए लिखा गया था। इन लोगों को धिक्कारा गया है कि इन्होंने लेखकों की सोसायटी को ट्रेड यूनियन कांग्रेस से सम्बद्ध करने का प्रस्ताव पेश करने की भद्दी हिमाकत करके अपनी निकृष्ट रुचि का परिचय दिया है। इस प्रस्ताव का, दुर्भाग्यवश जो पास नहीं हो सका, तात्पर्य क्या था? ब्रिटिश लेखकों की काफी बड़ी संख्या आज यह अनुभव करती है कि लेखकों और मजदूर वर्ग के बीच अधिक घनिष्ठ सहयोग के बिना अंग्रेजी साहित्य का कोई भविष्य नहीं है। उनका विचार है कि ब्रिटेन की सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा की यही सबसे बड़ी गारण्टी है। उनका कहना है कि इसीमें भविष्य की महानतम आशा है। इस सप्ताह फिर *टाइम्स* ने साहित्य सम्बंधी चर्चा शुरू की है। बृहस्पतिवार के अंक में साहित्य के सम्बंध में एक दृष्टिकोण प्रतिपादित किया गया है। इसे प्रतिपादित करने वाले सज्जन हैं श्री चार्ल्स मार्गन, जिनका 'टाइम्स' से घनिष्ठ सम्बंध है और जो प्रत्यक्षतः इस मत के हैं कि हमारा लेखक समुदाय मौजूदा समाज के सम्पूर्ण ढांचे द्वारा सह मानवों से सुरक्षित तथा दूर रखा जाय। श्री एवलिन वौघ[1] को वह एक पुरस्कार भेंट कर रहे थे। उन्होंने कहा: "उन्होंने ऐसे पुरस्कारों पर कीचड़ उछाला जाते देखा है, किन्तु हौथौर्नडन[2] के प्रति इस खीज का आधार सदा वही एक शिकायत होती है: कोई साहित्यिक या राजनीतिक गुट इसका संचालन नहीं करता। यदि उनका यह विश्वास होता — जैसा कि कितने ही लोगों का आजकल ईमामदारी के साथ विश्वास है — कि कला, यदि वह राजनीति का यंत्र नहीं बनती, तो समय का अपव्यय है—तो निश्चय ही वे हौथौर्नडन कमिटी का समर्थन नहीं करेंगे। किन्तु आज के दिन जबकि सचाई के साथ कहा जा सकता है कि यूरोप की बड़ी-बड़ी ताकतों में केवल इंग्लैंड और फ्रान्स ही ऐसे देश हैं जहां विचार और भाषण की स्वतंत्रता उपलब्ध है, तो यह, उनके विचार मे, एक मूल्यवान बात होगी कि साल में एक बार उन्हें किसी पुस्तक को पुस्तक के रूप में उसके गुणों के आधार पर, न कि इस बात पर कि वह किसी मौजूदा या आकांक्षित डिक्टेटरशिप

के आदेशानुसार लिखी गयी है — भले ही वह पुस्तक ऐसी हो जिसमें व्यक्त किये गये विचारों से, स्वयं उनका, और सम्भवतः कमिटी के कुछ अन्य सदस्यों का भी यदाकदा मतभेद हो — सम्मानित करने के लिए आमंत्रित किया जाय। यही वांछनीय था और ऐसा ही होना भी चाहिए।

हो सकता है कि श्री चार्ल्स मौर्गन अज्ञान के कारण ही यह दृष्टिकोण प्रस्तुत कर गये हों। उन्होंने इस तथ्य को पूरी तरह नजरन्दाज कर दिया है कि साहित्य, बहुत कर राजनीतिक होता है — खुले रूप में और सुचिन्तित राजनीतिक कला। किसी एक देश के इतिहास पर नजर डालिए। हम तुर्की को ले लें। १९ वीं शती के आठवें दशक (१८७०-१८८०) के प्रारम्भ तक तुर्की में नाट्य-साहित्य था ही नहीं। उन्नीसवीं शती के महानतम तुर्की कवि[1] ने राजनीतिक उद्देश्य से अनुप्राणित होकर एक नाटक लिखा। यह नाटक उन्होंने तुर्की की निरंकुशशाही के खिलाफ अपढ़ जनता में लड़ने की चेतना पैदा करने के लिए लिखा था। इस नाटक ने देश के जीवन में कला का एक सम्पूर्ण नया क्षेत्र खोल दिया। अन्य देशों में भी, समय-समय पर, आप ऐसा ही होता देखेंगे। हमारे देश में उपन्यास-कला का आविष्कार करने का श्रेय एक ऐसे व्यक्ति को है जो अपने सभी कामों में अत्यधिक राजनीतिक था। इस व्यक्ति का नाम है डेफो। और, अठारहवीं शती में पूंजीवादी प्रणाली के समर्थकों ने उसकी सर्व प्रसिद्ध कृति रौबिन्सन क्रूसो को राजनीतिक अर्थशास्त्र के एक थीसिस के रूप में इस्तेमाल किया था।

मैं जो कहना चाहता हूं वह यह है कि आज अधिकाधिक लेखकों का यह विश्वास होता जाता है कि उनकी एकमात्र आशा उस पथ का अनुसरण करने में है जिसे सबसे पहले मैक्सिम गोर्की ने दिखाया था। इस पथ पर चलकर ही हम अपनी श्रेष्ठतम विरासत की रक्षा कर सकेंगे तथा एक नये और सुन्दरतर राष्ट्र के लिए संघर्ष कर सकेंगे। हमारे अपने देश में ही ऐसे कई श्रेष्ठ लेखक हैं जो मजदूर वर्ग में पैदा हुए हैं — एच. जी. वैल्स, मिडल्टन मुरी[2] और डी. एच. लारेन्स[3]। ये तीनों मजदूर परिवारों में पैदा हुए थे। किन्तु तीनों ने ही उस वर्ग को त्याग दिया है

जिसमें कि उन्होंने जन्म लिया था। तीनों ने 'सोसायटी' में अपना स्थान बनाने का रास्ता अपनाया। और आज हमारे देश में कोई लेखक समझौता परस्ती को गले लगाकर और अपने-आप को संस्कृति के उन अभिजात वर्गीय और धनी-मानी व्यापारियों के गुट के हाथों में—जो समझते हैं कि हमारे बौद्धिक जीवन की इजारेदारी उन्हीं के हाथो मे है—सौंप कर ही ऐसा कर सकता है। अगर आप इन तीनों के आत्म-चरित पढ़े तो आप देखेंगे कि इन्होंने गरीबी के खिलाफ और दम्भ के खिलाफ भयानक संघर्ष किया है, और आप यह दुर्भाग्य भी देखेंगे कि दम्भ ने इन तीनों पर विजय प्राप्त की। यहां आप पिछली दो पीढ़ियो मे हमारे बौद्धिक जीवन की अत्यन्त दयनीय दशा का—शासक वर्ग द्वारा हमारे देश में सांस्कृतिक जीवन के ध्वंस का—चित्र देख सकते है।

मैं समझता हू कि यह एक बहुत बड़ी और शानदार चीज है कि हमारे युवक लेखक वैल्स, लारेन्स और मिडल्टन मुरी द्वारा अपनाये मार्ग को त्याग रहे हैं। वे हमारे देश के बौद्धिक जीवन पर इस पतित सामाजिक गुट की इजारेदारी कायम नहीं होने देंगे।

आलोचकों का कहना है कि राजनीति ने ही गोर्की को नष्ट कर दिया। वे कहते हैं—देखो न, १९१७ के बाद गोर्की ने क्या किया। तात्पर्य यह कि उन्होंने कोई सृजनात्मक कार्य नही किया। किन्तु १९१७ के बाद गोर्की का सृजनात्मक कार्य गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों ही दृष्टि से, किसी भी योरपीय लेखक के उस काल के कार्य से कम नही है। सामाजिक अर्थ में उनका कार्य पहले से ही अमरत्व के हकदार उनके नाम को अपूर्व गौरव प्रदान करता है। पहले के कामो की उनके इस काम से कोई तुलना नही की जा सकती। गोर्की ने एक नयी संस्कृति के लिए रास्ता तैयार किया। समाजवाद की स्थापना के बाद, इस संस्कृति का आगमन अवश्यम्भावी था। उनका सामाजिक कार्य केवल सुरक्षात्मक नहीं, बल्कि तत्वतः सृजनात्मक था। फिर, उनका यह काम जो उन्होंने १९२८ में अन्तिम रूप से सोवियत संघ लौट आने के बाद किया, समूचे रूसी साहित्य के पुनर्गठन तथा सोवियत लेखकों को एक महान लेखक संघ में गूंथने का वृहत कार्य था। यह ऐसा कार्य था जिसके

लिए देश का प्रत्येक लेखक उनके नाम का कृतज्ञता के साथ स्मरण किये बिना नही रह सकता।

रैल्फ बेट्स ने अपने भाषण में गोर्की के एक मौलिक कार्य का, गोर्की के सुझाव से प्रेरित और उनके ही निर्देशन में *श्वेत सागर नहर* के सामूहिक लेखन का उल्लेख किया है। लेकिन यह तो उस महान कार्य का एक अंश मात्र ही है जो गोर्की की पहल कदमी पर उठाया गया था। इस काम के पूरा होने पर सभी फैक्टरियों तथा कल-कारखानों का, सोवियत संघ के सभी बड़े फार्मों का, समाजवाद के सजीव निर्माण का इतिहास बन जायगा। इसका मकसद कोई एक महान साहित्यिक कृति तैयार करना नहीं, बल्कि समाजवाद के निर्माण का इतिहास तैयार करना है, और इस सामूहिक इतिहास को तैयार करने के लिए पहली बार देश की श्रेष्ठतम रचनात्मक ताकतों को हाथ बटाने के लिए आगे लाया गया है। इस भीमाकार कार्य का श्रेय गोर्की को ही प्राप्त है। फिर, गृह युद्ध का — रूसी क्रान्ति के वीरतापूर्ण काल का — इतिहास लिखने और उसका सयोजन करने में भी गोर्की ने ही सबसे पहले कदम उठाया था। और इस इतिहास के प्रथम खण्ड को पढ़ने से साफ पता चल जाता है कि कई परिच्छेदों को लिखने में गोर्की और स्तालिन ने मिलकर काम किया है।

अन्त में मैं गोर्की के निधन पर दो प्रकार की प्रतिक्रियाओं का उल्लेख करना चाहूंगा। पहली प्रतिक्रिया जार्ज बरनार्ड शा की प्रतिक्रिया है। सोवियत सरकार को भेजा गया शा का सन्देश निराशावाद और पराजय का सन्देश है। शा ने लिखा — बूढ़े लोग सब मरते जा रहे हैं; उनके जीने का अब कोई उपयोग भी तो न था। सोवियत संघ में अतीत के बड़े नामों को लेकर चिन्ता करने की जरूरत क्या — उन्हे भविष्य को सम्भालना है। लेकिन अतीत के बिना भविष्य के बारे में नहीं सोचा जा सकता, और गोर्की का अतीत मजदूर वर्ग का अतीत था, उस मजदूर वर्ग का अतीत जिसने क्रान्ति को सम्भव बनाया। सोवियत संघ आज एक ऐसे मनुष्य की मृत्यु का शोक मना रहा है जिसे वे, इस बात को इतनी गहराई से अनुभव करने के कारण ही, प्यार करते थे।

दूसरी प्रतिक्रिया, जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं, लन्दन की एक मजदूरनी की है — फैक्टरी में काम करने वाली एक लडकी की। समाचार-पत्रों में उसने गोर्की के मातम का विवरण पढ़ा था। उसने कहा : "उस आदमी की मृत्यु कितनी दुखद है जिससे इतने लोग प्यार करते हों।" कितनी सच बात कही उसने। जो आदमी जनता का इतना प्यारा हो, उसके लिए मरना कितना दुःखद है।

मनुष्य को जीवित रहना चाहिए इसलिए कि वह उन चीजों को मूर्त होता हुआ देख सके जिनके लिए वह जिया; इसलिए कि वह जनता, जिसके साथ कि वह सम्बद्ध था, हर क्षण उसके जीवन की पुनर्रचना करती रहती है।

साथ ही यह बात भी ध्यान में रखिए कि गोर्की के लिए प्रदर्शित यह प्रेम सोवियत संघ के भविष्य के लिए अत्यंत उपजाऊ होगा। प्रथम समाजवादी राज्य के लिए वह अनेकानेक तथा और भी महान गोर्कियों को, मानव आत्मा के कुशल अभियन्ताओं को, जन्म देगा!

टिप्पणियां

पृष्ठ एक

१. **शांशों दा जेस्ट** : मध्य-युगीन फ्रांसीसी महाकाव्य।

पृष्ठ दो

१. **त्रिमालचियो के भोज** : रोमन लेखक पेत्रोनिया (पहली शताब्दी) की रचना "सातिरिकोन" का वह भाग जिसमें लेखक तत्कालीन समाज के भ्रष्टाचार का मजाक उड़ाता है।

२. **डाफनिस और क्लो** : प्राचीन यूनानी लेखक लोंग का उपन्यास।

३. **फार्स्टर** : (एडमण्ड मॉर्गन फार्स्टर) अंग्रेज आलोचक तथा लेखक।

पृष्ठ छः

१. **जॉयस** : (जेम्स जॉयस, १८८२–१९४१) अंग्रेज लेखक व उपन्यासकार।

२. **रेबेका वेस्ट** : समकालीन अंग्रेज लेखिका।

३. **अल्डस हक्सले** : समकालीन अंग्रेज लेखक व उपन्यसकार।

पृष्ठ सात

१. **एडमण्ड कैम्पियोन** : प्रसिद्ध अंग्रेज जेस्यूट उपदेशक जिसे एलिजेबेथ के राज्यकाल में विधर्मी होने के अभियोग पर मृत्यु-दण्ड दिया गया था।

पृष्ठ आठ

१. **सिगमण्ड फ्राएड** : (१८५६–१९३९) दार्शनिक, डाक्टर तथा मनोविज्ञान-शास्त्री।

पृष्ठ तेरह

१. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत ग्रंथावली, भाग १२, पृष्ठ ६–७

पृष्ठ तेरह

१. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत पत्र, १९५३, पृष्ठ ४२२–४२३

पृष्ठ पन्द्रह

१. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत पत्र, १९५३, पृष्ठ ४२३–४२४

पृष्ठ अट्ठारह

१. मार्क्स और एंगेल्स, सग्रहीत पत्र, १९५३, पृष्ठ ४२३–४२४

पृष्ठ उन्नीस

१. **फालस्टाफ**—शेक्सपीयर के नाटक "हेनरी चतुर्थ" और "मेर्री वाइव्स आफ विन्डसर" का मसखरा पात्र; **टौम जोन्स**—फील्डिंग के उपन्यास "टौम जोन्स की कहानी" का नायक; **जूलियन सोरेल**—स्टेन्डाल के उपन्यास "लाल और काला" का नायक; **मौशिये द चार्लस**—फ्रांसीसी लेखक प्रूस्त के विशाल उपन्यास "खोए हुए समय की खोज" नामक उपन्यास का पात्र।

पृष्ठ बीस

१. **थियोफिल गोतिये :** (१८११–१८७२) फ्रांसीसी कवि, उपन्यासकार और साहित्यालोचक।

२. **जेम्स मार्क बाल्डविन :** "दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक कोश" (दो भाग) का लेखक। यह कोष १९१८–१९२० में न्यूयार्क से प्रकाशित हुआ था।

पृष्ठ इक्कीस

१. **नाओमी मिचीसन :** समकालीन अंग्रेज लेखिका जो आज-कल शान्ति के संघर्ष में सक्रिय भाग ले रही है।

२. कीट्स कृत "हाईपीरियन," भाग ३ मे।

पृष्ठ तेईस

१. **एरासमस :** (१४६६–१५३६) रनैसां काल का महान मानवतावादी।

पृष्ठ पच्चीस

१. **लेनिन,** दार्शनिक नोटबुक से।

२. **लेनिन,** दार्शनिक नोटबुक से।

पृष्ठ छब्बीस

१. **युलिसेस**—जेम्स जायस का प्रसिद्ध उपन्यास; **स्वान्स वे**—प्रूस्त के उपन्यास "खोए हुए समय की खोज" का दूसरा भाग; **हेनरियाद**—वाल्तेयर का महाकाव्य; **इडिल्स आफ दि किंग**—राजा आर्थर और उसकी "गोल मेज" के सामन्तों की दन्त कथा पर आधारित टेनिसन की काव्य-माला।

पृष्ठ अट्ठाइस

१. **शांसों द रोलां :** फ्रांसीसी वीर-काव्य।

२. **शार्लेमान, रोलां, ओलिवर, गानेलों**—*शांसों द रोलां* के पात्र।

३. **त्रिस्तां और इसेउल्त :** मध्य-कालीन सामन्ती उपन्यास।

पृष्ठ उनत्तीस

१. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत ग्रंथावली, भाग १२, १, पृष्ठ १७३।

पृष्ठ तीस

१. **पेनिलोप :** ओडिसस की पत्नी।

२. **तेलेमाकस :** ओडिसस का पुत्र।

पृष्ठ तेंतीस

१. मार्क्स और एंगेल्स, कम्युनिस्ट घोषणापत्र, १९५३, पृष्ठ ३५।

२ **रस्किन :** (जान रस्किन, १८१९–१९००) अंग्रेजी कला मर्मज्ञ; उस पंथ के नेता जिसका मकसद रफाइल के पूर्व की कला का (अर्थात आदि-रनैसां काल की कला का) पुनर्उत्थान करना था।

३ **विल्यम मौरिस** १८३८ १८९६) अग्रज लेखक और कलाकार, "न्यूज फ्रम नोव्हेयर" नामक उपन्यास के लेखक तथा रफाइल के पूर्व की कला के प्रतिपादकों के एक प्रमुख प्रतिनिधि।

पृष्ठ चौंतीस

१. **बिलबोके :** द्युमर्सन और वारेन द्वारा रचित फ्रांसीसी पुस्तक "पाखण्डी" (१८३१) का पात्र। चालाक और अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेने वाले व्यक्ति का द्योतक।

२. **इन्स्टीच्यूट :** विज्ञान अकादमी।

पृष्ठ पैंतीस

१. **गेरार्ड द नेरवाल :** गेरार्ड लाब्रूइन (१८१८–१८५५) का उपनाम; रोमाण्टिक पंथ के कवि, अनेक कविता संग्रहों और साहित्यिक इतिहास पर निबन्धों के रचियता।

२. **रिम्बौ :** (आर्थर रिम्बौ, १८५४–१८९१) पेरिस कम्यून में भाग लेने वाला फ्रांसीसी कवि। कम्यून के पतन के बाद आचार-भ्रष्ट होकर साहित्य त्याग दिया और अफ्रीका में जाकर व्यापार में जुट गया।

पृष्ट छत्तीस

१. **गोगां :** (पॉल गोगां, १८४८–१९०३) सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी कलाकार, जो अनेक वर्षों तक पूर्व में आकर ताहिती और डोमिनिकन द्वीप-समूह में रहे।

२. **सीजां :** (पॉल सीजां, १८३९–१९०६) प्रसिद्ध फ्रांसीसी कलाकार।

३. **वान गौ :** (विन्सेन्ट वान गौ, १८५३–१८९०) फ्रांसीसी कलाकार, जिन्होंने पागल होकर आत्महत्या कर ली।

पृष्ठ अड़तीस

१. मार्क्स और एंगेल्स, कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, १९५३, पृष्ठ ३५–३६।

पृष्ठ चालीस

१. **मेलोरी :** (थॉमस मेलोरी) पन्द्रहवीं शताब्दी का अंग्रेज लेखक; "मोर्त द' आर्थर" नामक उपन्यास के रचियता।

२. **पेस्टन के पत्र :** पन्द्रहवी शताब्दी का अंग्रेजी पत्र-साहित्य। यह संग्रह पेस्टन परिवार से प्राप्त हुआ था।

३. **ग्राएल :** पवित्र ग्राएल; किवदन्ती के अनुसार वह प्याला जिससे ईसा मसीह ने गुप्त संध्या को पान किया था; मध्य-कालीन किवदन्ती के अनुसार यही वह प्याला था जिसमें क्रॉस पर कीलों से जड़े गए ईसा मसीह का रक्त इकट्ठा किया गया था। बाद में राजा आर्थर के वीर इसे इंग्लैण्ड ले आये और वहां राजा आर्थर के गोल मेज के वीरों को यह भेंट कर दिया गया। रोमाण्टिक पंथ के अनेक लेखकों ने इस किवदन्ती को अपने लेखन का विषय बनाया है।

४. **यूफिस्रस :** अंग्रेज लेखक जॉन लिली (१५५४–१६०६) कृत उपन्यास। इस उपन्यास की कृत्रिम रूप से जटिल तथा आडम्बरपूर्ण शैली ने ही अंग्रेजी भाषा में "युफिमिज्म" शब्द को जन्म दिया।

५. **आर्काडिया :** अंग्रेज लेखक फिलिप सिडनी (१५५४–१५८६) का उपन्यास।

६. **फेयरी क्वीन :** अंग्रेज कवि एडमण्ड-स्पेन्सर (१५५२–१५९९) की लिखी हुई कविता जो राजा आर्थर और उनके गोल मेज के वीरों की मध्य-कालीन कथा पर आधारित है। यह कविता रानी एलीजेबेथ को समर्पित की गई थी।

पृष्ठ इकतालीस

१. **जाक्वे ला फैटेलिस्त :** दिदेरो द्वारा रचित दार्शनिक कहानी।

२. **ला रूज ए ला न्वायर :** "लाल और काला" नामक स्टेन्दाल का उपन्यास।

३. **ला एजूकेशन सेंटिमेंटल :** "इन्द्रियों की शिक्षा" नामक फ्लौबर्ट का उपन्यास।

४ **वुदरिंग हाइट्स** एमिली ब्रान्त (१८१८–१८४८ कृत प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यास; एमिली ब्रान्ते प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यास लेखिका शार्लोट ब्रान्ते की बहन थीं।

५. **दि वे आफ आल फ्लेश** : अंग्रेज लेखक सेमुअल बटलर (१८३५–१९०२) कृत उपन्यास।

पृष्ठ चवालीस

१. **हैनरी जेम्स** : (१८४३–१९१६) अमरीकी लेखक, अनेक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के रचियता।

पृष्ठ पैंतालीस

१. **वारेन हेस्टिंग्स** : (१७३२–१८१८) भारतीय जनता के दमन के लिए कुख्यात, भारत का प्रथम अंग्रेज गवर्नर-जनरल (१७७३–१७८४)।

पृष्ठ छयालीस

१. **मौल फ्लेण्डर्स** : डेफो के उपन्यास की नायिका।

पृष्ठ सैंतालीस

१. **रेस्टिफ द ब्रिटोन** : (१७३४–१८०६) फ्रांसीसी लेखक, रूसो का अनुयायी, अनेक उपन्यासों का रचियता जिनमें "मि. निकोल्स और मानव हृदय की सच्चाई" नामक आत्म-कथात्मक उपन्यास सर्व-प्रसिद्ध है। यह उपन्यास १६ जिल्दों में लिखी गयी है।

पृष्ठ उनचास

१. **चचा टोबी और ट्रिम** : स्टर्न के उपन्यास "ट्रिस्ट्राम शेन्डी" के पात्र।

पृष्ठ पचास

१. **एग्डोन हीथ** : अंग्रेज उपन्यासकार थामस हार्डी के अनेक उपन्यासों का घटना-स्थल।

२. **कोनराद का प्रशान्त :** अंग्रेज लेखक जोसफ कोनराद (१८५७–१९२४) की समुद्री कहानियों और उपन्यासों का उल्लेख है। इन कहानियों का घटना-स्थल प्रशान्त महासागर है।

पृष्ठ बावन

१. **जौन वेस्ले :** (१७०३–१७९१) अंग्रेज धर्म-प्रचारक, जिसने मैथाडिज्म की नींव डाली। इस धार्मिक पंथ ने गिरजे के संस्कारों को ठुकराया और औद्योगिक क्रान्ति के दौरान में यह इंग्लैण्ड की आम जनता के बीच खूब फैला।

२. शताब्दी के अन्त के फ्रांसीसी कवि।

३. **एलिजेबेथ कालीन :** रानी एलिजेबेथ के शासन-काल में रनैसां के अंग्रेजी नाटककारों का दल।

पृष्ठ चौवन

१. **जेन आस्टिन :** (१७७५–१८१७) "एम्मा" तथा "गौरव और पूर्वग्रह" नामक प्रसिद्ध उपन्यासों की लेखिका।

पृष्ठ छप्पन

१. **१६८८ :** तथाकथित महान क्रान्ति का वर्ष। अभिजात वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच राजनीतिक समझौता, जिसके साथ १८ वीं शताब्दी की अंग्रेजी बुर्जुआ क्रान्ति सम्पन्न हुई।

पृष्ठ साठ

१. **नन्ही नेल :** डिकेन्स के एक उपन्यास की पात्री।

२. **सात घड़ियालों वाला नगर :** लन्दन नगर का वह भाग जहां गरीब लोग बसते हैं।

पृष्ठ बासठ

१. **रौचेस्टर और जेन एयर :** शार्लोट ब्रान्ते कृत "जेन एयर" नामक उपन्यास के पात्र।

२ **लूसी स्नो** शालाट ब्रान्ते कृत आत्मकथात्मक उपन्यास " विल्लेट " की नायिका ।

३. **कैथरीन और हीथक्लिफ** : एमिली ब्रान्ते कृत " वूदरिंग हाइट्स " नामक उपन्यास के पात्र ।

पृष्ठ त्रेसठ

१. **जोसेफ** : " वूदरिंग हाइट्स " का एक नौकर पात्र ।

पृष्ठ चौंसठ

१. **जूड द अब्सक्योर** : थामस हार्डी कृत उपन्यास ।

पृष्ठ पैंसठ

१. मार्क्स और एंगेल्स, कला पर, १९३८, पृष्ठ ३२०-३२१ ।

पृष्ठ अड़सठ

१. **क्लोइत्रे संत मैरी** : एंगेल्स का तात्पर्य उस बगावत से है जो रिपब्लिकन पार्टी — " मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की सभा " — के वाम पक्ष ने ५-६ जून १८३२ को पेरिस में की थी ।

२: मार्क्स और एंगेल्स, संकलित पत्र, १९५३, पृष्ठ ४०५–४०६ ।

पृष्ठ उनहत्तर

१. **बुर्जुआ फोबस** : बुर्जुआ वर्ग से घृणा करने वाला ।

पृष्ठ तिहत्तर

१. **मेफेयर** : लन्दन का एक फैशनेबुल इलाका ।

पृष्ठ चौहत्तर

१. **ब्रुएर** : (१६४५–१६९६) फ्रांसीसी लेखक ।

पृष्ठ पचत्तहर

१. **बौवार और पेक्युचेत** : फ्लौबर्ट के एक उपन्यास का नाम ।

२. **मान्य आदर्शों का कोष** : फ्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग की संकुचित मनोवृत्ति तथा उसकी जड़ता पर फ्लौबर्ट की एक व्यंग्य-कृति ।

पृष्ठ सतत्तर

१. **ह्यूइसमैन्स :** (जॉन कार्ल ह्यूइसमैन्स, १८४८–१९०७) फ्रांसीसी लेखक ।

पृष्ठ अठत्तर

१. मार्क्स और एंगेल्स, कला पर ।

पृष्ठ तिरासी

१. **आर्नोल्ड बैनेट :** (१८६७–१९३१) प्रसिद्ध अंग्रेज उपन्यासकार, जिन्होंने मध्य-वर्ग के जीवन पर अनेक उपन्यास लिखे ।

२. **पौटरीज :** उत्तरी स्ट्रैफोर्डशायर (इंग्लैण्ड) का एक भाग ।

पृष्ठ पचासी

१. **पेन्डेनिस :** थैकरे के उपन्यास "पेन्डेनिस का इतिहास" का नायक; **रिचर्ड फेवरेलः :** जार्ज मेरेडिथ (१८२८–१९०९) कृत "फेवरेल की परीक्षा" का नायक; **अर्नेस्ट पौन्टिफेक्स :** "जिन्दगी का रास्ता" नामक सैमुअल बटलर के उपन्यास का नायक; **जूड :** हार्डी के उपन्यास "जूड द अब्स्क्योर" का नायक ।

पृष्ठ छियासी

१. **मार्क रूदरफोर्ड :** विल्यम हैइल नामक (१८३०–१९१३) अंग्रेजी लेखक का उपनाम । प्रसिद्ध उपन्यास : "मार्क रूदरफोर्ड की आत्म-कथा," "मार्क रूदरफोर्ड की मुक्ति" और "टैनर्स लेन की क्रान्ति" ।

पृष्ठ नवासी

१. **क्रूगर :** (१८८२–१९३२) एक बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदार पूंजीपति । १९२९–१९३३ में विश्व आर्थिक संकट से दिवालिया होकर क्रूगर ने आत्म-हत्या कर ली ।

२. **बोर्गिया :** रोमन पोप अलेक्जेण्डर बोर्गिया (१४३४–१५०३)। उसके काल में कैथलिक गिरजे के सर्वोच्च इदारे कल्पनातीत भ्रष्टाचार और गिरावट के लिए कुख्यात थे।

३ **फौली बर्जे :** पेरिस का एक थिएटर।

पृष्ठ बानवे

१. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत ग्रंथावली।

२. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत ग्रंथावली।

३. **ब्लूम :** जेम्स जायस के उपन्यास "युलीसस" का पात्र।

४. **डाएडालस :** "युलीसेस" का एक पात्र।

५. **मार्लो :** जोसेफ कोनराद की अनेक कृतियों का पात्र।

पृष्ठ चौरानवे

१. **मि. पौली :** एच जी. वेल्स के उपन्यास "मि. पौली का इतिहास" का नायक।

पृष्ठ छियानवे

१. **हेजटिल :** (विल्यम हेजलिट, १७७८-१८३०) अंग्रेज साहित्यिक और रंगमंचीय आलोचक। चौसर और शैक्सपीयर की कृतियों की इन्होंने व्याख्या की।

पृष्ठ एक सौ दो

१. **जूल्स रोमें :** आधुनिक फ्रांसीसी लेखक।

२. **सिलोन :** आधुनिक फ्रांसीसी लेखक।

पृष्ठ एक सौ तीन

१. मार्क्स और एंगेल्स, पत्र-व्यवहार।

पृष्ठ एक सौ चार

१. मार्क्स और एंग्ल्स, कला पर।

पृष्ठ एक सौ पाच

१. **मार्क्स और एंगेल्स**, संग्रहीत ग्रंथावली ।

२. **टेन्डेन्ज रोमन :** उद्देश्यपरक उपन्यास ।

३. मार्क्स और एंगेल्स, पत्र व्यवहार ।

पृष्ठ एक सौ छः

१. मार्क्स और एंगेल्स, पत्र-व्यवहार ।

२. मार्क्स और एंगेल्स, पत्र-व्यवहार ।

पृष्ठ एक सौ सात

१. **सर्वहारा साहित्य :** फौक्स का तात्पर्य अन्य देशों के समसामयिक प्रगतिशील साहित्य से है ।

पृष्ठ एक सौ आठ

१. **माल्सरो :** आधुनिक फ्रांसीसी लेखक । शताब्दी के तीसरे दशक में इन्होंने "जन मोर्चा" आन्दोलन में भाग लिया और एक समय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे । बाद में कम्युनिस्ट पार्टी से विमुख हो गये ।

२. **राल्फ बेट्स :** बेट्स के उपन्यास "बुरे आदमी" और "जैतून की झाड़ी" से तात्पर्य है ।

३. **जौन डौस पैसोस :** आधुनिक अमरीकी लेखक ।

४. **काल्डवेल :** आधुनिक अमरीकी लेखक ।

पृष्ठ एक सौ सोलह

१. **वेस्लेयान के खान-मजदूर :** फौक्स का तात्पर्य मैथॉडिस्ट पंथ से है । इस पंथ को इंग्लैण्ड के खनिक इलाकों में ही मुख्यतः समर्थन प्राप्त हुआ ।

पृष्ठ एक सौ अट्ठारह

१. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत ग्रंथावली ।

२. **एल्मर राइस :** आधुनिक अमरीकी नाटककार ।

पृष्ठ एक सौ इक्कीस

१. **हिटलर का सत्तापहरण :** जर्मनी में प्रजातंत्र का अन्त और फासिस्त राज की स्थापना।

पृष्ठ एक सौ छब्बीस

१. **मेफिस्टोफीलियाई :** मेफिस्टोफिलिस जर्मन दन्तकथा का शैतान था जिसके सन्मुख फॉस्ट ने आत्म-समर्पण किया।

२. **फॉस्ट :** गेटे कृत नाटक का नायक।

पृष्ठ एक सौ सत्ताइस

१. **१९२३ :** वह विद्रोह जो १९२३ में बल्गारिया में हुआ था। इस विद्रोह का संगठन कम्युनिस्ट पार्टी ने किया था, जिसका नेतृत्व दिमित्रोव और कोलारोव कर रहे थे। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी शक्तियों का सहारा लेकर सरकार ने इस देश-व्यापी विद्रोह को कुचल दिया था।

पृष्ठ एक सौ उनतीस

१. दिमित्रोव अब संसार में नही रहे। उनकी मृत्यु १९४९ में मॉस्को में हुई। मृत्यु से पहले वह अपने देश बल्गारिया को स्वतंत्र और समाजवाद के पथ पर अग्रसर होता हुआ देख सके।

पृष्ठ एक सौ चालीस

१. **बी. बी. सी. :** इंग्लैण्ड की आकाशवाणी।

२. **पोर्ट लैण्ड प्लेस :** लन्दन का वह मुहल्ला जहां बी. बी. सी. की इमारत है।

पृष्ठ एक सौ सैंतालीस

१. **डेनगेल्ट के श्रीमन्त :** ब्रिटेन पर हमलों को बन्द करने के एवज में ९९१ ई० में डेन राजा एथिलरेड द्वितीय द्वारा लगाए गए कर को वसूल करने वाले श्रीमन्त। बाद में इस कर ने युद्ध कर का रूप धारण कर लिया।

पृष्ठ एक सौ अड़तालीस

१. यह आक्रमण १९३६ में हुआ था।

पृष्ठ एक सौ इक्यावन

१. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत ग्रंथावली।

२. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत ग्रंथावली।

पृष्ठ एक सौ बावन

१. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत ग्रंथावली।

पृष्ठ एक सौ उनसठ

१. ब्लौच : (जा रिचर्ड ब्लौच, १८८४–१९४७) फ्रांसीसी लेखक और प्रचारक, फासिज्म-विरोधी युद्ध में इन्होंने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान में फ्रांस की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बने।

पृष्ठ एक सौ इकसठ

१. मार्क्स और एंगेल्स, संग्रहीत ग्रंथावली।

साहित्यिक लेख

पृष्ठ एक सौ पैंसठ

१. **विश्व लेखक कांग्रेस** : १९३५ से फासिज्म से संस्कृति की रक्षा के लिए यह लेखक सम्मेलन पेरिस में हुआ था।

पृष्ठ एक सौ छियासठ

१. **१४ जुलाई** : १४ जुलाई १९३५ को पेरिस में जन-मोर्चे की ओर से एक विराट प्रदर्शन हुआ।

२ **ऐम्स्टर्डम-प्लेयेल आन्दोलन** : ऐम्स्टर्डम मे हुआ युद्ध-विरोधी सम्मेलन जिसके संगठनकर्ताओं में बारबूस भी थे।

पृष्ठ एक सौ अड़सठ

१. **क्लार्ते** : प्रगतिशील पत्रिका, जिसका प्रकाशन इसी नाम के

साहित्यिक दल द्वारा इस शताब्दी के तीसरे दशक में होता था। इस दल में यूरोप के महानतम लेखक शामिल थे।

२. **मॉन्दे** : प्रगतिशील फ्रांसीसी दैनिक पत्र, जिसका प्रकाशन हमारी शताब्दी के तीसरे दशक में बारबूस के सम्पादकत्व में होता था।

बारबूस की कृतियों में "ले ब्रूरो" (जल्लाद) शीर्षक एक लेख संग्रह और "फे दीवर्स" (तथ्य) नामक एक कहानी संग्रह भी शामिल है।

पृष्ठ एक सौ एकहत्तर

१. **रैल्फ बेट्स** : आधुनिक अंग्रेज लेखक।

२. सोवियत लेखकों की प्रथम अखिल संघीय कांग्रेस, १९३४।

पृष्ठ एक सौ चौहत्तर

१. **टूले स्ट्रीट के दर्जी** : व्यंग्य वाक्य जिससे ऐसे लोगों का बोध होता है जो संख्या में बहुत कम होते हुए भी सारी जनता का प्रतिनिधित्व करने का दम भरते हैं। यह मुहावरा एक तथाकथित ऐतिहासिक घटना पर आधारित है, जिसके अनुसार टूले स्ट्रीट, लन्दन के तीन दर्जियों ने पार्लिमेंट के नाम एक प्रार्थना-पत्र भेजा था, जिसका आरम्भ इस प्रकार होता था, "हम, इंग्लैंड के लोग..."

पृष्ठ एक सौ पचहत्तर

१. **वौघ** : आधुनिक अंग्रेज लेखक।

२. **हौथौर्नडन** : साहित्यिक पुरस्कार जो अमरीकी लेखक हौथोर्न के सम्मान में प्रचलित किया गया।

पृष्ठ एक सौ छियत्तर

१. **तुर्की कवि** : शिनासी इब्राहीम (१८२७-१८७१)। "कवि का विवाह" नामक प्रथम तुर्की हास्य-नाटक के लेखक। इस नाटक में तत्कालीन तुर्की समाज का व्यंग्यात्मक चित्र है।

२. **मिडल्टन मुरे** : आधुनिक अंग्रेज लेखक और आलोचक।

३. **डी. एच. लारेंस** : (१८८५-१९३०) अंग्रेज कवि, लेखक और उपन्यासकार।